मनुस्मृति

(सरल भाषा टीका सहित)



सम्पादक :

डा० चमन लाल गौतम

रचियता व सम्पादक : मंत्र महाविज्ञान, उपासना महाविज्ञान, मंत्र योग, वैदिक मंत्र विद्या, ओंकार सिद्धि, प्राणायाम के असाधारण प्रयोग, श्रीमद् भागवत सप्ताह कथा, विष्णु रहस्य, शिव रहस्य, देव रहस्य, तंत्र विज्ञान, तंत्र रहस्य, तंत्र महाविद्या, तंत्र महासिद्धि, मंत्र शक्ति से रोग निवारण-विपत्ति निवारण-कामना सिद्धि, मंत्र शक्ति के अद्भुत चमत्कार और गायत्री सिद्धि आदि ।



प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००१ (उ०प्र०)





मनुस्मृति

(सरल भाषा टीका सहित)

व्याख्याकार :

डा० चमनलाल गौतम

रचयिता—मन्त्र महाविज्ञान तन्त्र महाविज्ञान, उपासना महाविज्ञान, शिव रहस्य, देव रहस्य, मत्र योग, मंत्र शक्ति से रोग निवारण, विपत्ति निवारण, कामना सिद्धि, प्राणायाम के असाधारण प्रयोग, योगासन से रोग निवारण सूर्य नमस्कार से रोग निवारण आदि।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली—२४३००३ (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली २४३००३ (उ. प्र.)
फोन नं० ८२४



सम्पादक :

डा० चमनलाल गौतम





तृतीय संशोधित संस्करण
१९८०



मुद्रक :
शैलेन्द्र वी० माहेश्वरी
नवज्योति प्रेस,
भीकचन्द मार्ग मथुरा।



मूल्य :
ग्यारह रुपये मात्र।

दो शब्द

प्रस्तुत 'मनुस्मृति' स्मृति शास्त्रों में सर्व प्रमुख एवं संसार प्रसिद्ध ग्रन्थ है। आर्य-संस्कृति के प्राचीन आचार-विचार एवं चारों वर्ण और आश्रमों से सम्बन्धित सभी नियमों का समावेश इसमें है। यह ग्रन्थ निरा धर्म ग्रन्थ ही नहीं, वरन् विशेष रूप से नीति ग्रन्थ भी है तथा आज भी इसकी मान्यता और उपयोगिता उतनी ही है, जितनी कि प[illegible] युग में थी। हिन्दू धर्म सम्बन्धी विवादों में अब भी विधि ग्रन्थ के रूप में इसके प्रमाण न्यायालयों में मान्य किये जाते हैं।

इसमें राजधर्म पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। राजा के लिए आवश्यक है कि वह योग्य दण्डधर होकर न्यायपूर्वक राज्य का पालन करे। उसे देश, काल, शक्ति, विद्या और वित्त के अनुसार अपराधियों को दण्ड देना चाहिए। 'स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च स' के अनुसार दण्ड ही राजा है, वही नेता, शासक और रक्षक है तथा दण्ड धर्मं विदुर्बुधाः, पंडितजन दण्ड को ही धर्म कहते हैं। इसके अनुसार चलना ही राजधर्म था और वह राजधर्म आज भी नकारा नहीं जा सकता।

मनुस्मृतिकार ने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास चारों आश्रमों के कर्त्तव्यों पर पूर्ण प्रकाश डाला है। इसमें जिस आचार की प्रसंशा की है, वह आचार आज भी प्रशंसनीय है और यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि मनुस्मृति में निर्दिष्ट आचार आज भी सभी आश्रमों का मार्ग दर्शन कर रहा है तथा अब भी असंख्य मनुष्य उस आचार के पालन में तत्पर रह कर अपने को कृतार्थ समझते हैं।

हमें आशा है कि पाठकगण इस ग्रन्थ से समुचित लाभ उठायेंगे।

—प्रकाशक

विषय-सूची

प्रथम अध्याय पृ० ६ से २६

दूसरा अध्याय पृ० ३० से ७२

तीसरा अध्याय पृ० ७३ से १२१

ब्रह्मचर्य विधि, असपिण्ड कन्या से विवाह, चारों वर्ण का भार्या परिग्रह, विवाह के आठ प्रकार ब्रह्मादि विवाह फल, सवर्णाविवाह विधि, असवर्णा विवाह विधि, दारोपगमन, ऋतु-कालावधि, युग्म तिथि में पुत्रोत्पत्ति, कन्या विक्रय दोष, स्त्रीधन ग्रहण दोष, कन्यादि के पूजन-अपूजन का फल, दम्पति-सन्तोष फल, पंच महायज्ञानुष्ठान नित्य कर्त्तव्य, होम से वृष्टि, गृहस्थाश्रम प्रशंसा, ऋषि आदि का पूजन अवश्य कर्त्तव्य, बलिवैश्वदेव, भिक्षादान, सत्पात्र को दान, अतिथि सत्कार, प्रियवचन-जल-आसन दान भोजनार्थ कुल-गोत्र कथन निषेध, गर्भिणी आदि प्रथम भोजन के योग्य हैं, दम्पत्ति का कर्त्तव्य अवशिष्ट भोजन, आत्मार्थपाक निषेध, अमावस्या पार्वण श्रोत्रिय प्रशंसा, श्राद्ध में मित्रादि का भोज निषेध, श्राद्ध में मूर्ख ब्राह्मण भोजन निषेध, श्राद्ध में वेदविज्ञ को ही भोजन कराना कर्त्तव्य पितृकर्म में ब्राह्मण की परीक्षा, पिण्डदानादि विधि, पित्रादि ब्राह्मण भोजन विधि, परिवेषण विधि, श्रद्धापूर्वक दान, रात्रिश्राद्ध निषेध, तर्पण फल इत्यादि।

चौथा अध्याय पृ० १२२ से १६५

ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य काल, यजनाध्यापनादि जीवन, सन्तोष को प्रशंसा, लाभदायक व्रत कर्त्तव्य, इन्द्रियार्थ आसक्ति निषेध, वेदार्थविरोधी कर्म का त्याग, वय-कुल के अनुरूप आचरण, इन्द्रिय संयम प्रशंसा, अतिथि पूजन, पाखण्डादि अर्चन निषेध, सूर्य-दर्शन निषेध, रजस्वला गमनादि निषेध, नग्न स्नानादि निषेध, इन्द्रधनुष दर्शन निषेध, रात्रि में तिल-भोजन और नग्न शयन निषेध, शूद्र से व्रत कथनादि निषेध, ब्राह्ममुहूर्त में उठना कर्त्तव्य, प्रातःस्नानादि वेदत्रय देवता कथन, परदार निन्दा प्रिय

आठवाँ अध्याय पृ० २५२ से ३२४

न्यायालय प्रवेश, अष्टादश विवाद, धर्मातिक्रमण दोष, साक्षि द्वैध मिथ्या साक्ष्य-दोष, असत्य कथन दोष, सत्य कथन प्रशंसा, वृथा शपथ दोष, अधर्म दण्ड निन्दा, निक्षेप दान, दूषित कन्या निन्दा, सप्तपदी, सीमा विवाद स्थल, अन्यथा कथन का दंड, गृह आदि हरण दड, वाक्यारूष्य दंड, धर्माधर्म के षष्ठ अंश का भागी राजा, धान्य, सुवर्ण, स्त्री-पुरुष, पशु आदि का हरण, चोर का हस्त छेदन, राजा को दंड, तुलादि परीक्षा, दासों के सत्रह प्रकार, कर्त्तव्य पालन से राजा को मोक्ष-फल इत्यादि।

नवाँ अध्याय पृ० ३२५ से ३८३

स्त्री-पुरुष के धर्म, स्त्री-रक्षा व्यभिचार-प्रायश्चित्त पर-स्त्री बीज वपन निषेध, क्षेत्र प्राधान्य, नियोग, वर्णसंकर काल, स्वयवर काल, शुल्क ग्रहण निषेध, दाय भाग, पुत्रिकाकरण, पुत्र दत्तकपुत्र, कुपुत्र निन्दा, और सक्षेत्र, विभाग ब्राह्मणाधिकार, राजाधिकार, आयरक्षाफल, निभय राज्य वधन, तस्करान्वेषण सन्धिच्छेदन, ग्रन्थिभेद, बन्धन स्थान, अभिचार कर्म, पुत्र को राज्य देकर युद्ध में प्राण त्याग, वश्य-धर्म इत्यादि।

दसवाँ अध्याय पृ० ३८४ से ४०६

द्विज वर्ण कथन, वर्णसंकर, व्रात्य चारों वर्ण के साधारण धर्म, द्विजाति के श्रेष्ठ कर्म, नर धर्म जीवन निन्दा, प्रतिग्रह आदि का पाप नाशन, राजा का आपद्धर्म चारों वर्ण का आप-द्धर्म इत्यादि।

ग्यारहवाँ अध्याय पृ० ४०७ से ४५३

स्नातक के नौ प्रकार, कुटुम्ब-अभरण दोष, यज्ञार्थ शूद्र की भिक्षा का निषेध, काम-अकाम कृत पाप, पंचमहापातक, मनुष्यादि हरण प्रायश्चित्त, पतित संसर्ग प्रायश्चित्त बाल-

ष्नादि त्याग, गर्हितार्जित धन त्याग, असत्-प्रतिग्रह प्रायश्चित्त, वेदोक्त कर्म त्याग, पापानुताप, पापवृत्ति निन्दा, तप प्रशंसा, वेदाभ्यासा, रहस्य प्रायश्चित्त इत्यादि।

बारहवाँ अध्याय पृ० ४५४ से ४७५

शुभाशुभ कर्म-फल तीन प्रकार के मानव कर्म, तीन प्रकार के शारीरिक कर्म, त्रिदण्डी परिचय, क्षेत्रज्ञ परिचय, जीवात्म परिचय, धर्म-अधर्म के बाहुल्य से भोग, त्रिगुण कथन सात्विक-राजस तामस गुण लक्षण, त्रिगुणात्मिका गति, त्रिविधि गति, पाप से कुत्सिता गति, वैदिक कर्म द्विविध, समदर्शन, वेदप्रशंसा, वेदज्ञ प्रशसा, त्रिविध, प्रमाण धर्मज्ञ लक्षण, उत्पत्ति-विनाश का चक्रवत् कथन इत्यादि।



मनुस्मृति

प्रथम अध्याय

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः ।
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन ॥१
भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ।
अन्तरप्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥२
त्वमेका ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुवः ।
अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥३

एकाग्र चित्त से सुखपूर्वक बैठे हुए मनुजी के समक्ष उपस्थित होकर महर्षिगण उनको यथा-विधि पूजा करके बोले-—हे भगवन् ! सब वर्णों एवं जातियों के धर्म क्रम से आप ही हमारे प्रति कह सकते हैं। प्रभो ! एक आप ही स्वयं उत्पन्न हुए हैं और आप ही अचिन्तनीय और अप्रमेय ब्रह्म के कार्य का तत्व जानते है ॥१-३॥

स तैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः ।
प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान्महर्षीञ्छ्रूयतामिति ॥४
आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयम् प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥५
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तोव्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥६

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
सर्वभूतयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥७

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥८

उन महात्माओं के ऐसे प्रश्न पर परम तेजस्वी मनुजी ने उन महर्षियों से सम्मान सहित कहा—सुनिये । यह विश्व पहले तत प्रकृति में लीन था, इसलिए दिखाई नहीं देता था, इसका तर्क से कल्पना के योग्य कोई रूप नहीं था, सर्वत्र प्रगाढ़ निद्रा में लीन हो रहा था । तब अव्यक्त स्वयंभू प्रभु उस तम को मिटा कर, पंच महाभूतों को प्रकट करते हुए स्वयं प्रकट हुए । यह अगोचर, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन घट-घट निवासी और अचिन्त्य परब्रह्म स्वयं ही व्यक्त हुए थे । उस परमेश्वर ने अनेक प्रकार के शरीरादि रचने की इच्छा करके अपने देह से पहले जल उत्पन्न किया और फिर उसमें बीज डाला ॥४-८॥

तदण्डमभवद्धैम सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयम् ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥९

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो व नरसूनव ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायण स्मृतः ॥१०

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यम सदसदात्मकम् ।
तद्विसृष्टिः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥११

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा ॥१२

ताभ्यां स शकलाभ्याँ च दिवं भूमिं च निर्ममे ।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् १३

उद्वबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ।
मनसश्चाप्यहंकारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥१४

सूर्य के समान चमकने वाला वह बीज सोने का अण्डा जैसा बन गया और उसमें से सर्व लोक पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुआ। जल को नार' कहते हैं क्योंकि वह नर से उत्पन्न हुआ है, जिसका वह नर प्रथम घर हुआ, उसका नाम नारायण हुआ। ऐसा सर्व कारण, अव्यक्त नित्य एवं सत् असत् दोनों की आत्मा से उत्पन्न हुआ वह पुरुष लोक में ब्रह्मा कहा गया। वह ब्रह्मा उस अण्ड में एक वर्ष तक रहा फिर उसने स्वयं ही ध्यान करके उस अण्ड के दो खण्ड कर दिये। ब्रह्मा ने उन्ही दोनों खण्डों से स्वर्ग और पृथिवी की रचना की बीच में आकाश आठों दिशाएँ तथा जल का शाश्वत स्थान समुद्र बनाया आत्मा से सत् और असत् भाव वाला मन तथा मन से ईश्वराभिमानी अहंकार तत्व उत्पन्न किया ॥९–१४॥

महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ।
विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥१५
तेषां त्ववयवान्सूक्ष्मान्षण्णामप्यमितौजसाम् ।
सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥१६
यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट् ।
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्ति मनीषिणः ॥१७
तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मभिः ।
मनश्चावयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूतकृदव्ययम् ॥१८
तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ।
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः संभवत्यव्ययाद्व्ययम् ॥१९

आद्याद्यस्व गुणं त्वेषामवाप्नोति परः परः ।
यो यो यावतिथश्चैषां स स तावद्गुणःस्मृत ॥२०

फिर बुद्धि, तीनों गुण और विषयों का ग्रहण करने वाली पंचेन्द्रियाँ बनाई। इस अत्यन्त तेजस्वो छओं तत्वों के सूक्ष्म अवयवों को उनके विकारों में मिश्रित कर सब भूत उत्पन्न किये। इस मूर्ति के यह छओं सूक्ष्म अवयव पंचभूतों और इन्द्रियों के आश्रय में रहते हैं, इसलिए मनीषीगण उस ब्रह्म की मूर्ति का ही देह कहते है। पंचतन्मात्रा वाले ब्रह्म में पंच महाभूत अपने अपने कर्मों सहित प्रवेश करते है। अहकार रूप में स्थित ब्रह्म में मन, अपने सूक्ष्म अवयवों के सहित प्रकट होता है, वह सब भूतों का कारण एवं अविनाशी हैं। महक्षत्तत्वादि इन सात तेजस्वी तत्रों के देह के बनाने वाले अशों के द्वारा यह विश्व अविनाशी मे ही उत्पन्न होता है। इन पंच महाभूतों के पाँचों गुण क्रमशः पहले से एक-एक अधिक होते गये, इसलिए पंचमहाभूतों में से जिस भूत को जो क्रम संख्या है, उसमें उतने ही गुण होते हैं ॥१५-२०॥

सर्वेषां तु न नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥२१

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभु ।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥२२

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्धय् र्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥३२

कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।
सरितः सागराञ्छैलान्समानि विषमानि च ॥२४

तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च ।
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्त्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥२५
कर्मणां च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत् ।
द्वन्द्वरयोजच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥२६

सृष्टि-रचना के साथ ही वेद के शब्दों द्वारों सबके नाम-कर्म पृथक्-पृथक् नियत किये और उनकी संस्थाए भी अलग-अलग बनाई । ईश्वर ने जड़ चेतन प्राणियों, देवताओं एवं सूक्ष्म साध्य वृन्दों की रचना कर सनातन यज्ञ बनाये । सनातन ब्रह्म ने यज्ञों की सिद्धि के लिए । अग्नि, वायु और सर्य से क्रमशः ऋक् यजुः और साम वेदों को व्यक्त किया । फिर समय-समय के विभाग, नक्षत्र, ग्रह, नदी समुद्र, पर्वत एवं सम-विषम स्थानों की रचना की । ब्रह्मा ने सृष्टि-रचना के विचार से तप, वाणो, चित्त का समाधान तथा काम क्रोध को प्रकट कर सृष्टि को रचा । कर्मों के विवेक के लिए धर्म-अधर्म को अलग अलग बनाया और फिर सुख दु.खादि द्वन्द्व प्रजा के साथ जोड़ दिये ॥२१-२६॥

अण्व्यो मात्रा विनाशिन्यो दशार्धानां तु याःस्मृताः ।
ताभिः सार्धमिदं सर्वं संभवत्यनुपूर्वशः ॥२७
यं तु कर्माणि यस्मिन्स न्ययुक्तं प्रथमं प्रभुः ।
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥२८
हिंस्राहिंस्रे मृदक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥२९
यथर्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्तुपर्यये ।
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते कर्माणि देहिनः ॥३०

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥१३
द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥३२

पंचमहाभूतों की जो नाशवान सूक्ष्म पंचतन्मात्राएं बताई हैं उन्हीं के सहित यह सम्पूर्ण संसार क्रमश उत्पन्न होता है। सृष्टि के आरम्भ में उस ईश्वर ने जिस जीव को जिस कर्म में लगाया वह पुनः पुनः उत्पन्न होकर उसी कर्म को करने लगा। हिंस्र या अहिंस्र कर्म कोमल या कठोर धर्म या अधर्म, सत्य या झूँठ, इनमें से सृष्टि के आरम्भ में जिसे जिस कर्म में नियुक्त किया वही उस कर्म में प्रविष्ट होने लगा। जैसे ऋतुपरिवर्तन के समय ऋतु स्वयं अपने चिन्ह धारण कर लेती है, वैसे ही जीव भी निज निज कर्मों को स्वय ही प्राप्त होते हैं। लोकों की वृद्धि के लिए मुख से ब्राह्मण भुजा से क्षत्रिय जाँघ से वैश्य एवं चरण से शूद्र उत्पन्न किये। प्रभु ने अपनी देह के भाग किये और आधे पुरुष तथा आधे से स्त्री होकर उस स्त्री में विराट् पुरुष का सृजन किया ॥२७ ३२॥

तपस्तप्त्वासृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ।
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥३३
अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥३४
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥३५

एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन्भूरितेजसः ।
देवान्देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥३६

यक्षरक्षः पिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ।
नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान ॥३७

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥३८

हे द्विजोत्तमो ! तप करके उस विराट् पुरुष ने जिसे उत्पन्न किया वह इस सम्पूर्ण सृष्टि की रचयिता मुझे ही समझो। मैंने प्रजा सृजन की इच्छा करके घोर तप द्वारा प्रारम्भ में प्रजाओं के पति दस महर्षियों को उत्पन्न किया। वे मरीचि अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद हैं इन अति तेजस्वी मुनियों ने सात मनु, देवगण- देवताओं के निवास स्थान और महा तेजस्वी महर्षियों की रचना की। यक्ष राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, नाग, सुपर्ण तथा पितरों के अलग-अलग गण रचे। विद्युत, वज्र मेघ, रोहित, इन्द्र धनुष उल्का, गड़गड़ाहट पुच्छल तारे एवं अन्य छोटे बड़े नक्षत्र बनाये ॥३३-३८॥

किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विविधांश्च विहङ्गमान् ।
पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदत ॥३९

कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ।
सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥४०

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः ।
यथाकर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥४१

येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ।
तत्तथा वोभिधास्यामि क्रमयोगं च जन्मनि ॥४२

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्चोभयतोदत ॥४३

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः ।
यानि चैवंप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥४४

किन्नर वानर, विविध प्रकार के मत्स्य, पक्षी, पशु, मृग, मनुष्य और सिंह आदि नीचे ऊपर दांत वाले उत्पन्न किये। कृमि, कीट, पतंग जूं मक्खी, खटमल, मच्छर और विविध प्रकार के स्थावर अलग-अलग रचे। इस प्रकार इन महात्माओं ने मेरो आज्ञा से अपने तपोयोग द्वारा कर्मानुसार स्थावर जंगम को रचा। जिन प्राणियों का जो कर्म कहा है वह, तथा किसका, किस प्रकार जन्म होता है यह जन्म और क्रम का योग बताता हूँ। दोनों ओर दांत वाले पशु, मृग हिंसक जीव राक्षस, पिशाच और मनुष्य ये सब गर्भ से उत्पन्न होते हैं। पक्षी, सर्प, मगर, मत्स्य कछुआ तथा ऐसे ही जितने भी स्थलचर, जलचर प्राणी है वे अण्डे से उत्पन्न होते हैं। ॥३१-४४॥

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् ।
ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किंचिदीदृशम् ॥४५

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ।
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥४६

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतय स्मृत ।
पुष्पिण फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयत स्मृता ॥४७

गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः ।
बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च ।।४८

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ।
अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःख समन्विता ।।४९

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्यः समुदाहृता. ।
घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि ।।५०

डाँस. मच्छर. जूँ, मक्खी, खटमल और इस प्रकार के जो प्राणी है उसकी उत्पत्ति उष्णता से होती है, वे स्वेदज हैं। बोज या डाल रोपने में उत्पन्न होने वाले सब स्थावर उद्भिज्ज है तथा बहुत पुष्प-फल पकने पर सूखे फल औषधि कहे जाते हैं। जिनमें पुष्प के बिना ही फल लगते हैं वे वनस्पति और जिनमें पुष्प-फल दोनों लाते हैं, वे वृक्ष कह जाते है। विविध भांति के गुच्छ गुल्म एवं सब प्रकार के तृण, फैलने वाली गताएं वल्लो आदि बीजों और शाखाओं से उत्पन्न होते हैं। पूर्व जन्म के संचित कर्म के कारण यह सब घोर तमोगुण से लिप्त रहते हैं। किन्तु यह भीतर से चैतन्य रहते हुए सुख-दुःख का भी अनुभव करते हैं। इस घोर अनित्य चराचरमय विश्व में ब्रह्मा से यहाँ तक का यह उत्पत्ति क्रम कहा जा चुका है।।४५-५०।।

एवं सर्वं स सृष्टवदं मां च चिन्त्यपराक्रम ।
आत्मन्यस्तर्दवे भूय कालं कालेन पीडयन् ।।५१

यदा स देवो जार्गति तदेवं चेष्टते जगत् ।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ।।५२

तस्मिन्स्वपति सुस्थे तु कर्मात्मानः शरीरिणः ।
स्वकर्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ।।५३

युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि ।
तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः ॥५४

इस प्रकार इस सम्पूर्ण संसार को और मुझे उत्पन्न करके वह अत्यन्त पराक्रमी प्रजापति प्रलयकाल से सृष्टिकाल को नष्ट करता हुआ अपने ही रूप में अन्तर्ध्यान रहा आता है। वह देव जब जागता है तब यह विश्व चेष्टावान होता है और जब वह शान्त हुआ होता है तब इस विश्व में प्रलय होती है। उसके स्वस्थ रूप में सोने पर कर्मों के अनुसार शरीर धारण करने वाले जीव अपने कर्मों से निवृत्त होते और उनके मन भी चेष्टा हीन हो जाते है। जब सब एक साथ हो उस परब्रह्म में लीन होते हैं, तब सब भूतों की आत्मा निवृत्त हुई सुखपूर्वक सोती है ॥५१-५४॥

तमोऽयं तु समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सेन्द्रियः ।
न च स्वं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तितः ॥५५
यदाणुमात्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च ।
समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्त्तिं विमुञ्चति ॥५६
एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं चराचरम् ।
संजीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ॥५७
इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ मामेव स्वयमादितः ।
विधिवद्ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन॥५८
एतद्वोऽयं भृगु शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ।
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिल मुनिः ॥५९
ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः ।
तानब्रवीदृषीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥६०

नम के आश्रय में हुआ यह जीव चिरकाल तक इन्द्रियों के साथ रहता और अपने कर्म से रहित होने पर पूर्व देह को त्याग कर अन्य देह धारण करता है। यह प्राणी अणुरूप होकर जब स्थावर या जंगम के बीच में प्रविष्ट होता है। तब स्थूल देह धारण कर लेता है। इस प्रकार वह अविनाशी ब्रह्म इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को जाग्रत और स्वप्न अवस्था द्वारा पुनः पुनः उत्पन्न और नष्ट करता है। उस ब्रह्मा ने स्वयं ही इस शास्त्र को रचकर सृष्टि के आरम्भ में मुझे विधिवत् सिखाया तब मैंने मरीचि आदि मुनियों को बताया। अब इस शास्त्र को भृगुजी आप के प्रति पूर्ण रूप से कहेंगे क्योंकि इन्होंने मुझसे इसे भले प्रकार सीख लिया हैं। मनुजी के ऐसा कहने पर महर्षि भृगु ने प्रसन्न होकर उन ऋषियों से कहा—'इसे सुनो' ॥५५-६०॥

स्वायंभुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोऽपरे ।
सृष्टवन्तः प्रजाःस्वा स्वा महात्मानो महौजस ।६१
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा ।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च ॥६२
स्वायंभुवाद्याःसप्तै ते मनवो भूरितेजसः ।
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्याश्चराचरम् ॥६३
निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ता कला ।
त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः ॥६४
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः॥६५
पित्र्ये रात्र्यहानी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ।
कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः स्वप्ताय शर्वरी ॥६६

इस स्वायंभुव मनु के वंश में छः मनु और हुए हैं। उन अत्यन्त तेजस्वी महात्माओं ने अपनी-अपनी प्रजाओं को उत्पन्न किया। स्वारोचिष, उत्तम तामस रैवत, चाक्षुष और सूर्यपुत्र महा तेजस्वी वैवस्वत (यह छः मनु हैं) स्वायंभुवादि इन अति तेजस्वी सातों मनुयों ने अपने-अपने समय में इन चराचरों को रचकर उनकी रक्षा की। अठारह निमेषों की एक काष्ठा, तीस काष्ठाओं की एक कला तीस कलाओं का एक मुहूर्त और तीस मुहूर्त्तों का एक अहोरात्र होता है। देवताओं और मनुष्यों के दिन-रात्रि का विभाग सूर्य करता है। जीवों के सोने के लिए रात्रि तथा कर्म करने के लिए दिन होते हैं। मनुष्यों का एक मास पितरों का एक अहोरात्र होता है मास के दो विभाग पक्ष होते हैं। इस प्रकार कर्म करने के लिए मनुष्यों का कृष्णपक्ष पितरों का दिन तथा सोने के लिए शुक्लपक्ष पितरों की रात्रि है ॥६१-६६॥

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रतिभागस्तयोः पुनः।
अहस्तत्रोदगनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥६७
ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य तत्प्रमाणं समासतः।
एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥६८
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥६९
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥७०
यदेतत्परिसंख्यायमादायेव चतुर्युगम्।
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥७१

दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया ।
ब्राह्ममेकहर्ज्ञेयं तावती रात्रिमेव च ॥७२

मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन-रात होता है। उसका विभाग उत्तरायण देवताओं का दिन और दक्षिणायन उसकी रात्रि है। अब ब्रह्मा के अहोरात्र का और एक एक युग का प्रणाम क्रम से सुनो। चार हजार वर्ष सत्युग, इतने ही सौ अर्थात् चार सौ वर्ष की सन्ध्या और चार सौ वष का ही सन्ध्यांश होता है। अन्य तीन युगों का प्रमाण सन्ध्या और सध्यांश सहित एक-एक हजार और एक एक सौ वर्ष घटाने से निकलता है। चारों युगों का जो यह प्रमाण कहा है, उन बारह बारह हजार वर्षों का ही देवताओं का युग कहा जात है। देवताओं के एक हजार युगों का ब्रह्मा का एक दिन और उतने ही युगों की एक रात्रि होती है ॥६८-७२॥

तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मम् पुण्यमहर्विदुः ।
रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥७३
तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ।
प्रतिबुद्धश्च सृजति मनः सदसदात्मकम् ॥७४
मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ।
आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदु ॥७५
आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः ।
बलावाञ्जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः ॥७६
वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ।
ज्योतिरुत्पद्यते भास्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥७७

ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृताः ।
अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा, सृष्टिरादितः ।।७८

एक हजार युगों का ब्रह्म का एक पुण्य दिवस और उतने ही युगों का एक रात्रि के प्रमाण को जानने वाला ही दिन-रात्रि के यथार्थ रहस्य को समझता है। अपने अहोरात्र के अन्त में सोया हुआ वह ब्रह्मा जाग कर सत् असत् रूप मन को सृष्टि रचना में लगाता है। सृष्टि रचने की इच्छा से प्रेरित मन सृष्टि रचता है, उससे शब्द गुण वाला आकाश उत्पन्न होता है। विचारमय आकाश से सब गन्धों का वाहक पवित्र और बलवान वायु उत्पन्न होता है, जिसका गुण स्पर्श कहा गया है। विकारमय वायु से अंधकारनाशक रूप गुण वाला प्रकाशमान तेज उत्पन्न होता है। विकारमय तेज से रस गुण वाला जल उत्पन्न होता है उसी जल से गन्ध गुण वाली पृथिवी बनती है। आदि में सृष्टि की रचना इस प्रकार होती है ।।७३-७८।।

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् ।
तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ।।७९

मन्वन्तराण्संख्यानि सर्गः संहार एव च ।
क्रीडान्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः ।।८०

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ।
नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान्प्रति वर्तते ।।८१

इतरेष्वागताद्धर्मः पादस्त्ववरोपितः ।
चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः ।।८२

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः ।।८३

वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्मणाम् ।
फलन्त्यनुयुगं लोके प्रभावाश्च शरीरिणाम् ।।८४

उपर्युक्त जो बारह हजार वर्षों का देवताओं का एक युग है उसके इकहत्तर गुने अर्थात् ८५२००० वर्ष का एक मन्वन्तर कहा जाता है। मन्वतर और उत्पत्ति प्रलय असंख्य हैं। परमेष्ठी यह सब कार्य खेल के समान पुनः पुनः किया करता है। सत्युग में धर्म अपने चारों चरणों से सत्य के सहित रहता है। उस समय कोई मनुष्य किसी के साथ अधर्म व्यवहार नहीं करता। अन्य युगों में अधर्म से धन और विद्या आदि का अर्जन करने से धर्म का बल क्षीण होता है चोरी झूँठ और छल के कारण क्रमशः धर्म का एक एक चरण घटता जाता है। सत्युग में धर्माचरण से सर्व सिद्धि प्राप्त व्यक्ति रोग रहित रह कर चार सौ वर्ष तक जीते हैं। त्रेता द्वापर और कलियुग में घटने के कारण क्रमशः एक एक सौ आयु घटती जाती है। वेद वर्णित मनुष्यों की आयु कर्म फल और शाप या अनुग्रह आदि के प्रभाव युग के धर्म के ही अनुसार होते हैं ।।७९-८४।।

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ।।८५
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ।।८६
सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ।
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ।।८७
अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।।८८

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥८९

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥९०

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥९१

युगों के ह्रास से उनका धर्म परिवर्तित होता है इसी कारण सत्युग के समान धर्म त्रेता , त्रेता के समान द्वापर में और द्वापर के समान कलियुग में नहीं रहता । सत्युग में तप त्रेता में ज्ञान द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान को प्रमुख कहते हैं । विश्व की रक्षा के लिए उस परम तेजस्वी ब्रह्मा ने मुख, बाहु, जंघा और पाप से उत्पन्न हुए वर्णों के कर्म पृथक्-पृथक् निर्दिष्ट कर दिये । वेद पढ़ना-पढ़ाना यज्ञ करना कराना दान देना-लेना यह छः कर्म ब्राह्मणों के लिए निश्चित किये । प्रजा रक्षण, दान, यज्ञ, वेदाध्ययन और विषयों में अनासक्ति यह कर्म क्षत्रियों के नियत किये । पशुपालन दान यज्ञ वेदाध्ययन, वाणिज्य और कृषि वैश्य के कर्म नियत किये । शूद्र के लिए प्रभु ने एक ही कर्म का आदेश किया कि वह उक्त तीनों वर्णों की सेवा ईर्ष्या छोड़ कर करे ॥८५-९१॥

उर्ध्वं नाभेर्मेध्यतरः पुरुष परिकीर्तितः ।
यस्मान्मेध्यातमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभुवा ॥९२

उत्तमाङ्गोद्भावज्ज्यैष्ठ्याद्ब्राह्मणश्चैव धारणात् ।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मण प्रभुः ॥९३

तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजद्
हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्याय च गुप्तये ।।९४
यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ।।९५
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठ नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ।।९६

नाभि से ऊपर पुरुष को अधिक पवित्र माना है ब्रह्मा ने उसमें भी मुख को विशेष पवित्र बताया है । मुख से सर्वप्रथम उत्पन्न होने और वेदों को धारण करने के कारण ब्राह्मण धर्म पूर्वक इस सम्पूर्ण विश्व का स्वामी है तप करके ब्रह्मा न देवता और पितरों को हव्य कव्य पहुँचाने और उसके द्वारा संसार की रक्षा करने के लिए सर्व प्रथम ब्राह्मण को अपने मुख से उत्पन्न किया । जिसके मुख से देवगण हव्य और पितरगण कव्य भक्षण करते हैं उससे श्रेष्ठ अन्य कौन हो सकता है ? स्थावर जङ्गम पदार्थों में कृमि आदि जीव श्रेष्ठ हैं, इन जीवों से बुद्धि व्यापार में पशु पक्षी श्रेष्ठ हैं और बुद्धि रखने वालों में मनुष्य तथा मनुष्यों में ब्राह्मण हैं ।।९२-९६।।

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ।।९७
उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती ।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।९८
ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधि जायते ।
ईश्वरःसर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ।।९९
सर्वं स्व ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ।
श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ।।१००

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ।
आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः ॥१०१
तस्य कर्मविवेकार्थं शेषाणामनुपूर्वशः ।
स्वायंभुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत् ॥१०२

ब्राह्मणों में भी विद्वान् विद्वानों में भी कर्मवान् और कर्मवानों में कर्म करने वाला तथा कर्म करने वालों में भी ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ है। ब्राह्मण जन्म से ही धर्म की शाश्वती मूर्ति है, क्योंकि वह धर्म के लिये ही उत्पन्न होता है इससे उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। ब्राह्मण का उत्पन्न होना सर्वश्रेष्ठ उत्पत्ति है वह सब जीवों के धर्मों की रक्षा में समर्थ होता है। जगत् में जो कुछ हैं वह ब्राह्मण का ही हैं क्योंकि वह अपनी सर्वश्रेष्ठ उत्पत्ति के कारण इसका अधिकारी होता है। वह जो अन्य का अन्न खाता अन्य का दिया वस्त्र पहनना और अन्य से लेकर किसी अन्य को देता है वह सब उसका स्वयं का ही है क्योंकि उसी उनुग्रह से सब भोग करते हैं। उसके और अन्य वर्णों के कर्मों का ज्ञान करने के निमित्त ही मेधावान् स्वायंभुव मनु ने इस शास्त्र की रचना की ॥९७-१०२॥

विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः ।
शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ् नान्येन केनचित् ॥१०३
इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः शंसितव्रतः ।
मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥१०४
पुनाति पङ्क्तिं वंश्यांश्च सप्त सप्त परावरान् ।
पृथिवीमपि चैवेमां कृत्स्नामेकोऽपि सोऽर्हति ॥१०५
इदं स्वस्त्ययनं श्रैष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम् ।
इदं यशस्यमायुष्यमिदं निःश्रेयसं परम् ॥१०६

इस शास्त्र को मेधावी ब्राह्मण यत्न पूर्वक पढ़े और शिष्यो को पढ़ावे अन्य कोई न पढ़ावे। इसे पढ़ कर अनुसरण करने वाला ब्राह्मण तन, मन वचन से होने वाले कर्म दोषों में लिप्त नहीं होता। वह पंक्ति को पवित्र करता और विगत सात पीढ़ी पर्यन्त के पुरुषों तथा भविष्य में होने वाली सन्तानों का उद्धार करता है क्योंकि वह एकाकी ही सम्पूर्ण पृथिवी के उद्धार में समर्थ होता है। यह श्रेष्ठ शास्त्र स्वस्तिकर्त्ता बुद्धिवर्द्धक यशदाता, आयुष्यप्रद एवं पर श्रेय का दिग्दर्शन कराने वाला है।।१०३-१०६

अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम्।
चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः।।१०७
आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विज।।१०८
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्त सपूर्ण फलभाग्भवेत्।।१०९
एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्।।११०

इसमें कर्मों के गुण दोष और चतुर्वर्ण का सनातन आचार पूर्ण रूप से कहा गया है। श्रुति स्मृति में वर्णित आचार ही परम धर्म है इसलिए आत्मवान द्विज इस आचार पालन में सदा प्रयत्नशील रहे। आचारहीन ब्राह्मण वेदफल नहीं पा सकता-तथा आचारवान सम्पूर्ण फल का भागी होता है। आचार विषायक धर्म की ऐसी गति देखकर मुनियों ने श्रेष्ठ आचार को ही सर्व तपों का मूल कहा है।।१०७-११०।।

जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारं विधिमेव च।
व्रतचर्योपचारं च स्नानस्य च परं विधिम्।।१११

दाराधिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम् ।
महायज्ञविधानं च श्राद्धकल्पं च शाश्वतम् ।।११२
वृतीना लक्ष्णं चैव स्नातकस्य व्रताति च ।
भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां शुद्धिमेव च ।।११३
स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासमेव च ।
राज्ञश्च धर्मखिलं कर्याणां च विनिर्णयम् ।।११४
साक्षिप्रश्नविधानं च धर्मं स्त्रीपुंसयोरपि ।
विभागधर्मं द्यूतं च कष्टकानां च शोधनम् ।।११५

पहले दो अध्यायों में संसार की उत्पत्ति सस्कार की विधि ब्रह्मचर्य व्रत, स्नान का संस्कार तीसरे अध्याय में विवाह,विवाह के भेद महायज्ञ, नित्य श्राद्ध की विधियाँ कही हैं। चौथे अध्याय में जीविका के लक्षण, स्नातक के नियम भक्ष्याभक्ष्य, शौच और द्रव्यों की शुद्धि पर प्रकाश डाला है। पांचवें अध्याय में स्त्रीधर्म छठे में तपस्या मोक्ष सन्यास, सातवें में सब राजधर्म, आठवें में राजकार्यो का निर्णय कहा है। साक्षियों से पूछने का ढङ्ग, नवें अध्याय में स्त्री पुरुषों के धर्म विभागों के धर्म द्यूत एवं धर्मपथ के कंटकों का शोधन बताया है १११-११५॥

वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च संभवम् ।
आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ।।११६
संसारगमनं चैव त्रिविधं कर्मसंभवम् ।
निः श्रेयसं कर्मणां च गुणदोषपरीक्षणम् ।।११७
देशधर्माञ्जातिधर्मान्कुलधर्मांश्च शाश्वतान् ।
पाषण्डगणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः ।।११८

यथेदमुक्तवाञ्छास्त्रं पुरा पृष्टो मनुर्मया ।
तथेदं यूरमप्यद्य मत्सकाशान्निबोधत ॥११६

वैश्य-शूद्र के कर्त्तव्य, दसवें अध्याय में सङ्कीर्ण जातियों की उत्पत्ति आपत्कालीन धर्म और ग्यारहवें अध्याय में चतुर्वर्ण के प्रायश्चित्त की विधि कही है। बारहवें अध्याय में कर्मजन्य त्रिविधि देहप्राप्ति मोक्ष के साधन कर्मों के गुण और दोष की परीक्षा पर प्रकाश डाला है। सदा से चले आते देशधर्म, जाति-धर्म कुलधर्म और पाखण्ड धर्म पर भी इसमें मनुजी ने प्रकाश डाला है। मेरे द्वारा पूछने पर पूर्वकाल में मनुजी ने जैसे इस शास्त्र का उपदेश किया वैसे हो आप भी मुझसे इस शास्त्र का श्रवण कीजिये॥११६॥

प्रथम अध्याय समाप्त

दूसरा अध्याय

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥१
कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः॥२
संकल्पमूलः कामो वै यज्ञा संकल्पसंभवाः ।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पदाः स्मृताः ॥३
अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद्यद्धि कुरुते किंचित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥४
तेषु सम्यग्वर्तमानो गच्छत्यमरलोताकम् ।
यथासंकल्पितांश्चेह सर्वान्कामान्समश्नुते ॥५

राग द्वेष से मुक्त धर्मसेवी वेदज्ञाताओं ने नित्य जिस धर्म का सेवन कर भले प्रकार हार्दिक रूप से जान लिया उस धर्म को कहता हूँ। संसार में फल की कामना प्रशस्त न हो तो भी कामना का त्याग नहीं देखा जाता वेदज्ञान प्राप्ति और वैदिक कर्म करना भी कामनामय ही है। संकल्प कामना का मूल है। यज्ञ व्रत यम नियमादि धर्म भी इसी से होते है। बिना कामना किये किसी कोई कम होता दिखाई नहीं देता क्योंकि जो कुछ भी काय किया जाता है, वह सब कामना से ही होता है। उन शास्त्रोक्त कर्मों में भले प्रकार से लगा हुआ मनुष्य अमर लोक को गमन करता है तथा उसने जो संकल्प किये वे सब सफल होते हैं ॥१-५॥

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥६

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥७

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा ।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत वै ॥८

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥९

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रम् तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥१०

सभी वेद और उन वेदविज्ञों की स्मृति शील, आचार एवं मनस्तुष्टि सब धर्म के मूल ही है। मनुजी ने जिसका जो धर्म कहा वह सब वेदों द्वारा ही बताया हुआ है क्योंकि मनुजी सब ज्ञानों से सम्पन्न हैं। ज्ञान रूपी नेत्रों से इन सब को भले प्रकार देख कर तथा वेद को प्रामाणिक मानकर ज्ञानी पुरुष अपने धर्म में अवस्थित रहें। वेद और स्मृति में वर्णित धर्म का जो मनुष्य आचरण करता है वह इस लोक में कीर्ति और परलोक में श्रेष्ठ सुख प्राप्त करता है। श्रुति को वेद और स्मृति को धर्मशास्त्र जाने यह निर्विवाद मान्य है क्योंकि सब धर्मो की उत्पत्ति इन दोनों से ही है ॥६-१०॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥११

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥१२

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञान विधीयते ।
धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणे परमं श्रुतिः ।।१३
श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ।
उभावपि हि तौ धर्मै सम्यगुक्तौ मनीषिभिः ।।१४
उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।
सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं-वैदिकी श्रुतिः।।१५

जो द्विज धर्ममूल वेद और स्मृति का तर्क से अवमान करता है वह शिष्टजनों में बैठने योग्य नहीं तथा वेद निन्दक होने के कारण उसे नास्तिक समझे । वेद, स्मृति, सदाचार और आत्म-प्रियता धर्म के यही चार चार लक्षण कहे जाते हैं। जो अर्थ और काम में अनासक्त हैं उनके लिए यह धर्मज्ञान कहा है। क्योंकि धर्म के जिज्ञासुओं को वेद ही परम प्रमाण है। जहाँ दो वेदों में समान वाक्यता न हो वहां दोनों को ही धर्म माने, क्योंकि विद्वज्जन उन दोनों को ही धर्म कहते हैं। सूर्योदय होने पर और सूर्योदय से पहिले तथा अरुणोदय काल मे यज्ञ-हवन करे, यह तीनों ही श्रुतिवचन समझे ।११-१५।

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ।
तस्य शास्त्रेऽधिकारेऽस्मिञ्ज्ञेयो नान्यस्यकस्यचित् ।।१६
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ।।१७
तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः ।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ।।१८
कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः।। १९

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥२०

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥२१

जिन वर्णों को गर्भ से मरण पर्यन्त के सभी अनुष्ठान मन्त्रों द्वारा करने का उपदेश है उन्हीं को इस शास्त्र के अध्ययन का अधिकार है अन्य को नहीं। सरस्वती और दृषद्वती नामक देव नादियों के मध्य जो देवनिर्मित देश है वही ब्रह्मावर्त कहा गया है। उस देश में चारों वर्ण तथा उनसे उत्पन्न संकीण जातियों का परम्परागत आचार ही उनका सदाचार है। कुरुक्षेत्र मत्स्य, पांचाल और शौरसेनी अर्थात् मथुर इनमें ब्रह्मावर्त से कुछ अंतर है। इन देशों में उत्पन्न हुये ब्रह्माणों से विश्व के सब मनुष्यों को अपना अपना आचार सीखना चाहिये। हिमालय और विन्ध्याचल पर्वत के मध्य में ब्रह्मावर्त के पूर्व की ओर तथा प्रयोग से पश्चिम की ओर का जो देश है उसे मध्यदेश कहते हैं ॥१९-२१॥

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधः ॥२२

कृष्णसारस्तु चरित मृगो यत्र स्वभावतः ।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥२३

एतान्द्विजादयो देशान्संश्रयेरन्प्रयत्नतः ।
शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवशेदवृत्तिकर्शितः ॥

एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता ।
संभवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मानिन्नबोधत ॥२५

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ।२६

पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र पर्यन्त हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य वाले देश को पंडितजन आर्यावर्त कहते हैं। कृष्णसार मृग जहां स्वाभाविक रूप से रहता हो वह देश अनुष्ठान करने के योग्य और इनसे भिन्न म्लेच्छदेश समझें। द्विजगण इन देशों में प्रयत्न पूर्वक रहें किन्तु जीविका के अभाव में दुःखित हुआ शूद्र जीविका के लिये जिस देश में चाहे, जाकर रहे। यह धर्म के मूल और विश्व की रचना का संक्षिप्त विवरण कहा गया, अब वर्ण धर्म कहेंगे। द्विजातियों का गर्भधानादि संस्कार वैदिक पुण्यकर्मों द्वारा करने उचित हैं ॥२२-२६॥

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः ।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥२७
स्वाध्यायेन व्रतहोंमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥२८
प्राङ् नाभिवर्धनात्पुन्सो जातकर्म विधीयते ।
मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥२९
नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत् ।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥३०
मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥३१
शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् ।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥३२

गर्भाधान में हवन से और जातकर्म मुण्डन उपनयनादि संस्कारों से द्विजों का वंजक और गार्भिक दोष नष्ट हो जाता है। स्वाध्याय ब्रत हवन त्रैविद्या देव पितर-तर्पण पुत्रोत्पादन महायज्ञ और यज्ञों के द्वारा इस शरीर को मोक्ष साधन के योग्य बनाया जा सकता है। पुरुष का जातकर्म नाल काटने से पूर्व करे और उस नवजात शिशु को स्वर्ण मधु और घृत का प्राशन वेद-मन्त्र से करे। उस शिशु का दसवें या बारहवें दिन नामकरण करावे यदि इन दिनों में न हो पावे तो किसी पुण्य तिथि शुभ मुहूर्त और श्रेष्ठ गुण वाले नक्षत्र में करावे। ब्राह्मण का नाम मंगलमय क्षत्रिय का शक्तिमय वैश्य का धनमय और शूद्र का निन्दामय होना चाहिए। ब्राह्मण का नाम शर्मा पत वाला क्षत्रिय का रक्षा वाला वैश्य का पुष्टि वाला और शूद्र का दासत्व सूचक रहे ॥२७-३२॥

स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ।
मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ॥३३
चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मंगल कुले ॥३४
चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥३५
गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥३६
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ।
राज्ञ बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥३७
आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ।
आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥३८

स्त्रियों का नाम सुखपूर्वक लेने योग्य, सरल, सुन्दर, स्पष्ट शुभ, आशीर्वाद सूचक तथा उसका अन्तिम अक्षर दीर्घ होना चाहिए। चौथे महीने शिशु को घर से बाहर निकाले, छठे मास अन्नप्राशन करावे और अपने कुल के अनुसार जो इच्छित मंगल कार्य हों, वह करे। द्विजातियों का मण्डन संस्कार प्रथम या तीसरे वष में धर्म के उद्देश्य से करे यह श्रुति है। ब्राह्मण का उपनयन गर्भ से आठवें वर्ष क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष तथा वैश्य का बारहवें वर्ष करे ब्रह्मतेज की कामना वाले ब्राह्मण का पांचवें वष बल के इच्छुक क्षत्रिय का छठे वर्ष तथा धनाभिलाषी वैश्य का आठवें वर्ष उपनयन करे ब्राह्मण को सोलह वर्ष पर्यन्त सावित्री का अतिक्रमण नहीं होता। (अर्थात इस आयु तक उनका उपनयन किया जा सकता है ॥३२-३८॥

अत उर्ध्व त्रयोऽप्यते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रोपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिता, ॥३९

नैतरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्।
ब्राह्मान्यौनांश्च संबन्धानाचरेद्ब्राह्मणः सह ॥४०

कार्ष्ण रौरववास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः।
वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षोमाविकानि च ॥४१

मौञ्जी त्रिवृत्समाश्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वश्यस्य शणतान्तवी ॥४२

मुञ्जालाभे तु कर्तव्याः कुशाश्मन्तकबल्वजैः।
त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥४३

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्।
शणसूत्रमय राज्ञा वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥४४

संस्कार के यथा समय न होने के कारण वे तीनों सावित्री से पतित होकर श्रेष्ठ समाज में निन्दित होते हुए व्रात्य कहे जाते हैं। इन पवित्रता रहित व्रात्यों के साथ विप्र संकट काल में भी अध्यापन या विवाहादि सम्बन्ध न करे। ब्रह्मचारी कृष्णमृग आदि के वस्त्र धारण करे तथा वश्य ऊनी वस्त्र पहिने। ब्रह्म-या रुरुमृग अथवा अज चमको उत्तरीय रूप में तथा सन पटसन चारी ब्राह्मण हो तो मूँज की त्रिवृत्ता और चिकनी मेखला, क्षत्रिय हो तो पूर्वा निर्मित प्रत्यंचा की और वैश्य हो तो सन की डोरी की मेखला धारण करें। मूँज के अभाव में कुश ले यह मेखला त्रिवृत्ता अर्थात् तीनलड़ी बनाकर उसमें एक तीन या पांच गाँठ लगावे। ब्राह्मण का उपवीत कपास का, क्षत्रिय का सन का और वश्य का भेड़ के ऊन का हो जोकि तिहरा करके बांयी ओर से बटा हुआ हो ।।३४-४४।

ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ ।
पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मत ।।४५
केशांतिको ब्राह्मणस्य दण्ड कार्यं प्रमाणतः ।
ललाटसंमितो राज्ञ स्यात्तु नासान्तिको विशः ।।४६
ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणा सौम्यदर्शनाः ।
अनुद्वगकरा नृणां सत्वचोऽनग्निदुषिताः ।।४७
प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम् ।
प्रदक्षिणं परीत्याग्नि चरेद्भैक्ष यथाविधि ।।४८
भवत्पूर्वं चरंद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः ।
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ।।४९
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ।
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत् ।।५०

बेल या ढाक का दण्ड ब्राह्मण, वट या खर का क्षत्रिय और पीलू या गुलर का दण्ड वैश्य धर्म के उद्देश्य से धारण करे। ब्राह्मण का दंड केश तक क्षत्रिय का ललाट तक तथा वैश्य का नासिका तक ऊँचा होना चाहिए। सभी प्रकार के दण्ड सीधे बिना छिद्रादि के देखने में सौम्य, किसी को बुरे न लगने वाले त्वचायुक्त किन्तु अग्नि-दूषित अर्थात् जले हुए न हों। उस दण्ड को हाथ में लेकर सूर्य के समक्ष मुख रखता हुआ अग्नि की प्रदक्षिणा करके यथाविधि भिक्षा की याचना करे। उस समय उपनीत ब्राह्मण 'भवन' शब्द को वाक्य में प्रथम प्रयुक्त करे, क्षत्रिय मध्य में और वैश्य अंत में कहे। (अर्थात् भवति भिक्षां देहि भिक्षां भवति देहि भिक्षां देहि भवति यह क्रमशः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य प्रयोग करे) ब्रह्मचारी सबसे पहिले माता, बहिन, मौसी अथवा किसी ऐसी से जो तिरस्कार न करे, भिक्षा मांगे ॥४६-५०॥

समाहृत्य तु तद्भैक्षं यावदन्नममायया।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचि ॥५१
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः।
श्रियंप्रत्यङ्मुखोभुङ्क्ते ऋतभुङ्क्तेह्युदङ्मुखः ॥५२
उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः।
भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत् ॥५३
पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्टवा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥५४
पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम् ॥ ५५

नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यानाद्याच्चैव तथान्तरा ।
नचैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्ट क्वचिद्व्रजेत् ॥५६

भिक्षा में जो अन्न प्राप्त हो उसे निष्कपट भाव से लाकर गुरु के समक्ष रखे उसकी और आज्ञा लेकर आचमन करने के पश्चात शुचिता पूर्वक पूर्व की ओर मुख करके भोजन करे पूर्व की ओर मुख करके भोजन करने से आयु दक्षिण मुख करके भोजन करने से यश पश्चिम मुख करके भोजन करने से श्री और उत्तर मुख भोजन करने से सत्य का फल मिलता है। द्विजाति नित्यप्रति आचमन करके स्वस्थ मन से खाय फिर आचमन करके देह-छिद्र अर्थात् नाक, कान, नेत्र को जल से स्पर्श करे । भोजन का आदर पूर्वक देखें अन्न की निन्दा न करता हुआ प्रसन्न मन से भोजन करे और अन्न का सहर्ष अभिनन्दन करे । इस प्रकार आहत अन्न सदैव बल और तेज की वृद्धि करता है किन्तु अपूजित अन्न खाने पर बल वीर्य को नष्ट करता है । अपना झूंठा अन्न किसी को न खिलावे और न किसी का झूंठा स्वयं खाये । दिन में एक बार भोजन कर सन्ध्या से पहिले पुनर्बार भोजन न करे । परिमाण से अधिक भोजन न करे और झूंठे मुख से कहीं न जाय ॥५२-५६॥

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥५७
ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ।
कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन: ॥५८
अंगुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ।
कायमंगुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥५९

त्रिराचमेदपः पूर्व दिः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।
खानि चैव स्पृशे द्रिरात्मानं शिर एव च ।।६०
अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् ।
शौचेप्सु सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः ।।६१
हृद्गाभि पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः ।
वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्र स्पृष्टाभिरन्ततः ।।६२

अति भोजन अस्वास्थ्यकर आयु नाशक, स्वर्ग और पुण्य में बाधक तथा लोकनिन्दक है इसलिए अधिक भोजन न करे। ब्राह्मण सदा ब्राह्मतीर्थ से अथवा प्रजापति या दवतीर्थ से आचमन करें किन्तु पित्र्यतीर्थ से कदापि न करे। अँगूठे के मूल के नीचे ब्राह्मतीथ तर्जनी मूल में प्रजापति तीर्थ अन्य अँगुलियों के अग्रभाग में देवतीर्थ और अँगूठे एव प्रदेशिनी के मध्य में पित्र्य तीर्थ कहा गया है। प्रथम तीन बार जल से आचमन करे, फिर दो बार मुख धोवे और तब नासिका कान नेत्र, मुख हृदय और मस्तक का जल से स्पर्श करे। पवित्रता का इच्छुक धर्म-ज्ञाता व्यक्ति एकान्त स्थान में पूर्व या उत्तराभिमुख बैठ कर ठंडे एवं फेनहीन जल से विधिवत आचमन करे। हृदय तक आचमन का जल पहुचाने पर ब्राह्मण कंठ तक पहुँचने पर क्षत्रिय, मुख में पहुँचने से वैश्य और होठों पर जल स्पर्श होने मात्र से शूद्र पवित्र हो जाता है ।।५७-६२।।

उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विज ।
सव्ये प्राचीनआवीती निवीती कण्ठसज्जने ।।६३
मेखलामजिनं दण्डमुवीतं कनण्डलुम् ।
अप्सु प्राश्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत् ।।६४

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वश्यस्य द्वय्धिके ततः ॥६५
अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥६६
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।
पतिसेवा गुरौ वासौ गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥६७
एष प्रोक्तो द्विजातीनामौपनायनिको विधिः ।
उत्पत्तिव्यञ्जकः पुण्यः कर्मयोग निबोधय ॥६८

दांये हाथ के नीचे (बांये कन्धे परा) जनेऊ होता तब द्विज उपवीतो अर्थात् सव्य और इसके विपरीत प्राचीनावीता या अर सव्य होता है किन्तु कण्ठ में लटके रहने पर उसे निवीती कहते हैं। मेखला, मृगछाला, दण्ड उपवीती और कमण्डल, में से कोई टूट जाय तो उसे जल में छोड़कर मन्त्र पढ़ता हुआ नया धारण करे। वाह्मण का केशान्त कर्म सोलहवें वर्ष क्षत्रिय का बाईसवें वर्ष और वैश्य का चौबीसवें वर्ष में युक्त है। शरीर की शुद्धि के लिये स्त्रियों के यह सब कर्म यथासमय, यथाक्रम मन्त्रोच्चार किये बिना ही करें स्त्रियों का वैदिक संस्कार उनका यथाविधि विवाह होना ही है। पतिसेवा ही उनका गुरुगृह में रहना और गृहकार्य ही उनको अग्नि परिचर्या है। द्विजातियों के यज्ञोपवीत की यह पुण्यकारी विधि उनका दूसरा जन्म होना व्यक्त करता है अब उनके कर्मयोग को कहेंगे॥६३-६८॥

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादि तः ।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च ॥६९
अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः ।
ब्रह्माञ्जलिकृतोऽध्याप्यो लघुवासा जितेन्द्रियः॥७०

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौं गुरोः सदा ।
संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ।।७१

व्यत्यस्यपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः ।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ।।७२

अध्येष्यमाणं तु गेर्रुनित्यकालमतन्द्रिः ।
अधीष्व भो इति याद्विरामोऽस्त्विति चारमेत् ।।७३

ब्रह्मणः प्रणव कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ।
स्रवत्यनोंकृते पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ।।६४

शिष्य का यज्ञोपवीत संस्कार करके गुरु उसे शौचाचार अग्निहोत्र और सन्ध्योपासन को विधि सिखावे । अध्ययन का इच्छुक जितेन्द्रिय शिष्य शुद्ध वस्त्र धारण कर शास्त्र विधि से आचमन करे और उत्तराभिमुख होकर ब्रह्माँजलि से बैठ तब गुरु उसे पढ़ावे । वेदाध्ययन के आरम्भ और समाप्त होने पर शिष्य नित्यप्रति गुरु-चरणों का स्पर्श कर और हाथों को जोड़ ले यही ब्रह्मांजलि कही गई है । गुरु के पास जाकर दांये हाथ गुरु का दांया पांव और बाँये हाथ से बांया पांव स्पर्श करे । गुरु के आज्ञा देते पर निरालस्य हुआ शिष्य पढ़ना आरम्भ करे और उनके निवारण करने पर पढ़ना बन्द कर दे । पढ़ने के आदि और अन्त में प्रवण का उच्चारण करे क्योंकि न करने से पढ़ा हुआ पाठ भूल जाता है ।।६९-७४।।

पाक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः ।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओंकारमर्हति ।७५

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापति ।
वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुव स्वरितोति च ।।७६

त्रिभ्य एव तु वेदभ्यः पादं पादमदूदुहत् ।
तदित्तृचोऽस्या सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापति ॥७७
एतदक्षरमेता च जपन्व्याहृतपूर्विकाम् ।
संध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥७८
सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्रिकं द्विजः ।
महतोऽप्येनसो मासात्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥७९
एतचर्या विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥८०

पूर्वाभिमुख होकर कुशासन पर बैठे दोनों हाथों में पवित्रे पहन तीन बार प्राणायाम तथा प्रवण का उच्चारण करे। ब्रह्मा जी ने अकार, उकार मकार इन तीन प्रणवावयवों और भूः भुवः स्व इन तोन व्याहृतियों को तीन वेदों से ग्रहण किया। उन परमेष्ठी प्रजापति ने वेदत्रय से 'तत्' पद से आरम्भ होने वाली सावित्री का एक एक पद ग्रहण किया। वेदविज्ञ विप्र प्रवण और व्यहृति युक्त इस सावित्री मन्त्र का जाप दोनों सन्ध्याओं में करे तो सम्पूर्ण वेदपाठ का पुण्य पावे। द्विज इन प्रणव, व्याहृति और सावित्रीं मन्त्र तीनों को एकान्त स्थान में एकाग्र चित्त से नित्य एक सहस्र जपे तो एक मास में ही घोर पाप से मुक्त हो जाय जैसे कि सर्पं कचली से मुक्त होता है। जो द्विज इस मन्त्र को न जपे या हवनादि कर्मं न करे वह सज्जन समाज में निन्दा का पात्र होता है ॥७५-८०॥

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोव्ययाः ।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥८१
योऽधीतेऽन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः ।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥८२

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते॥८३
क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोतियजतिक्रियाः।
अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥८४
विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥८५
ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥८६

ओंकार सहित तीनों अव्यय महाव्याहृतियों और त्रिपदा सावित्री को वेद का मुख माने। जो निरालस्य होकर प्रणव व्याहृति युक्त सावित्री मन्त्र को नित्य तीन वर्ष पर्यन्त जपे तो वायु के समान इच्छा गति वालों होकर तथा आकाशरूप होकर परब्रह्म को प्राप्त होता हैं। एकाक्षर अर्थात् ॐ परब्रह्म और प्राणायाम परम तप हैं, सावित्री से अधिक कोई मन्त्र नहीं तथा मौन से श्रेष्ठ सत्य बोलना है। वैदिक हवन यज्ञक्रिया एवं उनके फल क्षीण होते हैं, किन्तु प्रणव ब्रह्मा एवं प्रजापति रूप होने से नाश को कभी प्राप्त नहीं होता। विधियज्ञ से जपयज्ञ दसगुना श्रेष्ठ है, उनमें भी उपाँशु जप सौगुना और मानस जप सहस्रगुना विशिष्ट होता है। विधियज्ञ में पितृकर्म, होम, बलि वैश्वदेव रूप जो चार पाकयज्ञ होते हैं वे जपयज्ञ के सोलहवों अंश की भी समानता नहीं करते ॥८१-८८॥

जप्येनव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥८७
इन्द्रियाणां विचारतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ॥८८

एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानि पूर्वे मनीषिणः ।
तानि सम्यक्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥८९
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पंचमी ।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चैव दशमी स्मृता ॥९०
बुद्धिन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥९१
एकादशं मनो ज्ञयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ।
यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गुणौ ॥९२

जप करके ही ब्राह्मण सत्र सिद्धि अवश्य पा लेता है अन्य यज्ञादि कर्म करे अथवा न करे, जप से ही मैत्र कहा जाता है। यज्ञ पुरुष बुद्धि को अपहृत करने वाले विषयों में विचरण करने वाली इन्द्रियों को उसी प्रकार समय में करे जैसे कि सारथी अश्वों को। पूर्व मनीषियों ने ग्यारह इन्द्रियां बताई हैं, उनके नाम कर्म का क्रम से विवेचन करता हूँ। कान, त्वचा, चक्षु, जिह्वा नासिका गुदा उपस्थ हाथ पांव और दसवां मुख इनमें कान आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय तथा गुदा आदि पांच कर्मोन्द्रिय है। ग्यारवाँ मन अपने गुण से उभयात्मक हैं, जिसे वश में रखने से इन्द्रियों के दोनों वर्ग वशीभूत हो जाते हैं ॥८-९२॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धि नियच्छति ॥९३
न जातु कामः कामनामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥९४
यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत् ।
प्रापणात्सर्वकामनां परित्यागो विशिष्यते ॥९५

न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तुमसेवया ।
विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥९६
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धि गच्छन्ति कर्हिचित् ॥९७
श्रुत्वा स्पृष्ट्वाच दृष्ट्वाच भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥९८

इन्द्रियों के विषयों अशक्त होने पर अवश्य ही दोषों को प्राप्ति होती है किन्तु उनके वश में होने परमार्थ लाभ होता है। भोगने से इच्छाओं की तृप्ति कभी नहीं हो पाती वरन् घृत से अग्नि के तीव्र होने के समान ही इच्छा बढ़ती चली जाती है। जो इन्हें भोगता और जो इहें त्याग देता है उनमें त्यागने वाला ही श्रेष्ठ है, क्योंकि भोग प्राप्ति की अपेक्षा त्याग ही श्रेष्ठ माना गया है। जैसे विषयों में युक्त इन्द्रियां ज्ञान द्वारा सर्वकाल में वशीभूत की जा सकती हैं वैसे उनके असेवन मात्र से वश में नहीं आतीं। दुष्टात्मा पुरुष के वेदाध्ययन दान यज्ञ, नियम एवं तप फल की सिद्धि को कभी नहीं पाते। सुनकर स्पर्श कर देखकर, खाकर और सूंघकर जो प्रसन्न या अप्रसन्न न हो वह जितेन्द्रिय कहा गया है ॥९३-९८॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम् ॥९९
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥१००
पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥१०१

पूर्वां संध्यां जपंतिष्ठनन्नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥१०२
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपस्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥१०३
अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः ।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥१०४

सब इन्द्रियों में एक भी इन्द्रिय बिगड़ जाय तो उसी से बुद्धि भ्रष्ट होती है जैसे कि बर्तन में एक भी छिद्र हो तो जल निकल जाता है। इन्द्रियों को अपने वश में करके तथा योग बल से मन को संयमित करके देह को बिना कष्ट दिये ही उचित विधि से सभी पुरुषार्थों का साधन करना चाहिए। प्रातःकालीन सन्ध्या में सूर्य के दर्शन होने तक पूर्व की ओर मुख करके खड़ा होकर सावित्री जप करे और सायकालीन सध्या में तारे दिखाई न दें तब तक पश्चिम की ओर मुख करके बैठ हुए जप करें। प्रातः सन्ध्या में खड़े होकर जप करने से रात्रि के पाप और साय सध्या में बैठकर जप करने से दिन भर के पाप नष्ट हो जाते हैं। जो दोनों समय सन्ध्या नहीं करता उसे सब द्विजोजित कर्मों से शूद्र के समान ही बहिष्कृत कर दे। एकान्त वन में जल के निकट नित्य कर्म पूर्ण करके निश्चल चित्त से सावित्री का जप करे ॥९९-१००॥

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥१०५
नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं तत्स्मृतम् ।
ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ॥१०६

य: स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचि ।
तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु ॥१०७
अग्नन्धिनं भैक्षचर्यामधः शय्यां गुरोर्हितम् ।
आ समावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयतो द्विज ॥१०८
आचार्यपुत्रः शुश्रुषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ।
आप्तः शक्तोऽर्थदःसाधुःस्वोध्याप्यादशधर्मतः ॥१०९
नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः।
जानन्नपिहि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥११०

वेदांग के नित्य अध्ययन और होममन्त्र को अनध्याय में भी न छोड़े । नित्यकर्म में अनध्याय नहीं होता क्योंकि वह ब्रह्मसूत्र कहा गया हैं जिसमें वेदाध्ययन ही आहुति है तथा अनध्याय में होने वाली वेद ध्वनि ही पुण्य एव वषटकार है जो पवित्र होकर नियत चित्त से विधिवत वेदाध्यन एक वर्ष पर्यन्त करे उसे उसी के द्वारा दूध दधि, घृत, और मधु आदि जैसी उपलब्धि होती है। उपनीत द्विज वेदाध्ययन की समाप्त तक प्रातःसाय समिधा लाकर हाम, भिक्षा गुरु सेवा एवं भूमि शयन नित्य नियम पूर्वक करे । आचार्यपुत्र, आचार्य की सेवा करने वाला, ज्ञानी धार्मिक शुचि, आप्त, समथं धनदाता सज्जन और आत्मीय ये दस वेद पढ़ाने के धर्मपूवक अधिकारी हैं । मेधावी पुरुष जानकर भी बिन पूछे या अन्याय से पूछने पर कुछ भी न बतावे वरन् जड़वत् रहा आवे ॥१०१-११०॥

अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति ॥१११
धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा ।
तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥११२

विद्ययव समं कामं कर्तव्य ह्मवादिना ।
आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत् ॥११३

विद्याब्राह्मणमेत्याह शेवधिष्टेऽस्मि रक्षमाम् ।
असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वोर्यवत्तना ॥११४

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम् ।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥११५

ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानदवाप्नुयात् ।
स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥११६

जो अधर्म से बोले या जो अधर्म से पूछे इनमें मर्यादा भग करने वाला ही नष्ट हाता अथवा निद्वेष को पाता है । जहां धर्म धन या उपयुक्त सेवा शुश्रूषा का अभाव हो वहां विद्या का उपदेश न करे क्योंकि उस स्थिति में विद्या का उपदेश अनुर्वर खेत में डाले हुए बीज के समान निष्फल होता है । वेद पढ़ाने वाला अपनी विद्या के सहित मरण को भले ही प्राप्त हो जाये किन्तु विपत्तिकाल भी विद्या को अपात्र को न दे । विद्या को अधिष्ठात्री देवो ने अध्यापक से कहा—मैं तुम्हारी ही निधि हूँ मेरी रक्षा करो और वेदनिन्दकों को मुझे मत सौंपो, इससे मैं पूर्ण बलवती रहूगी जिसे पवित्र नियतेन्द्रिय और ब्रह्मचारी जानो उसी अप्रमादी विद्य धन के रक्षक ब्राह्मण शिष्य को मुझे प्रदान करना। जो व्यक्ति अन्य व्यक्ति गुरु से वेद शिक्षा लेते हुए गुरु कोआज्ञा के बिना हो वेद श्रवण करता हैं वह वेद चुराने वाला पापी नरक में जाता है ॥१११-११६॥

लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च ।
आददीत यतो ज्ञानं तां पूर्वमभिवादयेत् ॥११७

सावित्रीमात्रसारोऽपि वरः विप्रः सुयन्त्रितः ।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥११८

शयासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ।
शयासनेस्थश्चैवेनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥११९

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनःस्थाविर आयति ।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥१२०

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धो पनसेबिनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥१२१

अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादय- ।
असौ नामाहस्मीति स्वं नाम परिकीर्तयेत् ॥१२२

जिससे लौकिक, वैदिक और आध्यात्मिक ज्ञान मिले, उसे सर्व प्रथम अभिवादन करे । अपनी इन्द्रियों को भली प्रकार वश में रखने वाला ब्राह्मण सावित्री मात्र का ज्ञाता हो तो भी श्रेष्ठ है किन्तु सर्वभक्षी, सर्व विक्रयी, असंयमी विप्र त्रिवेदज्ञाता हो तो भी श्रेष्ठ नहीं हो सकता। जिस शय्या या आसन पर गुरु बैठ हो उस पर न बैठे यदि स्वयं शय्या या आसन पर बैठ हो तो (गुरु को देखते ही) तुरन्त उठकर प्रणाम करे । बड़ा आवे तब छोटे के प्राण उत्क्रमण करते है इसलिए उठकर अभिवादन करने से प्राण पुन स्वस्थान पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं । जो नित्य बड़ों की सेवा और अभिवादनादि करता हैं उसकी आयु विद्या यश और बल की वृद्धि होती है विप्र अपने से बड़े को प्रणाम करके अपना नाम बताता हुआ कहे कि मैं अमुक व्यक्ति हूं ॥११७- २२॥

नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते ।
तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रिय सर्वास्तथैव च ॥१२३

भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने ।
नाम्नां स्वरूपभावो हि भोभाव ऋषिभिःस्मृतः ।।१२४

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ।
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्य,पूर्वाक्षरःप्लुतः ।।१२५

यो न वेअय भवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ।
नाभिवाद्यः स विदुषां यथा शूद्रस्तथैव स ।।१२६

ब्राह्मण कुशल पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् ।
वश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ।।१२७

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ।
भोमवत्पूर्वक त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ।।१२८

इस प्रकार के अभिवादन में कहे गये शब्दों को कोई वृद्ध पुरुष न समझे तो प्रणाम ही करे यहीं नियम स्त्रियों के लिए है अभिवादन में नाम लेकर अन्त में 'भोः' शब्द कहे, ऋषियों के अनुसार यह भो शब्द जिन्हें प्रणाम किया जाय उन्हीं के नाम का स्वरूप होता है । प्रणाम के पश्चात् गुरु शिष्य को आयुष्मान होने का आशीर्वाद दे उनके नाम के अन्त में अकार हो तो उसे प्लुत करके बोले । अभिवादन के उत्तर में जो विप्र प्रत्यभिवादन न करे, उसे विद्वान् पुरुष शूद्रवत मान कर अभिवादन कभी न करे भेंट के समय ब्राह्मण से कुशल क्षत्रिय से अनामय वैश्य से क्षेम और शूद्र से आरोग्य विषयक प्रश्न करे । दीक्षित आय में अपने से छोटा हो तो भी उसका नाम न ले. धर्मज्ञ व्यक्ति भी या भवान् शब्द कहता हुआ सादर वार्तालाप करे । ।१२२-१२८।।

परपत्नी तु या स्त्री स्यादसम्बन्धा च योनितः।
तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च ।।१२९

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ।
असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥१३०

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा ।
संपूज्याः गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्यया ॥१३१

भ्रातुर्भार्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि ।
विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसंबन्धियोषितः ॥१३२

पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि ।
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥१३३

दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम् ।
त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥१३४

जिस परस्त्री से किसी प्रकार का सम्बन्ध न हो उसे भवती' अर्थात् आप सुभगे अथवा बहन के रूप में सम्बोधन करे मामा, चाचा, श्वसुर, पुरोहित अथवा अन्य पुरुष जो सम्बन्ध में बड़ा, किन्तु आयु में छोटा हो उसे प्रणाम न करके, किन्तु उठकर यह मैं हूँ इतना ही कहे। मौसी, मामी, सास, बुआ गुरुपत्नी के समान होने के कारण वैसी ही पूजनीया हैं। समान वर्ण की विवाहिता बड़े भाई की पत्नी को नित्य तथा सम्बन्ध की अन्य स्त्रियों के परदेश से आने पर प्रणाम करे। बुआ मौसी और अपनी ज्येष्ठा भगिनि के साथ मातृवत व्यवहार करे किन्तु माता को इन सब से महान समझे। ग्रामीणों में दस वर्ष का कलाकारों में पांच वर्ष का और वेदपाठियों में तीन वर्ष आयु कम या अधिक हो तो भी मैत्रीभाव रहता है किन्तु सम्बन्धियों में अल्प दिनों का छोटा बड़ा होना भी उसी प्रकार के आदर का पात्र होता हैं ॥१२९-१३४॥

ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम् ।
पितापुत्रौ विजानीयाद्ब्राह्मस्तु तयोः पिता ॥१३५

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥१३६

पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च ।
यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः॥१३७

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ।
स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥१३८

तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ ।
राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक्॥१३९

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सङ्कल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥१४०

दस वर्षीय ब्राह्मण बालक और सौ वर्षीय क्षत्रिय वृद्ध परस्पर पिता पुत्र के समान हैं अर्थात् वह वृद्ध क्षत्रिय उस बालक विप्र को पिता के समान मानें। वित्त, बन्धु, वय, कर्म और विद्या इन पांच मान्य स्थानों में उत्तरोतार बड़ा है तीनों वर्णों में से जिसमें उक्त गुणों की अपेक्षा पूर्वोक्त गुणो की अधिकता हो तौ वह अधिक मान्य होगा इस प्रकार दस दशक में पहुँचा हुआ शूद्र भी मान्य होता है। रथारूढ़ अतिवृद्ध, रोगी भार वाहक, स्त्री स्नातक, राजा और वर को मार्ग देना आवश्यक है। यह सब साथ हो तो इनमें स्नातक और राजा अधिक मान्य है, स्नातक को राजा से विशिष्ट समझें। शिष्य का उपनयन कर जो ब्राह्मण गुरु कल्प और रहस्य के साथ वे पढ़ावे वह आचार्य कहा जाता है ॥१३५-१४०॥

एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः ।
योऽध्यापयति वृत्यर्थमुपाध्ययः स उच्यते ॥१४१
निषेकादानि कर्माणि यः करोति यथाविधि ।
संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥१४२
अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् । ो
यः करोति वृत्तो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यत ॥१४३
य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ ।
स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कदाचन ॥१४४
उपाध्यायन्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥१४५
उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गयान्ब्रह्मदः पिता ।
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥१४६

वेद का एक भाग मन्त्र और वेदांग आदि जो विप्र आजीविका के लिए पढ़ावे वह उपाध्याय कहा जायगा । जो यथाविधि कर्म करता और अन्न से उसे पाषित करता है वह ब्राह्मण गुरु कहा जाता है । जो ब्राह्मण जिसकी ओर से वरण होकर अग्न्याधान पाकयज्ञ और अग्निष्टोम आदि मखों को करता है, वह उस यजमान का ऋत्विज कहा जाता है । जो विप्र शुचिता युक्त होकर दोनों कानों में सत्यरूपी वेद को भर दे उसे माता पिता के समानजान कर द्वेष न करे । उपाध्याय से दस गुना आचार्य आचार्य से सौ गुना पिता और पिता से सहस्रगुनी माता श्रेष्ठ होती है । जन्मदाता और ब्रह्मज्ञानदाता आचाय दोनों ही पिता हैं किन्तु इन दोनों में भी वेदज्ञान देने वाला श्रेष्ठ है, क्योंकि यज्ञोपवीत से ब्राह्मण का ब्रह्मजन्म होता और वह दोनों लोकों में अमृततत्व प्राप्त करता है ॥१४१-१४६॥

कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः ।
संभूति तस्य ता विद्याद्यद्योनावभिजायते ॥१४७
आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः ।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा ॥१४८
अल्प वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः ।
तमपीहं गुरु विद्याश्रु तोपक्रियया तया ॥१४९
ब्राह्मस्य जन्मन कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता ।
बालोऽपि विप्रौ वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः ॥१५०
अध्यापयामस पितृञ्शिशूरांगिरसः कवि ।
पुत्रका इतिहोवाच ज्ञानेन परिगुह्य ताम् ॥१५१
ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यावः ।
देवाश्चै तान्समेत्योचुर्न्याय्यं वः शिशुरुक्तवान् ॥१५२

माता के उदर में अंग प्रत्यंग प्राप्त कर माता पिता के काम वश जन्म लेना पिण्डज जीवों के समान सामान्य जन्म ही है। वेदपारग आचार्य विधिवत सावित्री मन्त्र द्वारा जो नवीन जन्म देते हैं वहीं जन्म सत्य तथा अजर अमर है। उपाध्याय शास्त्र के द्वारा अल्प या अधिक उपकार करे नो भी शिष्य उसे गुरु ही माने वैदिक जन्म देने वाला तथा अपने धर्म की सिखाने वाला विप्र बालक हो तो भी वृद्ध शिष्य का पिता ही होता हैं। अंगिरा के विज्ञ बालक ने अपने चाचाओं को अध्ययन कराया तथा ज्ञान के द्वारा उन्हें शिष्य भाव से पुत्र कहा। इससे क्रोधित होकर उन्होंने देवताओं से इसका अभिप्राय पूछा तो देवताओं ने कहा कि उस बालक द्वारा तुम्हें पुत्र कहा जाना उचित है ॥१४७-१५२॥

अज्ञो भवति वै बाल पिता भवति मन्त्रद :।
अज्ञ हि वालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम्।।१५३
न हायनैर्न पलितैन वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्म योऽनूचानःस नो महान् ।।१५४
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यम् क्षत्रियाणाँ तु वीर्यत ।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ।।१५५
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
योवै युवाप्यधीयानस्तं देवाःस्थविरं विदुः ।।१५६
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रस्ते नाम बिभ्रति ।।१५७
यथा षण्ढोऽफल. स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला ।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनचोऽफलः।।१५८

अज्ञानी ही बालक तथा वेदमन्त्रदाता पिता है, क्योंकि पूर्वाचार्यों ने ऐसा ही कहा है। अधिक आयु होने या केश पलित होने तथा अधिक धन या बांधवादि होने से ही कोई वड़ा नहीं होता वरन् जिसने वेद-वेदांग का अध्ययन किया, वही बड़ा है, यह व्यवस्था धर्मसंगत है। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता ज्ञान से क्षत्रियों की शक्ति से वैश्यों की धन धान्य से और शूद्रों की आयु से मानी जाती हैं। सिर के केश पकने से ही कोई वृद्ध नही होता वरन् देवगण उसी को वृद्ध मनाते है जिसने युवावस्था में भी वेदाध्ययन कर लिया हैं। काठ का हाथी चर्ममय मृग और बिना पढ़ा ब्राह्मण तीनों ही समान और केवल नाम धारण करने वाले है जैसे स्त्रियों में पुंसत्वहीन, गौओं में गौ, मूर्ख को दिया हुआ दान निष्फल है वैसे ही वेद ऋचाओं से अनभिज्ञ विप्र निष्फल हैं ।।१५३-१५८।।

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोनुशासनम् ।
वाक्चैव मधुरा श्लक्षणा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ।।१५९
यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ।।१६०
नारुंतुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः ।
ययास्योद्विजते वाचा नोलोक्यां तामुदीरयेत् ।।१६१
समानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकांक्षेदवमानस्य सर्वदा ।।१६२
सुखं ह्यवमत, शेते सुखं च प्रतिबुध्यते ।
सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ।।१६३
अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः ।
गुरौ वसन्संचिनुयाद्ब्रह्माधिगमिकं तपः ।।१६४

शिष्यों के हितार्थ अनुशासन भी अहिंसामय होना उचित है, धर्मेच्छुक गुरु प्रीतिमय कोमल वचन प्रयुक्त करे। जिसके मन वचन पवित्र हैं और जो सदा भले प्रकार से सुरक्षित है, वह वेदान्त सम्मत फलों को पाता है। दुःखित होता हुआ भी किसी का चित न दुखावे, किसी के प्रति द्रोहबुद्धि न रखे तथा किसी के लिए उद्वेगप्रद वचन न बोले। सम्मान से विष के समान दूर रहे और असमान को अमृत के समान चाहे। अपमानित पुरुष सुखपूर्वक सोता जागता और विचारता है, किन्तु असमानकर्त्ता विनष्ट हो जाता है। इस प्रकार संस्कृत हुआ द्विज गुरुगृह में रहकर ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि के निमित्त तप-संचय करे ।।१५९-१६४।।

तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितैः ।
वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥१६५
वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥१६६
आ हैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः ।
यः स्त्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम्॥१६७
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥१६८
मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥१६९
तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥१७०

द्विजाति को विधिवत विशेष प्रकार के तपों और व्रतों के पालन सहित वेद वेदांग को हृदयंगम करे। तप करता हुआ ब्राह्मण सदैव वेदाभ्यास करे, क्योंकि इस लोक में विप्र के लिए वेदाभ्यास ही परम तप बताया हैं। जो ब्रह्मचारी विप्र माल्य धारण पूर्वक यथाशक्ति वेदाध्ययन करता हैं वह नखाग्र पर्यन्त तपस्या करता है। जो ब्राह्मण वेदाध्ययन न करके अन्य शास्त्रों में परिश्रम करता है वह अपने कुछ सहित इसी जन्म में शूद्रत्व पाता है। पहला जन्म माता से दूसरा उपनयन से और तीसरा श्रुति प्रेरित यज्ञदीक्षा से होता है। इन तीनों जन्मों में यज्ञोपवीत-चिन्हित जो जन्म है, उसमें इस ब्राह्मण की माता सावित्री एवं पिता आचार्य कहलाता है॥१६५-१७०॥

वेदप्रदानदाचार्यं पितरं परिचक्षते ।
नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबन्धनात् ॥१७१

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ।
शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदे न जायते ॥१७२

तोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ।
ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥१७३

यद्यस्य विहितं चर्म यत्सूत्रं या च मेखला ।
यो दण्डो यच्च वसनं तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥१७४

सेवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरौ वसन् ।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः ॥१७५

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् ।
देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥१७६

वेदज्ञान देने के कारण आचार्य पिता कहा जाता है क्योंकि उपनयन के पूर्व जन्मदाता पिता के होते हुए भी वह वैदिक कर्म का अधिकारी नहीं होता। श्राद्ध के मन्त्रों के अतिरिक्त, उपनीत न हुए ब्राह्मण को वेदमन्त्रों का उच्चारण वर्जित है, क्योंकि जब तक वह यज्ञोपवीत धारण कर दूसरा जन्म प्राप्त नहीं कर लेता तब तक शूद्र के समान रहता है। यज्ञोपवीत होने पर वह ब्राह्मण बालक व्रतादेश लेकर क्रम और विधि से वेद ग्रहण करे। उपनयन में जिस ब्रह्मचारी के लिए जो चर्म सूत्र, मेखला, दण्ड और वस्त्र कहा है वही व्रतों में भी ग्राह्य है। गुरुगृह में रह कर ब्रह्मचारी इन्द्रियों को भले प्रकार वश में रखता हुआ तपस्या वृद्धि के लिए उक्त नियमों का निर्वाह करे। नित्य स्नान से पवित्र होकर देव ऋषि और पितरों का तर्पण, देवपूजन और अग्न्याधान करे। ॥१७१-१७६॥

वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः ।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥१७७
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम् ॥१७८
द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम् ।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥१७९
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित् ।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥१८०
स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत्॥१८१
उदकुम्भं सुमनसो गोश मृत्तिकाकुशान् ।
आहरेद्यावदर्थानि भैक्षं नाहरहश्चरेत् ॥१८२

मधु, मांस, गन्ध, माल्यः रस, नारीं-संसर्ग, आसव और जीव हिंसा ब्रह्मचारी के लिए वर्जित हैं। अभ्यंग अन्जन, जूता, माता, काम, क्रोध, लोभ, गीत, वांद्य एवं, नृत्य से दूर रहे। छूत, कलह, निन्दा, अनृत, स्त्रियों की और कामदृष्टि या आलिंगन आदि कर्म भी ब्रह्मचारी के लिए वर्जित है। सर्वत्र एकाकी शयन करे और वीर्य नष्ट न होने दे, क्योंकि स्वेच्छा से वीर्यपात करने से उसका व्रत नष्ट हो जाता है। अदि स्वप्न में अनिच्छापूर्वक वीर्यपात हो जाय तो ब्रह्मचारी स्नान करके सूर्य-पूजन और 'पुनर्मा' ऋचा का तीन बार जप करे। घड़े में जल, पुष्प गोबर, मृत्तिका और कुश तथा नित्यप्रति भिक्षा लावे ॥१७७-१८२॥

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तनां स्वकर्मसु ।
ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥१८३
गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ।
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥१८४
सर्वं वापि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसंभवे ।
नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत् ॥१८५
दूरादाहृत्य समिधः संनिदध्याद्विहायसि ।
सायंप्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः ॥१८६
अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्य च पावकम् ।
अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥१८७
भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती ।
भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥१८८

अपने धर्म कर्म का पालन करने वाले जिन गृहस्थों के यहां वेद और यज्ञ सदा होते हों उनसे ही ब्रह्मचारी भिक्षा लावे। गुरुगृह में तथा अपने जाति वाले या बांधव के घर में भिक्षा न मांगे किन्तु अन्य स्थान से भिक्षा न मिले तो पूर्व-पूर्व का त्याग करता हुआ भिक्षा ले ले। उक्त घरों का भी अभाव हो तो मौन धारण कर भिक्षा के लिए ग्राम में चाहे जहां जाय, किन्तु पापियों से भिक्षा न ले। दूर से समिधा लाकर ऊपर अर्थात् टांडे आदि पर रख दे उनसे ही प्रायः सायं समय में आलस्य छोड़ कर होम करे। स्वस्थ अवस्था वाला ब्रह्मचारी सात दिन तक भिक्षा या अग्निकर्म न करे तो व्रत भंग होने के कारण अवकीर्णिव्रत करे। ब्रह्मचारी नित्य भिक्षा करे किसी एक का हो अन्न न खाय, भिक्षावृत्ति करना उपवास के ही समान है ॥१८३-१८८॥

व्रतवद्देवदैवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथर्षिवत् ।
कामभ्यर्थितोऽश्नीयाद्व्रतमस्य न लुप्यते ।।१८९

ब्राह्मणस्यैव कर्मैतदुपदिष्टं मनीषिभिः ।
राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं नैतत्कर्म विधीयते ।।१९०

चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा ।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च ।।१९१

शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ।
नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ।।१९२

नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारः सुसंयतः ।
आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः ।।१९३

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत् ।।१९४

देवकर्म में देवप्रीति के लिए निमत्रित ब्राह्मचारी एक ही गृहस्थ के यहाँ मधुमांसादि रहित तथा पितरकर्म में भी ज्ञानी मुनि के समान अपने व्रत के ही अनुकूल भोजन करे तो उसका व्रत नष्ट नहीं होता। मनीषियों ने यह भोजन व्यवस्था ब्राह्मण के लिए ही कही है, क्षत्रिय या वैश्य के लिए नहीं। गुरु की प्रेरणा से अथवा बिना प्रेरणा के भी नित्य वेदाध्ययन और आचार्य की सेवा करे। शरीर वाणी, बुद्धि, इन्द्रिय और मन को भले प्रकार संयम करके अंजुली बांध, गुरु के मुख की ओर देखता हुआ शान्ति से खड़ा रहे। अपना दाँया हाथ उत्तरीय के बाहर निकाले हुए, सदाचाररत एवं जितेन्द्रिय रह कर गुरु के समक्ष खड़ा रहे और उनकी आज्ञा होने पर उनकी ही ओर मुख करके बैठे। गुरु के भोजन वस्त्रादि से हीन

भोजन वस्त्र का उपयोग करे, उनके जागने से पूर्व जागे और सोने पश्चात् सोवे ॥१८९-१९४॥

प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समाचरेत् ।
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्नो पराङ्मुखः ॥१९५

आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगचछंस्तु तिष्ठतः ९।
प्रत्युद्गम्य त्वाव्रजतःपश्चाद्धार्यस्तु धावतः ॥१ ६

पराङ्मुखस्याभिमुखो दूतस्यैत्य चांतिकम् ।
प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः ॥१९७
नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये व यथेष्टासनो भवेत् ॥१९८
नोदाहरेदस्य नाम परीक्षमपि केवलम् ।
न चैवास्यनुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम्॥१९९

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्य वा ततोऽन्यत ॥२००

लेटें हुए, बैठे हुए भोजन करते हुए या मुख फेर कर खड़े हुए गुरु की आज्ञा का श्रवण या उनसे वार्तालाप अनुचित है । आसन पर बैठे हुए गुरु की स्वयं आसन से उठ कर खड़े गुरु की उनके सामने जाकर आते हुए गुरु कों कुछ दूर उनके समक्ष चल कर और चलते हुए गुरु की उनके पीछे भाग कर आज्ञा का सुने । गुरु ने मुख फेरा हुआ हो तो उनके सामने जाकर, दूर हों तो निकट पहुँच कर, सोते हों तो प्रणाम करके तथा समीप बैठे हो तो सिर झुका कर उनके आदेश को सुने । गुरु के निकट शिष्य की शय्या और आसन सदैव नीचे रहें गुरु के देखते हुए इच्छित आसन पर या इच्छानुसारे ही न बैठे । परोक्ष में भी उनका नाम भी न ले उनके चलते, बोलने या चेष्टा करने की

मकल या उपवास न करे। जहां गुरु का उपवास अथवा निन्दा होती हो, वहां कान बन्द करले या उठ कर चला जाय ।१९५-२००॥

परीवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः ।
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरीः ॥२०१
दूरस्थो नार्चयेदेनं क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाँ।
यानासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेद् ॥२०२
प्रतिवातेऽनुवाते च नासीत गुरुणा सह ।
असंश्रव चैव गुरोर्न किंचिदपि कीर्तयेत् ॥२०३
गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादस्रास्तरेषु कटेषु च ।
आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च ॥२०४
गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ।
न चानिसृष्टो गुरुणा स्वान्गरूनभिवादयेत् ।।२०५
विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु ।
प्रतिषेधत्सु चाधर्मान्हितं चोपनिशत्स्वपि ॥२०६

गुरु निन्दा सुनने के कारण मरणोपरान्त गधा, उनकी निन्दा करने के कारण श्वान उनकी सम्पत्ति का दुरुपयोग करने से कृमि और उनसे ईर्ष्या करने से कीट होता है। दूर से गुरुपूजन न करे, क्रोधावेश में या स्त्री के निकट होने पर भी पूजन न करे किसी वाहन पर चढ़ा हो तब गुरु दिखाई पड़ जाँय तो वाहन से उतर कर उन्हें प्रणाम करे। ऐसे स्थान पर गुरु के साथ न बैठे, जहाँ चलती हुई वायु परस्पर एक दूसरे के शरीर को स्पर्श करता हो गुरु जब न सुनें या जिसे सुनना न चाहें उस समय वह बात उनसे न कहे। बैलगाड़ी घोड़ागाड़ी ऊँट की सवारी, प्रासाद

चटाइ, पाषण चौकी तथा नाव पर गुरु के साथ बैठना अनुचित नहीं है। गुरु के गुरु निकट हों तो उनके साथ भी गुरु जैसा ही व्यवहार करे, किन्तु गुरु का सङ्केत न मिले तो अपने गुरुजनों को भी प्रणाम न करे। विद्यागुरुओं के प्रति भी वैसा ही बर्ताव करे अपने से बड़े तथा अधर्म से रोक कर धर्म का उपदेश करने वाले के साथ भी गुरु जैसा ही व्यवहार करे ॥२०१-२०६॥

श्रेयःसु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् ।
गुरु पुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥२०७

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि ।
अध्यापयन्गूरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ॥२०८

उत्सादनं च गात्राणां स्थापनोच्छिष्ट भोजने ।
न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम् ॥२०९

गूरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः स्वर्णा गूरुयोषितः ।
असवर्णाश्तु संपूज्या प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥२२०

अभ्यञ्जनं स्थापनं च गात्रोत्सादनमेव च ।
गूरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥२११

गूरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः ।
पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता ॥२१२

श्रेष्ठपुरुष गुरुपुत्र गुरु के बन्धु आदि को भी गुरु के समान मान कर वैसा हीं व्यवहार करे। गुरुपुत्र आयु में छोटा समान या शिष्य भी हो तो अध्यापन का अधिकारी होने पर वह यज्ञ-कार्य में गुरु के समान पूजनीय है। गुरुपुत्र के देह का मर्दन, स्नान,प्रक्षालन उच्छिष्ट सेवन आदि न करे। सजातीय गुरुपत्नी गुरु के सदृश पूजनीया है किन्तु असवर्णा गुरुपत्नी प्रत्युत्थान एवं

अभिवादन के योग्य है। गुरुपत्नी के तेल मलना, उवटन लगाना, स्नान कराना, देह दावना वाल सँवारना आदि कार्य न करे। गुणदोष का ज्ञाता बीस वर्षीया युवक शिष्य युवती गुरुपत्नी को पाँव छूकर अभिवादन न करे ॥२०८-२ २॥

स्वभाव एवं नारीणाँ नराणामिह दूषणम् ।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः२१३
अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ।
प्रमदा ह्युत्पथं नतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥२१४
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
वलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमवि कर्षति ॥२१३
कामं तु गूरुपीत्ननां युवतीनां युवा भुवि ।
विधिवद्वन्दनं कुर्यादसावहमिति ब्रुवन् ॥२१६
विप्रोष्य पादग्रहणवन्वहं चाभिवादनम् ।
गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् ॥२१७
यथा खनन्खनित्रण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥२१८

स्त्रियों का स्वभाव गुरुषों को दूषित करने वाला होने के कारण युवतियों के प्रति ज्ञानी पुरुष असावधान नहीं रहते। प्रमद नारी इस लोक में काम क्रोध के वशीभूत हुए मूर्ख अथवा बिद्वान् को भी कुमार्ग में ले जाने में समर्थ है। एकान्त में माता बहिन या पुत्री के साथ भी एक आसन पर न बैठे, क्योंकि इन्द्रियों का यह वलवान समूह विद्वान् को भी आकर्षित कर लेता है। युवती गुरुपत्नियों को युवा शिष्य अपना नाम कहकर दूर से ही पृथिवी में पड़ कर प्रणाम करे। परदेश से आया हुआ

शिष्य साधु पुरुषों के धर्म का स्मरण करता हुआ गुरुपत्नियों के चरणों के निकट दोनों हाथों से भूमि का स्पर्श करता हुआ प्रणाम करे . जैसे कुदाल से भूमि खोदता हुआ पुरुष किसी दिन जल निकाल लिया जाता है वैसे ही गुरुसेवा करता हुआ शिष्य किसी दिन गुरु की विद्या को प्राप्त कर लेता है ॥२१३-२१८॥

मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः ।
नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेत्सूर्यो नाभ्युदियात्क्वचित्॥२१९

तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः ।
निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ॥२२०

सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्चयः।
प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा ॥२२१

आचम्य प्रयतो नित्यमुभे संध्ये समाहितः ।
शुचौ देशे जपञ्जप्यमुपासीत यथाविधि ॥२२२

यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किंचित्समाचरेत् ।
तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वास्य रमेन्मनः ॥२२३

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च ।
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः ॥२२४

ब्रह्मचारी, मुन्डित जटाधारी या चोटी की जटा वाले का सूर्योदय या सूर्यास्त ग्राम में नहीं होना चाहिए । ब्रह्मचारी स्वेच्छा से सोया हुआ हो और सूर्योदय हो जाय तो दिनभर उपवास और मन्त्र जप करे । यदि अनजाने में सूर्यास्त होजाय तो दूसरे दिन उपवास और जप करे। ब्रह्मचारी के सोते हुए में ही सूर्योदय या सूर्यास्त होजाने पर प्रायश्चित्त के बिना महापाप में पड़ता है । नित्य दोनों सन्ध्याओं के समय संयमचित्त से साव-

धान होकर पवित्र स्थल में मन्त्रजप एवं सूर्योपासन करे। यदि स्त्री या शूद्र कोई श्रेष्ठ कर्म करे तो उन्हें ब्रह्मचारी होकर भी वैसा ही करना चाहिए जिस शास्त्रविहित कर्म में मन लगे उसे भी करे तो अयुक्त नहीं है। कोई धर्म और अर्थ को कोई काम और अर्थ को कोई केवल धर्म को और कोई केवल अर्थ को ही श्रेयस्कर मानते हैं किन्तु यथार्थ में धर्म अर्थ काम तीनों ही श्रेयस्कर हैं ॥२१९-२२ ॥

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥२२५

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापते ।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः॥२२६

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२२७

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥२२८

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते ।
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥२२९

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः ।
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥२३०

दुःखित होने पर भी आचार्य,पिता, माता और ज्येष्ठ भ्राता का अपमान न करे विशेषकर ब्राह्मण को तो ऐसा कदापि नहीं करना चाहिए आचार्य ब्राह्मा की,पिता प्रजापति की,माता पृथिवी की और भ्राता आत्मा की मूर्ति है। माता पिता सन्तानोत्पादन में जो कष्ट सहन करते हैं उससे सौ वर्षों में भी निस्तार नहीं हो

सकता। माता, पिता और आचार्य को सदैव प्रसन्न रखे, क्योंकि इन तीनों की प्रसन्नता होने पर ही सब तप पूर्ण होते हैं। इन तीनों की सेवा ही परम तपस्या है इनकी आज्ञा के बिना अन्य धर्म का आचरण न कर। ये तीनो ही तीन लोक, तीन आश्रम, तीन वेद और तीन अग्नि हैं ॥२२५-२३०॥

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः।
गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ॥२३१
त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रीँल्लोकान्विजयेद्गृही।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ॥२३२
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्।
गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥२३३
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रिया ॥२३४
यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्न्यं समाचरेत्।
तेष्वेव नित्यं शुश्रूषाँ कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥२३५
तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदाचरेत्।
तत्तन्निवेदयत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥२३६

पिता गार्हपत्य अग्नि माता दक्षिणाग्नि और आचार्य आहवनीय अग्नि हैं, यह तीनों अग्नि महिमामयी कही जाती हैं। इन तीनों के प्रति अप्रमादी गृहस्थ त्रिलोक को जीतकर तेजयुक्त देह से स्वर्ग में देवता के समान रहता है।। इस लोक का मातृभक्ति
से, स्वर्ग में देवता के समान रहता है। इस लोक का मातृभक्ति
गुरुभक्ति से उपलब्ध होता है। जिसके माता, पिता गुरु,

आदर पाते हैं उनसे सब धर्म आहृत होते हैं, जिसके यह तीनों अनाहृत होते हैं, उसके सब कर्म निष्फल हो जाते हैं। इन तीनों की सेवा में उनके जीवन पर्यन्त तत्पर रहता हुआ अन्य धर्म का सेवन न करे। उनकी अनुमति लेकर मन, वचन कर्म से जो भी कर्म करे, उनकी ही सेवा में निवेदन करदे ॥२३१-२३६॥

त्रिष्वेतोष्विनकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते।
एष धर्मः पर साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥२३७
श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥२३८
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि कांचनम् ॥२३९
स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥२४०
अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते।
अनुव्रज्या च शूश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ॥२४१
नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत्।
ब्राह्मणे चाननूचाने काङ्क्षन्गतिमनुत्तमाम् ॥२४२

पुरुष के कर्त्तव्य का समापन इन तीनों में ही निहित है यही साक्षात् परमधर्म और इनके अतिरिक्त सभी धर्म उपधर्म कहे गये हैं। श्रद्धावान् पुरुष श्रेष्ठ विद्या नीच से भी ग्रहण करे, चाण्डाल से भी मोक्षधर्म और नीचकुल से भी स्त्री रत्न ले ले। स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शुद्धि, श्रेष्ठ वचन और शिल्पकला जहाँ

भी हों, वहीं से ले ले । अब ह्मण से भी सङ्कटकाल में पढ़ सकता है, किन्तु उस गुरु का अनुगमन और सेवा कार्य शिक्षा ग्रहण करने तक ही करे, अब्राह्मण गुरु के पास ब्राह्मण शिष्य दीर्घ-काल तक निवास न करे तथा श्रेष्ठ मति की इच्छा वाला पुरुष वेद-वेदाँग की शिक्षा न देने वाले ब्राह्मण गुरु के पास भी न रहे ॥२३७-२०२॥

यदि त्वात्यन्तिकं वासं रोचयेत् गुरोःकुले ।
युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् ॥२४३
आ शमाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् ।
स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्राह्मणःसद्म शाश्वतम् ॥२४४
न पूर्वं गुरुवे किंचिदुपकुर्वीत धर्मवित् ।
स्नास्यंस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत् ॥२४५
क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासनम् ।
धान्यं शाकं च वासांसि गुरुवे प्रीतिमावहेत् ॥२४६
आचार्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते ।
गुरुदारे सपिण्डे वा गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ॥२४७
एतेष्वविद्यमानेषु स्नानासनविहारवान् ।
प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद् देहमात्मन ॥२४८
एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः ।
स गच्छत्युत्तमस्थानं न चेहाजायते पुनः ॥२४९

शिष्य यदि गुरुगृह में अधिक काल तक रहना चाहे तो गुरु देहावसान होने तक उनकी सेवा में लगा रहे । क्योंकि गुरु के

मरण पर्यन्त उनकी सेवा करने वाला शिष्य शाश्वत ब्रह्मलोक को गमन करता है। धर्मज्ञाता शिष्य समावर्तन से पूर्व ही गुरु को धन न दे, वरन् व्रतपूर्तिसूचक स्नान करके गुरु की आज्ञा लेकर उन्हें शक्ति के अनुसार गुरुदक्षिणा दे। पृथिवी, स्वर्ण गौ. अश्व, छत्र, पादुका, आसन, अन्न शाक और वस्त्रादि जो कुछ बने प्रीति सहित गुरु को निवेदन करे। आचार्य के मरणोहरान्त गुणवान गुरुपुत्र गुरुपत्नी और गुरु के बन्धु आदि के साथ गुरु जैसा ही आचरण करे। यदि इनमें से कोई भी न हो तो गुरु की अग्नि के निकट ही स्नान, आसन और विहार करता हुआ अग्नि की सेवा और ब्रह्मप्राप्ति के लिए देह साधन करे। इस प्रकार का व्यवहार करता हुआ जो विप्र अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करता है उसे उत्तम लोक की प्रप्ति होती और इस लोक में पुनः नहीं आना होता ॥२४३-२४६॥

———

तीसरा अध्याय

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥१
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥२
तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ।
स्त्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥३
गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥४
असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥५
महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ।
स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥६

गुरु के आश्रम में ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक छत्तीस वर्ष पर्यन्त वेद पढ़ना चाहिए। इतने समय न पढ़े तो अठारह या नौ वर्ष अथवा जितने समय में पढ़ सके उतने ही कम या अधिक समय तक पढ़े। अखण्ड ब्रह्मचर्य के पालन पूर्वक क्रम से तीनों, दो या एक ही वेद पढ़कर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होजाय। स्वधर्माचरण में रत उस ब्रह्मचारी का, जो पिता या आचार्य से वेद पढ़ चुका हो, पुष्पमाल्य धारण कराकर श्रेष्ठ शय्या पर बैठावे और पूजन करे। फिर गुरु की आज्ञा से वह स्नानादि समावर्तन संस्कार से

युक्त द्विज सुलक्षणा सवर्णा कन्या से विवाह करे। माता की सात पीढ़ी तक की या पिता के गोत्र की जो कन्या न हो वह पत्नी बना कर सन्तानोत्पादन के योग्य होती है। गौ, बैल, बकरा आदि तथा धन-धान्यादि से सम्पन्न हों तो भी निम्न कुलों में सम्बन्ध नहीं करे ॥ ५-६॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥७
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गी न रोगिणीम् ।
नालोमिकां चातिलोमां न वाचाटां न पिंगलाम् ॥८
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥९
अव्यंगाङ्गी सोमयनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥१०
यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेतत् वा पिता ।
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥११
सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि ।
कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो बराः ॥१२

जो क्रियाहीन, पुरुष रूप सन्तान से हीन, वेदाध्ययन से विमुख शरीर पर लम्बे रोम वाले या अंश, क्षय, मन्दाग्नि, मृगी, श्वित्र और कुष्ट और जैसे रोग वाले हों। जो कन्या भूरे बाल वाली, अधिकांगी, रुग्णा रोम-रहित, अधिक रोमयुक्त, अधिक बोलने वाली तथा पीले नेत्र वाली हो, उसके साथ विवाह नहीं करे। नक्षत्र वृक्ष, नदी, म्लेच्छ, पर्वत, पक्षी, सर्प और दासी पर नाम हो या भीषण नाम हो, उससे भी विवाह न करे। जिसके किसी अंग में कोई दोष न हो, जिसका नाम सुन्दर और बोलने में सुखद हो, जो गजगामिनी, सूक्ष्म लोभ और केश

तथा छोटे दाँत और कोमल अंग वाली हो उससे विवाह करना चाहिए। जो भ्राता-रहित और अनजान पिता की पुत्री हो उस लड़की से प्राज्ञ पुरुष पुत्रिका धर्म (पिता जिसके पुत्र से अपने लिए पिण्ड की इच्छा करे की आशंका से विवाह न करे। द्विजाति को प्रथम सवर्णा से विवाह करना ही उचित है। जो केवल कामसेवनार्थ विवाह करना चाहे तो क्रम से निम्न स्त्रियाँ भी ग्राह्य है ॥७-१२॥

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते।
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥१३

न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः।
कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते ॥१४

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः।
कुलान्येव नयन्त्याशु ससंतानानि शूद्रताम ॥१५

शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च।
शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः ॥१६

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम।
जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥१७

दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु।
नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति ॥१८

शूद्र की भार्या शूद्रा होती है, वैश्य अपनी सवर्णा और शूद्रा से, क्षत्रिय अपनी सवर्णा, वैश्या और शूद्रा से तथा ब्राह्मण चारों वर्णों की कन्याओं से विवाह कर सकता है। विवाहेच्छुक ब्राह्मण

या क्षत्रिय को सवर्णा के अभाव में शूद्रा से विवाह करने का उपदेश कहीं नहीं मिलता। जो द्विजाति पुरुष, मोहवश हीन जाति अर्थात् शूद्र-कन्या से विवाह करते हैं, वे संतान सहित शूद्रत्व का प्राप्त होते हैं। अत्रि और गौतम के मत में शूद्रा का ब्राह्मणपति पतित के समान है, शौनक के मत में शूद्रा से पुत्र का जन्म होने पर क्षत्रिय पतित होता है और भृग के अनुसार शूद्रा से सन्तान उत्पन्न होने पर वैश्य पतित हो जाता है। शूद्रा के साथ शयन करने वाला ब्राह्मण नरक में गिरता है और उससे पुत्र हो जाय तो ब्राह्मणत्व से भी हीन हो जाता है। ब्राह्मण की शूद्रा भार्या द्वारा मिर्मित हव्य-कव्य को देवता-पितर स्वीकार नहीं करते और शूद्रा के पति को उससे स्वर्गकी प्राप्ति भी नही होती ॥१३-१८॥

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च।
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधियते ॥१९

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हितहितान्।
अष्टाविमान्समा न स्त्रीविवहान्निबोधत ॥२०

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्थासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥२१

यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च यस्य यौ।
तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥२२

षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवरान्।
विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यानराक्षसान् ॥२३

चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः।
राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥२४

शूद्रा के अधर का थूक चाटने वाला ब्राह्मण उसके साथ शयन करके उसके निःश्वास से अपने प्राणों को दूषित करता हुआ सन्तानोत्पादन करता है, उसके उद्धार का कोई प्रतीकार नहीं। चारों वर्णों के इहलोक-परलोक दोनों में हित-अहित साधन करने वाले आठ प्रकार के विवाहों को संक्षेप में कहूँगा। ब्राह्म, दव आर्ष प्राजापत्य, आसुर, गान्धव, राक्षस और आठवां पैशाच सब में निकृष्ट हैं। जिस वर्ण में जो विवाह धर्मसंगत है जिस विवाह के जो गुण-दोष है तथा जिस विवाह से जन्मी हुई सन्तति में जो गुण-अवगुण होते हैं उन सब को कहता हूँ। ब्राह्म को क्रम से-प्रारम्भ के छः प्रकार के अर्थात् ब्राह्म से गान्धव तक, क्षत्रिय को आसुरादि क्रम से पैशाच तक चार प्रकार के और वंश्य एव शूद्र को आसुर, गांधव और पिशाच विवाह वैध हैं। ब्राह्मण के उन छः में से ब्राह्म दैव आष और प्राजापत्य यह चार, क्षत्रिय के लिए राक्षस और शूद्र के लिए आसुर विवाह को विद्वज्जन श्रेष्ठ कहते हैं ॥१९-२०॥

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविह ।
पैशाचश्चासुरश्चैव कर्तव्यो कदाचन ॥२५

पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यो क्षत्रस्य तौ स्मृता ॥२६

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥२७

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥२८

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥२९

सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥३०

पाँच प्रकार के विवाहों में प्राजापत्य, गान्धर्व और राक्षस धर्मसंगत तथा आसुर पैशाच अधर्ममय माने गये हैं, इसलिए ब्राह्मण किसी भी दशा में यह दोनों प्रकार के विवाह न करे। गान्धर्व और राक्षस विवाह पृथक्-पृथक् या संयुक्त रूप से क्षत्रिय के लिए धर्म संगत बताये हैं। श्रेष्ठ शील वाले गुणी वर को स्वयं बुलाकर उसे वस्त्राभूषण से विभूषित और पूजित कर कन्यादान करना ब्राह्म विवाह कहा गया है। यज्ञ में भले प्रकार कर्म करते हुए ऋत्विज को विभूषित और पूजित कर कन्या देना देवविवाह कहा गया है। वर से एक-दो जोड़ा गौ बैल धर्मार्थ ग्रहण कर विधिवत कन्यादान करना आर्ष विवाह है। 'साथ रहकर गृहस्थधर्म पालन करो' ऐसा वर के प्रति कह कर पूजित करके कन्या देना प्राजापत्य विवाह है ॥२१-३०॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायैं चैव शक्तितः ।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥३१
इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ॥३२
हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्ती रुदतीं गृहात् ।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥३३
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥३४
अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानं विशिष्यते ।
इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया ॥३५

योो यस्यैषां विवाहानां मनुना कीर्तितो गुणः ।
सर्वं शृणुत तं विप्राः सर्वं कीर्तयतो मम ॥३६

कन्या के पिता आदि को अथवा स्वयं कन्या को ही यथाशक्ति धन देकर स्वच्छन्द रूप से कन्या लेना आसुर विवाह माना गया है, यह काम सम्भव होने से समागम के लिए सुखद है। बाधकों को मार कर, आहत कर, दुर्ग-द्वार आदि को तोड़ कर रुदन करती हुई कन्या का बलात् अपहरण राक्षस विवाह है। नींद में सोती, मदमाती अथवा बेहोश कन्या का एकान्त में उपभोग अत्यन्त निकृष्ट एवं पापयुक्त अष्टम पैशाच विवाह है। ब्राह्मणों में उदकदान युक्त कन्या देना विशिष्ट है; क्षत्रिय आदि में उदक-रहित पारस्परिक इच्छा मात्र से कन्या का दान किया जा सकता है। हे विप्रो ! इन विवाहों में मनुजी ने जिसका जो गुण बताया है, मैं वह कहता हूँ ॥३१-३६॥

दश पूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम् ।
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेनसः पितॄन् ॥३७
दैवोढाजः सुतश्च व सप्त सप्त परावरान् ।
आर्षोढाजः सुतस्त्रींस्त्रीन्षट्षट् कायोढजः सुत ॥३८
ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः ॥३९
रूपसत्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥४०
इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥४१

अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत् ।।४२

ब्राह्मविवाह द्वारा उत्पन्न सदाचारी पुत्र अपने आगे-पीछे की दस-दस पीढ़ी का तथा अपना भी नरक से उद्धार करता है। दैव विवाह से उत्पन्न पुत्र आगे-पीछे की सात सात पीढ़ी आर्ष-विवाह से उत्पन्न आगे-पीछे की तीन तीन तथा प्राजापत्य बिवाह से जन्मा हुआ पुत्र आगे पीछे की छः छः पीढ़ियों का उद्धार करता है। क्रम से जो ये ब्रह्मादि चार विवाह कहे इनसे ब्रह्म-वर्चसी तथा शिष्टजनों द्वारा मान्य पुत्रों की उत्पत्ति होती है। ये पुत्र रूप, सत्तोगुण, धन, यश, ऐश्वयादि से सम्पन्न, धार्मिष्ठ और शतायु होते हैं। शेष चार प्रकार के हीन विवाहों से उत्पन्न पुत्र निदय, झूठ बोलने वाले, वेद की निन्दा और धर्म से द्वेष करने वाले होते हैं। अनिन्दित नारी से विवाह करने पर उससे उत्पन्न सन्तान अनिंद्य और निन्दित स्त्री के विवाह से निन्दित सन्तान उत्पन्न होती है, अतः निन्द्य विवाह वर्जित है ।।३७-४२।।

पणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते ।
असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मणि ।।४३
शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रदोतो वैश्यकन्यया ।
वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ।।४४
ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ।।४५
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ।।४६
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च यां ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ।।४७

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥४८

सवर्णा कन्या के विवाह में ही पाणिग्रहण का उपदेश है और असवर्णा के विवाह में निम्न विधि होती है। विवाह के समय क्षत्रिय-कन्या ब्राह्मण वर के बाण का ग्रहण करे, वैश्य-कन्या ब्राह्मण या क्षत्रिय वर के हाथ का चाबुक और शूद्र-कन्या क्षत्रिय या वैश्य वर के वस्त्र की दशा का ग्रहण करे। ऋतुकाल में स्त्री-संभोग कहे, अपनी पत्नी से ही सतोष करे, रति-सतुष्टि के निमित्त पर्वकाल के अतिरिक्त अन्य दिनों में संयोग वैध है। रजोदर्शन से सोलह रात्रि तक स्त्रियों का ऋतकाल होता है, सज्जनों द्वारा निन्दित पहले चार दिन भी इसो में सम्मिलित समझें। उन सोलह रात्रियों में प्रथम चार, ग्याहरवीं और तेरहवीं रात्रि समागमार्थ निन्दित एव शेष सब प्रशस्त मानी गई हैं। सम रात्रि (छठो, आठवीं, दसवीं आदि) में समागम से पुत्र और विषम रात्रि (पांचवीं, सातवीं आदि) में सहवास से कन्या उत्पन्न होती है, अतएव पुत्र की इच्छा वाले पुरुष को युग्म (सम) रात्रि में ही सहवास करना चाहिए। ४३-४८॥

पुमान्पुन्सोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ।
समेऽपमान्पु स्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥४९

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रियु वर्जयन् ।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्रतत्राश्रमे वसन् ॥५०

न कन्यायाः पिता विद्वान्गृहणीयाचछुल्कमण्वपि ।
गृहणंश्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥५१

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ।

नारी यानानि वस्त्रं वा ते पापायान्त्यधोगतिम् ॥५२

आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुमृषैव तत् ।
अल्पोऽप्येवं महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः ॥५३
यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः ।
अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंत्यं न केवलम् ॥५४

वीर्य की अधिकता हो तो विषम रात्रि में भी पुत्र और रज की अधिकता हो तो सम रात्रि में भी कन्या हो सकती है, वीर्य और रज की समानता होने से नपुंसक या यमल सन्तति तथा दूषित या अल्प वीर्य से गर्भ ही नहीं रहता जो पुरुष पहिले कहीं छः रात्रियों के सहित अन्य निंद्य आठ रात्रियों को छोड़ कर सोलह रात्रियों में केवल दो रात्रि ही स्त्री समागम करता है, वह किसी भी आश्रम में ब्रह्मचारी बना रहता है । द्रव्य लेने के दोष का ज्ञाता कन्या का पिता कन्या के लिए किंचित् भी धन न ले, क्योंकि लोभवश धन लेने वाला सन्तान का विक्रेता होता है । जो पति पिता, बन्धु आदि मोहवश पुत्री या पत्नी आदि के आभूषण, वस्त्र या वाहनादि रूपी स्त्रीधन वेचकर जीविका चलाते हैं, वे पापी अधोगति को पाते हैं । आर्ष विवाह में गौ-वृषभ का एक जोड़ा शुल्क लेने की जो बात कोई कहता है, वह असत्य ही है, क्योंकि धन अल्प हो या अधिक विक्रय ही है । कन्या के निमित्त वर द्वारा दिया गया धन पिता आदि स्वयं न लेकर कन्या को ही दे देते हैं, इसलिए वह विक्रय नहीं कुमारी-पूजन ही है, इसमें कोई दोष नहीं होता ॥४९-५४॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥५५
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥५६

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति नु यत्रेता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥५७

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिता: ।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥५८

तस्मादेता: सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषुत्सवेषु च ॥५९

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥६०

अधिक कल्याण की कामना वाले पिता, भ्राता, पति देवर आदि को कन्या की पूजित और विभूषित करना चाहिए। जिस कुल में स्त्रियां पूजित होती है, वहाँ देवगण प्रसन्न होते हैं और जहाँ स्त्रियां अपमानित होती हैं वहाँ सब पुण्यकार्य फलहीन हो जाते हैं। जहाँ कुलवधुएँ क्लेश पाती हैं, वह कुल शीघ्र विनष्ट होता है और जहाँ क्लेश नहीं होता, वहाँ सदैव समृद्धि रहती है असम्मानित बहू आदि जिन गृहों को कोसती हैं वे गृह विनाश को प्राप्त होते हैं। इसलिए स्त्रियाँ भोजन, वस्त्र, आभूषणादि से सदैव सम्मान करने योग्य हैं, समृद्धि की कामना वाले पुरुष उन्हें उत्सवादि में वस्त्राभूषणादि से सदा सन्तुष्ट रखें। जहाँ पत्नी पति से और पति पत्नी से सन्तुष्ट रहता है उस कुल में सदा निश्चय कल्याण बना रहता है ॥५५-६०॥

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमादः पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते ॥६१

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।

तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥६२

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ।।६३

शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः ।
गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ।।६४

अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणाम् ।
कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ।।६५

मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि ।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ।।६६

भूषणवस्त्रादि से सुशोभित न की जाने के कारण असंतुष्ट स्त्री पति को आनन्द नहीं दे सकती और पति असतुष्ट हो तो प्रजनन कार्य सफल नहीं होता। भूषण आदि से स्त्री के दीप्तिमयी होने के कारण सम्पूर्ण कुल दीप्तिमय होता है,किन्तु स्त्रीके अदीप्तिमय रहने से पूरा कुल मलीन प्रतीत होता है। हीन विवाहों में क्रियाओं के लुप्त होने, वेदाध्ययन न होने और ब्राह्मण का सम्मान न होने से श्रेष्ठ कुलों की भी कुलीनता नहीं रहती। शिल्प व्याज-व्यवहार, शद्रा में प्रजनन, गौ-बल-अश्व और यान का क्रय-विक्रय, कृषिकर्म, राजसेवा, अनाधिकारी के लिए यज्ञ कराना, वेदविहित कर्म में अविश्वास तथा वेदाध्ययन से विरक्त होने पर कुल विनाश को प्राप्त होता है। वेदाध्ययन से समृद्ध कुल अल्प धन वाला होता हुआ भी श्रेष्ठ कुलों में गिना जाकर महान यश पाता है ।।६१-६७।।

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि ।
पञ्चयज्ञविधानं च पक्तिं चान्वाहिकीं गृही ।।६७

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ।।६८

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥६९

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥७०

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः ।
स गृहेऽपि वसन्नित्य सूनादोषैर्न लिप्यते ॥७१

देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः ।
न निर्वपति पंचानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥७२

विवाह में स्थापित अग्नि में विधिवत हवन करे और गृहस्थ नित्यप्रति पंचयज्ञ एवं पाक करे। चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ऊखल, मूसल और जल का कलश, यह पांचों गृहस्थ में हिंसा-स्थान होने के कारण पापप्रद होते हैं। महर्षिगण उन पापों से बचने के लिए गृहस्थ को नित्यप्रति पंचमहायज्ञ करने का उपदेश करते है। वेदका पढ़ना-पढ़ाना, ब्रह्मयज्ञ, पितरोंका तर्पण पितृयज्ञ,होम देवयज्ञ, जीवों के लिए अन्न की बलि देना भूतयज्ञ और अतिथि-सत्कार नृयज्ञ है। जो मनुष्य देवता, अतिथि, भृत्य, पिता आदि एवं स्वयं का पोषण नहीं करता, वह साँस लेता हुआ भी मरे के समान है ॥६७-७२॥

अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च ।
ब्राह्मयं हुतं प्राशितं च पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते ॥७३

जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः ।
ब्राह्मयं तं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥७४

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि ।
दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥७५

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥७६
यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्बजंतवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥७७
यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥७८

अहुत, हुत, प्रहुत, ब्राह्मयहुत और प्राशित, यह पंचयज्ञ कहे हैं। ब्रह्मयज्ञ को अहुत, देवयज्ञ को हुत, भूतयज्ञ को प्रहुत, नृयज्ञ को ब्राह्मयहुत और नित्यश्राद्ध रूपी पितृयज्ञ को प्राशित कहते है। दरिद्रथावश अतिथि को भोजन न दे सके तो नित्य ब्रह्मयज्ञ करे, क्योंकि देवकर्म में युक्त पुरुष चराचर को धारण करने वाला होता है। अग्नि में यथाविधि दी गई आहुति सूय को मिलती है, उस सूर्य से वर्षा, वर्षा से अन्न और अन्न से प्रजा की उत्पत्ति होती है। जैसे वायु के आश्रय से सब जीव जीते हैं, वैसे ही गृहस्थाश्रम के आश्रय से सब जीव वर्तते हैं। तीनों आश्रम वाले केवल गृहस्थाश्रम द्वारा ही वेदज्ञान की चर्चा करते हुए अन्न से उपकृत होते हैं, इसलिए गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों में महान् है ॥७३-७८॥

स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियः ॥७९
ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा ।
आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ॥८०
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितृत्श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥८१

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्य नोदकेन वा ।
पयोमूलफलेर्वापि पितृभ्यः प्रीतोमावहन् ॥८२

एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके ।
न चैवात्राशयेत्कंचिद्वैश्वदेवं प्रति द्विजम् ॥८३

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥८४

अक्षय स्वर्ग और इस लोक में भी सुख चाहने वाला पुरुष प्रयत्न पूर्वक गृहस्थाश्रम का पालन करे क्योंकि दुर्बल इन्द्रिय से गृहस्थाश्रम का धारण कठिन ही है । ऋषि, पितर, देवगण, भूत-गण और अतिथि, ये सब गहस्थों से कुछ प्राप्ति की आशा करते हैं, इसलिये ज्ञानी पुरुष उन्हें सन्तुष्ट रखे । स्वाध्याय से ऋषियों का, होम से देवताओं का, श्राद्ध एव तर्पण से पितरों का, अन्न से अतिथियों का और बलि से जीवों का सत्कार करना चाहिये । अन्न, जल, दूध और फलमूल आदि से पितरों की प्रीति के लिए नित्यप्रति श्राद्ध करे । पंचयज्ञ में पितर के लिए कम से कम एक ब्राह्मण को जिमावे, किन्तु वैश्वदेव के लिए ब्राह्मणभोजन का विधान नहीं है । वैश्वदेव के हेतु पकाये हुए अन्न से ब्राह्मण निम्न देवताओं के लिए नित्य अग्नि में होम करे ॥७९-८४॥

अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ।
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च ॥८५

कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च ।
सहद्यावपृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः ॥८६

एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् ।
इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत् ॥८७

मरुद्भ्य इति द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि ।
वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसल लूखले हरेत् ॥८८
उच्छोर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ।
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥८९
विश्वेभ्यचौव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् ।
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ॥९०

प्रथम अग्नि और सोम को पृथक् पृथक् फिर दोनों को एक साथ और तत्पश्चात् विश्वेदेवा और धन्वन्तरि को आहुति दे फिर कहू अनुमति और प्रजापति को पृथक्-पृथक् तथा द्यावा-पृथिवी को एक साथ और अन्त में स्विष्टकृत आहुति दे। इस होम के पश्चात् प्रदक्षिणा करके क्रमशः इन्द्रः यम, वरुण और सोम को तथा साथ-साथ ही उनके अनुयायियों को भी वलि दे। मरुत को द्वार में जल को जल में, वनस्पति को मूसल और उलूखल में बलि दे। वलनिर्मित वस्तु के शीष में लक्ष्मी, चरण में भद्रकाली और मध्य में ब्रह्मा और वास्तोष्पति को बलि दे। वैश्वदेव को आकाश में तथा दिवाकर और रात्रिचर जीवों को क्रमशः दिन और रात्रि में बलि दे ॥८५-९०॥

पृष्ठवास्तुनि कुर्वीतं बलिं सर्वात्मभूतये ।
पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥९१
शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
बायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥९२
एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति ।
स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्ति पथर्जुना ॥९३

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत् ।
भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ।।९४
यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिवद्गुरोः ।
तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही ।।९५
भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।९६

वास्तु-पृष्ठ में सर्वात्मभूत को तथा शेषान्न को वास्तु दक्षिण में पितरों का बलि दे। श्वान, पतित, श्वपच, पापरोगी, काक, कृमि कीट आदि को पृथिवी पर धीरे से बलि रख दे। इस प्रकार सब जीवों को नित्य सेवा करने वाला ब्राह्मण सरल मार्ग से तेजोमय परम स्थान में जाता है। इस प्रकार बलिवैश्वदेव कर्म करने के पश्चात् अतिथि को भोजन कराकर सन्यासी और ब्रह्मचारी को विधिवत भिक्षा दे। गुरु को यथाविधि गोदान करने की जो फल हैं वह केवल भिक्षा देने से ही गृहस्थ द्विज प्राप्त कर लेता है। अन्न का अभाव हो तो गृहस्थ स्वल्प पवित्र अन्न अथवा जल से ही वेदतत्त्वार्थज्ञात ब्राह्मण का प्रदान करे ।।९१-९६।।

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् ।
भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ।।९७
विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ।
निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ।।९८
संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।।९९
शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः ।
सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ।।१००

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सुनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥१०१
एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ।
ननित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिच्यते ॥१०२

जो दानदाता देव-पितर की तृप्ति हेतु हव्य-कव्य का प्रदान मोहवश किसी निस्तेज या वेदाध्ययन न करने वाले ब्राह्मण को देता हैं तो उसका कर्म निष्फल होजाता है। विद्या और तप से समृद्ध ब्राह्मण की मुखाग्नि में डाला हुआ हव्य-कव्य अनेक संकटों और पापों से बचाता है। स्वयं समागत अतिथि को आसन और जल देकर शक्ति के अनुसार श्रेष्ठ अन्न से भोजन करावे। चाहे खेत में अवशिष्ट पड़े हुए अन्न के दोनों को बीन कर उन पर निर्वाह करता हो या नित्य पचाग्नि सेवन करता हो, यदि घर पर आये अतिथि का सत्कार न करे तो वह अतिथि उसके सम्पूर्ण पुण्य को ले लेता है। अतिथि के स्वागातार्थ तृणासन, ठहरने का स्थान जल तथा मीठी सत्य वाणी का अभाव सत्पुरुषों के यहाँ कभी नहीं रहता। जो ब्राह्मण किसी दूसरे के यहाँ एक रात्रि रहे वह अतिथि है, क्योंकि वह नित्य न रहने के कारण अतिथि कहा जाता हैं ॥९७–१०२॥

नैकग्रामीणमीतीथं विप्रं साङ्गतिकं तथा ।
उपस्थितं गृहे विद्याभ्दार्या यत्राग्नयोऽपि वा ॥१०३
उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥१०४
अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना ।
काले प्राप्तास्त्वकाले वा नास्यानश्नन्गुहे वसेत् ॥१०४

न वै स्वय तदश्नीयादतिथि यन्न भोजयेत् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वा तिथिपूजनम् ॥१०६
आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ।
उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ॥१०७
वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत् ।
तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्नं बलिं हरेत् ॥१०८

उसी ग्राम का निवासी या कहीं जाकर जीविकोपार्जन करने वाला व्यक्ति अतिथि बन कर आवे तो सपत्नीक अग्निहोत्री गृहस्थ उसे अतिथि न माने। जो बुद्धिहीन गृहस्थ दूसरे का पका अन्न खाने में मति रखते हैं वे मरने पर उस पाप से अन्नदाता के पशु बनते है। सर्यास्त होने पर भी यदि कोई अतिथि आवे तो उसे सन्तुष्ट करे समय हो या असमय उसे भोजन अवश्य करावे अतिथि को न परोसा गया अन्न स्वयं भी न खाय, अतिथि-पूजन से धन, कीर्ति, आयु बढ़ती और मरने पर स्वर्ग मिलता हैं। आसन, स्थान, शय्या, अनुगमन और परिचर्या अतिथि की योग्यता के अनुसार ही और श्रेष्ठ का विचार करके करे। वैश्वदेव कर्म हो जाने के पश्चात् यदि दूसरा अतिथि आजाय तो उसे दुबारा पका कर यथाशक्ति भोजन दे किन्तु उस अन्न से बलिहरण आवश्यक नहीं है ॥१०३-१०८॥

न भोजनार्थं स्वेः विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् ।
भोजनार्थं हि ते शंसन्वान्ताशीत्युच्यते बुधैः ॥१०९
न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते ।
वैश्यशूद्रौ सखा चैवं ज्ञातयो गुरुरेव च ॥११०
यदि त्वतिथिधर्मेण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत् ।
भुक्तवत्सु च विप्रेषु कामं तमपि भोजयेत् ॥१११

वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ।
भोजयेत्सह भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजयन् ॥११२
इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान् ।
सत्कृत्यान्नं यथाशक्ति भोजयेत्सह भार्यया ॥११३
सुवासिनी कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणोःस्त्रियः ।
अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥११४
अदत्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुङ्क्तेऽविचक्षणः ।
स भुञ्जानो न जानाति श्वगृध्रैर्गग्धिमात्मनः ॥११५

भोजन के लिए ब्राह्मण अपना कुल गोत्र न कहे, क्योंकि विद्वान पुरुष ऐसा करने वाले को वमन खाने वाला कहते हैं। यदि ब्राह्मण के यहाँ क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मित्र या जातिवन्धु आवें तो वे अतिथि नहीं कहे जा सकते। यदि कोई क्षत्रिय अतिथि रूप में आजाय तो उपस्थित विप्रों को भोजन कराने के पश्चात् उसे भोजन करावे। यदि वैश्य या शूद्र अतिथि रूप में ब्राह्मण गृहस्थ के घर पर आ जाँय तो उन्हें दयापूवक भृत्यों को पंक्ति में भोजन करावे। नवागमा वधू, कन्या, रागिणी और गर्भिणी को बिना विचार किये अतिथि से पहिले ही भोजन करादे। जो अज्ञानी पुरुष इन्हें भोजन न देकर स्वयं पहिले खाता है, वह यह नही जानता कि मरने पर उसके देह को श्वानि और गिद्ध नोंच नोंच कर भक्षण करेंगे ॥१०६-११५॥

भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि ।
भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती ॥११६
देवानृषिन्मनुष्यांश्च पितृन्गृह्यश्च देवता।
पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेत्॥११७

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥११८

राजर्त्विक्स्नातक गुरून्प्रियश्वशुरमातुलान् ॥
अर्हयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरात्पुनः ॥११९

राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थितौ ।
मधुपर्केण संपूज्यौ न त्वयज्ञ इति स्थितिः ॥१२०

पहिले अतिथि विप्रों और फिर अपने भृत्यों को भोजन कराने के पश्चात अवशिष्ट रहे अन्न से गृहस्थ दम्पति स्वयं भोजन करें। देवता, ऋषि, मनुष्य पितर और गृहदेवताओं का अन्नादि से पूजन करने के पश्चात् शेष अन्न का भोजन स्वयं करे। जो भोजन बनाकर देवता-पितर आदि को नही देता वह पाप का ही भोजन करता है क्योंकि सद्गृहस्थों के लिए यज्ञावशिष्ट अन्न के भोजन का ही विधान है। राजा, ऋत्विक् स्नातक, गुरु, जामाता, श्वसुर और मामा जब एक वर्ष पश्चात् पुनः घर पर आवें तब मधुपर्क से उनका पूजन करें। राजा और श्रोत्रिय यज्ञकर्म के समय उपस्थित हों तो वे मधुपर्क से पूजित होने के अधिकारी हैं, किन्तु यज्ञ से अतिरिक्त समय में आने पर नही ॥११६-१२०॥

सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ।
वैश्वदेवं हि नामैतत्सायंप्रातर्विधीयते ॥१२१

पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्द्रक्षयेऽग्निमान् ।
पिंडान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥१२२

पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः ।
तच्चामिषेण कर्तव्यं प्रशस्तेन प्रयत्नतः ॥१२३

तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्या द्विजोत्तमाः ।
यान्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्षयाम्यशेषतः ॥१२४

द्वौ दैवं पितृकार्ये त्रानेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥१२५

सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदः ।
पञ्चैतान्विहस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥१२६

सायंकाल बिना मन्त्र के सिद्धान्न की बलि स्त्री दे। इस प्रकार गैश्वगैदकर्म दोनों समय किया जाय। अग्निहोत्री विप्र अमावस के दिन पितृयज्ञ करता हुआ पिण्डान्वाहार्य श्राद्ध प्रतिमास करे। अब यह कहता हूँ कि उक्त श्राद्ध में कौन ब्राह्मण भोजन के योग्य और कौन अयोग्य है किन किन अन्नों से कितने ब्राह्मण जिमावे। दैवकार्य में दो, पितरकार्य में तीन अथवा दोनों में एक-एक को ही भोजन करावे, अधिक समर्थ हो तो भी इतनी ही संख्या रखे। क्योंकि संख्या बढ़ाने से सत्काय, देश-काल, पवित्रता और ब्राह्मणसंपद को इन पाँचों आवश्यक अगों के निवाह में बाधा आ सकती है ॥१२१-१२६॥

प्रथिता प्रेतकृत्यैषा पित्र्य नाम बिधुक्षय ।
तस्मिन्युक्तस्यैति नित्यं प्रेतकृत्यं च लौकिकी ॥१२७

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः ।
अर्हत्तामाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥१२८

एकेकमपि विद्वांसं विद्वासं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् ।
पुष्कलं फलमाप्नोति नामन्त्रज्ञान्वहूनपि ॥१२९

दूरादेव परीक्षेत बाह्मणं वेदपारगम् ।
तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः ॥१३०

सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते ।
एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति धर्मतः ॥१३१
ज्ञानोत्कृष्टाय यानि कव्यानि च हवींषि च ।
न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरेणैव शुद्धयतः ॥१३२

अमावस में किया जाने वाला यह श्राद्ध प्रेत-कृत्या कहा गया है । इस कर्म को तत्परतापूर्वक करने वाले को सांसारिक प्रेतकृत्या की प्राप्ति होती है । अत्यन्त पूज्य ब्राह्मण को देवान्न या श्राद्धान्न का प्रदान अधिक फल वाला कहा होने से वेदाध्यायी को ही हव्य कव्य प्रदान करे । देवकर्म या पितृकर्म में एक ही विद्वान् विप्र को भोजन कराने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह अनेक अज्ञानी ब्राह्मणों को कराने से भी नहीं हो सकती । वेदपारंगत ब्राह्मण को दूर से भी खोज ले, क्योंकि वह हव्य-कव्य या दान के लिए अतिथि के समान पवित्र बताया है । जिस श्राद्ध में दस लाख वेद रहित ब्राह्मणों के साथ एक भी वेद-ज्ञानी ब्राह्मण हो तो, वह अकेला ही उन सबसे प्राप्त होने वाले फल को दे देता है । ज्ञानीत्कृष्ट को ही हव्य कव्य दे अज्ञानों को नहीं, क्योंकि रक्त में रंगे हुए हाथ रक्त से शुद्ध न होकर स्वच्छ जल से ही शुद्ध होते है ॥१२७-१ २॥

यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलष्टय्ँयोगुडान् ॥१३३
ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथाऽपरे ।
तपः श्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे ॥१३४
ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः ।
हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥१३५

अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः ।
अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः ॥१३६
ज्यायांसमनयोर्विद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता ।
मन्त्रसंपूजनार्थं तु सत्कारमितरोऽर्हति ॥१३७
न श्राद्ध भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ।
नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्द्विजम्॥१३८

देहविद्याहीन ब्राह्मण श्राद्ध में जितने कौर भक्षण करते हैं उतनी ही सख्या में तपाये शूलर्ष्टि संज्ञक लौहपिण्ड श्राद्धकर्त्ता को मरणोपरान्त निगलने होते हैं। कोई ब्राह्मण ज्ञाननिष्ठ कोई तपस्वी, कोई स्वाध्यायी और कोई यज्ञकर्म में तत्पर रहते हैं। ज्ञाननिष्ठ प्रयत्नपूर्वक हव्य-कव्य उक्त चार प्रकार ब्राह्मणों को दे। जिसका पिता वेद न जाने और पुत्र वेदारंगत हो या जिसका पिता वेदपारंगत और पुत्र वेदज्ञान से रहित हो इन दोनों में वही बड़ा है, जिसका पिता वेदज्ञानी हैं, किन्तु मूर्ख पिता का वेदविज्ञ पुत्र पठित वेद के सम्मान के लिए सत्कार का अधिकारी है। मित्र को श्राद्ध में भोजन न करा कर अन्य उपहारादि न हो देकर मित्रता का निर्वाह करे। जो ब्राह्मण शत्रु या मित्र न हो उसी को श्राद्ध में भोजन करावे ॥१३-१३८॥

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च ।
तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविःषु च ॥१३९
यः संगतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मानवः ।
स स्वर्गाच्च्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रो द्विजाधमः ॥१४०
संभोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः ।
इहैवास्ते तु सा लोके गौरन्धेवैकवेश्मनि ॥१४१

यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम् ।
तथाऽनृचे हविर्दत्वा न दाता लभते फलम् ॥१४२

दातॄन्प्रतिग्रहीतॄंश्च कुरुते फलभागिनः ।
विदुषे दक्षिणां दत्वा विधिवत्प्रेत्य चेह च ॥१४३

कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् ।
द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥१४४

जिनके श्राद्धों और हव्यों में मित्रों को प्रमुखता होती हैं, उन्हें मरणोपरान्त हव्य-कव्य का फल प्राप्त नहीं होता। जो मोह वश श्राद्ध के द्वारा ही किसी से मित्रता का सम्बन्ध करता है वह द्विजों में अधर्म श्राद्धमित्र स्वर्ग से वंचित रहता है। मित्रादि के साथ भोजन वाला दानकर्म 'पैचाची' होता है क्योंकि वह दान-दक्षिण वैसे ही इस लोक में ही रह जाती है जैसेकि अन्धी गौ एक घर से बाहर नहीं निकल पाती। वैसे ऊपर में बीज बोने वाले का कर्म निष्फल होता हैं, वैसे ही मूर्ख को दिया हव्य फल-हीन रहता है। विधिवत वेदज्ञानी ब्राह्मण को दी जाने वाली दान-दक्षिण दोनों लोकों में दाता और प्रतिग्रहीता दोनों ही फलभागिनो होती है। (विद्वान् ब्राह्मण न मिलने पर) गुणी मित्र को आदर सहित भोजन करावे, किन्तु शत्रु विद्वान् हो तो उसे न करावे क्योंकि शत्रु द्वारा भक्षण किया हुआ श्राद्धान्न परलोक में फलहीन रहता है। १२ -१४४॥

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचं वेदपारगम् ।
शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं समाप्तिकम् ॥१४५

एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः ।
पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी ॥१४६

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ।
अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥१४७
मातामहं मातुलं च स्वस्त्रीयं श्वसुरं गुरुम् ।
दौहित्रं विटपतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥१४८
न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्म वित् ।
पित्र्ये कर्मणि पु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥१४९
ये स्तेनपतितक्लीवा ये च नास्तिकवृत्तय:
तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥१५०

वहुत ऋचाओंके ज्ञातावेदविज्ञ ब्राह्मण को वेद की पूर्ण शाखा का अध्ययन किये हुए ऋत्विज को अथवा सम्पूर्ण वेद पढे हुए विप्र को श्राद्ध में सादर भोजन करावे। उक्त प्रकार का एक भी ब्राह्मण यदि श्राद्ध में भले प्रकार पूजित होता हुआ भोजन करे तो श्राद्ध कर्ता की सात पीढ़ी तक के पितर तृप्त हो जाते हैं। हव्य कव्य प्रदान पर यह प्रमुख विचार किया गया, अब वह भी जानने योग्य हैं जिस पर साधु पुरुषों ने गौणरूप से विचार किया है। नाना, मामा, भाँजा, श्वसुस, गरु, दौहित्र, जामाता, मौसा या फूफा का पुत्र पुरोहित और ऋत्विज इन्हें श्राद्ध में भोजन कराया जा सकता हैं। धर्मज्ञाता पुरुष दैवकर्म में ब्राह्मण की परीक्षा न करे, किन्तु पितृकर्म में अवश्य परीक्षा करे। चोर,पतित,नपुंसक या नास्तिक ब्राह्मण को मनु ने हव्य-कव्य के लिए अयोग्य कहा है ॥१४६:१५०॥

जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा ।
याजयन्ति च ये पूगांस्तांश्च श्राद्धे न भोजयेत ॥१५१
चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा ।
विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥१५२

प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखीश्यावदन्तकः ।
प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्धुषिस्तथा ।।१५३

यक्ष्मी च पशूपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः ।
ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ।।१५४

कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च ।
पौनर्भवश्च काणश्च यश्च चोपपतिर्गृहे ।।१५५

वेदविहीन जटिल ब्रह्मचारी, दुर्बलचित्त, जुआ खेलने वाला या ग्राम्य पूरोहित श्राद्ध में भोजन कराने के योग्य नहीं है। वैद्य पुजारी, मांस विक्रेता वणिक्वृत्ति वाला, राजा, ग्रामदूत, खराब नख और काले दाँत वाला गुरु के प्रतिकूल आचरण वाला, अग्निहोत्र विहीन, गीत-वाद्यादि से आजीविका करने वाला क्षय-रोगी पशुपालक, परिवेत्ता परिवेत्ता का ज्येष्ठ भ्राता परिवित्ति, देव-पितरकर्म रहित, विप्रद्वेषी तथा समाज के धन से जीविका करने वाला, कुशीलव (नट) ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट ब्रह्मचारी या यती, शूद्रा का पति पुनर्विवाहिता का पुत्र, एकाक्ष उपपति वाली स्त्री का का पति हव्य-कव्य में वर्जित है ।।१५१-१५५।।

भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा ।
शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ ।।१५६

अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा ।
ब्राह्मैर्यौनैश्च संबन्धैः संयोगं पतितैर्गतः ।।१५७

अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ।।१५८

पित्रा विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा ।

पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिको रसविक्रयी ।।१५९

धनुः शराणां कर्ता च यश्चाग्रेदिधिषूपतिः ।
मित्रध्रुग्द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥१६०
भ्रामरी गण्डमाली च श्वित्र्यथो पिशुनस्तथा ।
उन्मत्तोऽन्धश्च वर्ज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ॥१६१

वैतनिक अध्यापक, वेतन देकर पढ़ने वाला, शूद्र का शिष्य या शूद्र का गुरु, कटुभाषी और व्यभिचार से उत्पन्न ब्राह्मण देवकर्म और श्राद्ध में त्याज्य हैं। माता पिता और गुरु को अकारण त्यागने वाला पतितों से सम्बन्ध रखने वाला, घर जलाने वाला, विषदाता जारज का अन्न सेवन करने वाला मद्यविक्रेता समुद्रयात्री, भाट, तेल निकालने वाला मिथ्या साक्षी देने वाला पिता से विवाद करने वाला, मद्य पीने वाला, पापरोगी, अभिशस्त दम्भी, रस विक्रेता, धनुष-बाण निर्माता, कुँआरी की छोटी बहिन से विवाह करने वाला, मित्रद्रोही, द्युत से जीविका कमाने वाला, पुत्र से वेदाध्ययन करने वाला मृगी. गण्डमाला, श्वित्र उन्माद आदि का रोगी, पिशुन, अन्धा और वेदनिन्दक श्राद्ध और देवकम में त्याज्य है।।१५६-१६२।।

हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ।
पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च ॥१६२
स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः ।
गृहसंवेशको दूतो वृक्षारोपक एव च ॥१६३
श्वक्रीडी श्येनजीवी च कन्यादूषक एव च ।
हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चव याजकः ॥१६४
आचारहीनः क्लीवश्च नित्य याचनकस्तथा ।
कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च ॥१६५

औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा ।
प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥१६६

हाथी, वृष, अश्व और ऊँट को शिक्षा देने वाला, ग्रस-गणना से जीविका करने वाला पक्षियों का पोषण करने वाला युद्ध की शिक्षा देने वाला, नदी काट कर जल अन्यत्र ले जाने वाला, वास्तुकलाजीवी, सदेशवाहक, वृक्षारोपण करने वाला, श्वान से खेलने वाला, कबूतबाजी से जीविका करने वाला, कन्या को दूषित करने वाला हिंसामय, शूद्रवृत्ति वाला, गणों का यज्ञ करने वाला आचारहीन, क्लीव, नित्य याचना में रत, कृषि-जीवी, श्लीपद का रोगी, भेड़ भैंस से जीविका करने वाला, विवाहिता से पुनर्विवाह करने वाला तथा धन लेकर प्रेतकम कराने वाला देवकर्म और पितृकर्म में त्याज्य हैं ॥१२१-१६६॥

एतान्विगर्हिताचारानपाङ्क्तेयान्द्विजाधमान् ।
द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत ॥१६७

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥१६८

अपाङ्क्तदाने यो मातुर्भवत्यूर्ध्वं फलोदयः ।
दैवे हविषि पित्र्ये वा तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥१६९

अव्रतैर्यद्द्विजैर्भुक्तं परिवेत्रादिभिस्तथा ।
अपाङ्क्तेयैर्यदन्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥१७०

दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ।
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥१७१

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते ।
सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपञ्चमाः ॥१७२

द्विजातिप्रवर विद्वान् उपर्युक्त निन्दित आचरण वाले पंक्ति में बैठकर न खाने योग्य अधम ब्राह्मण को देवकर्म और पितृकर्म दोनों में ही त्याग दे वेदःविहीन ब्राह्मण तृण की अग्नि के समान तेजरहित होता है। उसे हव्य न दे क्योंकि राख में हवन नहीं किया जाता। अब पंक्ति में बैठकर न खाने योग्य ब्राह्मण को हव्य-कव्य देने का फल कहता हूँ। परिवेत्ता आदि जितने भी व्रतहीन अपांक्तेय ब्राह्मण हैं उन्हें कराया गया भोजन राक्षस के उदर में पहुँच जाता है। ज्येष्ठ भ्राता के अविवाहित रहते लघु भ्राता विवाह और अग्निहोत्र करे तो वह परिवेत्ता तथा अविवाहित ज्येष्ठ भ्राता परिवित्त होता है। परिवित्ति परिवेत्ता की वधू होने वाली कन्या, कन्या देने वाला और विवाह में हवन कराने वाला ये पांचों ही नरक में जाते है ॥१२७-१४२॥

भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः।
धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः ॥१७३

परदारेषु जायते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ।
पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तरि गोलकः ॥१७४

तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च ।
दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयेते प्रदायिनाम् ॥१७५

अपाङ्क्त्यो यावतःपाङ्क्त्यान्भुञ्जानाननुपश्यति ।
तावतां न फलं तत्र दाता प्राप्नोति बालिशः ॥१७६

वीक्ष्यान्धो नवतेःकाणःषष्टे श्वित्री शतस्य तु ।
पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ॥१७७

यावतः संस्पृशेदङ्गैर्ब्राह्मणाञ्छूद्रयाजकः॥
तावतां न भवेद्दातुः फलं दानस्य पौर्तिकम् ॥१७८

ज्येष्ठ भ्राता के मरणोपरान्त उसकी पत्नी से धर्मानुसार नियोग करने के पश्चात् यदि वह कामवश उस स्त्री में आसक्त हो तो वह दिधिषूपति कहाता है। परनारी में कुण्ड और गोलक दो प्रकार के पुत्र होते हैं पति के जोविन रहते अन्य पुरुष से उत्पन्न पुत्र कुण्ड और पति के मरने पर अन्य पूरुष से उत्पन्न पुत्र गोलक कहा जाता है। परस्त्री में उत्पन्न यह दोनों प्रकार के पुत्र दिये हुए हव्य कव्य को नष्ट कर देते है इसलिए दाता को इहलोक परलोक में कहीं भी फल की प्राप्ति नहीं होती। श्राद्ध में भोजन करते हुए जितने श्रेष्ठ ब्राह्मणों पर त्याज्य ब्राह्मण की दृष्टि पड़ेगी, उतने हो ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल श्राद्ध करने वाले को नही मिल पाता। श्राद्ध में खाने वाला एक नेत्र हीन नव्वे श्रेष्ठ ब्राह्मणो का एक काना साठ का श्वित्री सौ का और पापरोगी एक हजार श्रेष्ठ ब्राह्मण का भोजन फल नष्ट कर डालना है। शूद्रों को यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण जितनें ब्राह्मणों को छु लेता है उतने ब्राह्मणों को भोजन कराने का पूर्णफल, प्राप्त नहीं होता ॥१७३-१७८॥

वेदविच्चापि विप्रोऽस्य लोभात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ।
विनाशं व्रजति क्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि ॥१७९
सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम् ।
नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धुषौ ॥१८०
यत्तुवाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद्भवेत् ।
भस्मनीव हुतं हव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ॥१८१
इतरेषु त्वापाङ्क्त्येषु यथोद्दिष्टेष्वसाधुषु ।
मेदोसृङ्मांसमज्जास्थि वदन्त्यन्नं मनीषिण. ॥१८२
अपाङ्क्त्योपहता पङ्क्तः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमः ।
तान्निबोधतकार्त्स्न्यं नद्विजाग्र्यान्पङ्क्तिपावनान्॥१८३

वेदज्ञाता ब्राह्मण भी लोभवश शूद्र पुरोहित का दान ले ले तो वह जड़ में डाले हुए मिट्टी कच्चे पात्र के समान शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है। सोमरस विक्रेता को खिलाया हुआ श्रादान्न विष्ठा होकर और वैद्य को खिलाया हुआ हव्य कव्य पीत और रक्त होकर मिलता हैं। दंत्रांश खाने वाले तथा ब्याज खाने वाले को दिया हुआ निष्फल होजाता है। वृणिक्वृत्ति वाले को खिलाने से इहलोक परलोक दोनों में ही कुछ फल नहीं मिलता पुनर्विवाहिता के पुत्र को प्रदत्त हव्य में राख में दी हुई आहुति के समान फलहीन ही है। मनीषियों के अनुसार जितने भी अन्यान्य त्याज्य ब्राह्मण बताये हैं, उन्हें देव पितर कर्म में खिलाया हुआ अन्न मेद, मांस रक्त, मज्जा और अस्थि रूप हो जाता हैं। अब त्याज्य ब्राह्मणों द्वारा दूषित हुई पंक्ति को पवित्र करने वाले ब्राह्मणों के विषय में कहते है ॥१८०-१८३॥

अग्रयाः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च।
श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाःपङ्क्तिपावना ॥१८४
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षड़ वित्।
ब्रह्मदेयात्मसंतानो ज्येष्ठासामग एव च ॥१८५
वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः।
शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥१८६
पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थते।
निमन्त्रयेत् त्र्यवरान्सम्यग्विप्रान्यथोदितान् ॥१८७
निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियासात्मा भवेत्सदा।
न च छन्दांस्यधीयीत तस्य श्राद्धं च तद्भवेत् ॥१८८

षडग सहित सब वेदों अग्रगण्य, श्रोत्रिय के वंश में जन्मे हुए यजुर्वेदी अग्निहोत्री ऋग्वेदी षडगवित्, ब्राह्मविवाह वाली

भार्या से उत्पन्न, सामवेदगायक, वेदार्थ का ज्ञाता, वेदवक्ता, ब्रह्मचारी, हजारों गौएं दान करने वाला, और शतायुष्य ब्राह्मण पंक्ति पावन होते हैं। श्राद्ध के एक दिन पूर्व या उसी दिन उपर्युक्त लक्षण वाले न्यूनतम तीन ब्राह्मणां को विनयपूर्वक न्यौता दे। श्राद्ध में निमन्त्रित होते ही वह ब्राह्मण संयतेन्द्रिय होता हुआ नित्य नियम के अतिरिक्त अन्य मन्त्रों को न पढ़े। यही नियम श्राद्धकर्ता के लिए भी है ॥१८४-१८८॥

निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान् ।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥१८९

केतितस्तु यथान्यायं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः ।
कथंचिदप्यतिक्रामन्पापः सुकरतां व्रजेत् ॥१९०

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते ।
दातुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥१९१

अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः ।
न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥१९२

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ।
ये च यैरुपचर्याः स्युर्नियमैस्तान्निबोधत ॥१९३

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ।
तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥१९४

निमन्त्रित ब्राह्मणों में गुप्तरूप से पितर गण अधिष्ठित हो जाते तथा उनके चलते-बैठते में प्राणवायु के समान ही उनके साथ चलते-बैठते हैं। निमन्त्रण प्राप्त करके भी जो ब्राह्मण किसी कारणवश भोजन न करे तो वह उस पाप से अन्य जन्ममें शूकर होता है। यदि श्राद्ध में निमन्त्रित हुआ ब्राह्मण शूद्रा से

विहार करे तो वह श्राद्धकर्त्ता के सब पापों को ओट लेता हैं। पितरगण अक्रोधी,शुद्धियुक्त,सतत ब्रह्मचारी, क्षमावान, महाभाग तथा देवता स्वरूप होते हैं। अब वह कहेंगे कि पितरों की किससे उत्पत्ति हुई, जो पितर हैं उनकी जिन नियमों से उपचर्या की जाय। हिरण्यगर्भ के पुत्र मनुजो के मरीचि आदि जो पुत्र हुए उन ऋषियों के ही पुत्र पितर कहे जाने हैं ॥१८९-१९०॥

विराट्सुताः सोमपदः साध्यानां पितरः स्मृता ।
अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीजा लोकत्रिश्रुताः ॥१९५

दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
सुपर्णकिन्नराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः ॥१९६

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हृदिर्भुजः ।
वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणां तु नुकालिनः ॥१९७

सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः ।
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा व.सि.स्य सुकालिनः ॥१९८

अग्निदग्धानाग्नेदग्धान्कायान्बर्हिषदस्तथा ।
अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेव निर्दिशेत्॥१९९

य एते तु गणा मुख्याः पितृणां परीकीर्तिताः ।
तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥२००

विराट् पुत्र सोमसद ही साध्यगण के गण तथा मरीचि पुत्र अग्निष्वात्त हो देवगण के पितर हैं। अत्रिपुत्र बर्हिषट् दैत्य, दानव, यक्ष, गंधर्व, उरग, राक्षस, सुपर्ण और किन्नरों के पितर कहे जाते हैं। ब्राह्मणों के पितर सोमपायी, क्षत्रियों के हविर्भुज, वैश्यों के आज्यपायी, शूद्रों के सुकालिन है। भृगु के सोमपा, अङ्गिरा के हविष्मन्त, पुलस्त्य के आज्यपा तथा वसिष्ठ के पुत्र

सुकालिन हैं। ब्राह्मणों के पितर अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध, काव्य, बर्हिषद, अग्निष्वात्ता और सौम्य हैं। पितरों के यह जो मुख्य गण बताये हैं, उनके असंख्य पुत्र-पौत्रादि भी हैं ॥१९५-२००॥

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः ।
देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥२०१

राजतैर्भाजनैरेषामथो वा राजतान्वितैः ।
वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥२०२

देवकार्याद्द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते ।
दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वकाप्यायनं श्रुतम् ॥२०३

तेषामारक्षभूतं तू पूर्वं दैवं नियोजयेत् ।
रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् ॥२०४

दैवाद्यन्तं तदीहेत पित्राद्यन्तं न तद्भवेत् ।
पित्राद्यन्तं त्वीहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वयः ॥२०५

शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत् ।
दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥२०६

ऋषियों से पितर, पितरों से देवता और मनुष्य तथा देवताओं से इस सम्पूर्ण चराचर विश्व की उत्पत्ति हुई। उन पितरों को रजत-निर्मित अथवा रजतमिश्रित ताम्र पात्रों में श्रद्धापूर्वक प्रदत्त जल अक्षय सुख का कारण होता है। द्विजातियों के लिए देवकर्म की अपेक्षा पितरकर्म अधिक विशिष्ट है, क्योंकि देवकर्म को पितरकर्म का ही पूर्व परिपूरक कहा जाता है। पितरकर्म में रक्षारूप दैवकर्म अर्थात् बलिवैश्वदेव कर्म सबसे पहले करे, क्यों कि रक्षा-रहित श्राद्ध को राक्षस लुप्त कर देते हैं। दैवकर्म से ही श्राद्ध कर्म का अन्त किया जाय, पितृकर्म से नहीं। आरम्भ और

अन्त में दैवार्चन के बिना श्राद्ध करने वाला वंश सहित नाश को प्राप्त होता है। श्राद्ध का स्थान एकान्त, पवित्र, गोबर से लिपा-पुता तथा दक्षिण की ओर ढलवां हो, ऐसा प्रयत्न करे ॥२०१-२०६॥

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतोरेषु चैव हि ।
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ॥२०७

आसनेषूपक्लृप्तेषु बर्हिष्मत्सु पृथक्पृथक् ।
उपस्पृष्टोदकान्सम्यग्विप्रांस्तानुपवेशयेत् ॥२०८

उपवेश्य तु तान्विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् ।
गन्धमाल्यैः सुरभिभिरर्चयेद्देवपूर्वकम् ॥२०९

तेषामुदकमानीय सपवित्रांस्तिलानपि ।
अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ॥२१०

अग्नेः सोमयमाभ्यां च कृत्वाप्यायनमादितः ।
हविर्दानेन विधिवत्पश्चात्संतर्पयेत्पितॄन् ॥२११

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ।
यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥२१२

उपवन या वन की शुद्धि भूमि, नदीतट और एकान्त स्थान में पितरकर्म करने से वे सदा सन्तुष्ट रहते हैं। भले प्रकार स्नान-आचमन आदि से युक्त उन निमन्त्रित ब्राह्मणों को अलग-अलग कुशासनों या पवित्र आसनों पर बैठावे। उनके बैठने पर चन्दन, माल्य, धूपादि से दैवकर्म पूर्वक अर्चन करे। फिर उन ब्राह्मणों को तिलदर्भ युक्त अर्घ्य दे और उनकी अनुमति से मन्त्र-युक्त हवन करे। प्रथम अग्नि, सोम और यम के उद्देश्य से पर्यक्षण करके हवि देने के पश्चात् विधिवत् पिण्ड-दानादि तर्पण कर्म

करे। अग्नि न हो तो ब्राह्मण के हाथ में ही उपर्युक्त देवताओं के उद्देश्य से आहुतियाँ दे, क्योंकि तत्वदर्शी जन ब्राह्मण और अग्नि को समान बताते हैं।।२०७ २१२।।

अक्रोधनान्सुप्रसादान्वदन्त्येतान्पुरातनान्।
लोकस्याप्यायने युक्ताञ्छ्राद्धदेवान्द्विजोत्तमान् ।।२१३

अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्य विक्रमम्।
अपसव्येन हस्तेन निर्वमावृत्य भुवि ।।२१४

त्रींस्तु तस्माद्धविः शेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः।
औदकेनैव विधिना निर्वपेद्दक्षिणामुखः ।।२१५

न्युप्य पिण्डांस्तत स्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम्।
तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेप भागिनाम् ।।२१६

आचम्योद क्परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून्।
शड्ऋतूंश्च नमस्कुर्यात्पितृनेव च मन्त्रवित् ।।२१७

उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः।
अवजिघ्रेच्च तान्पिडान्यथान्युप्तान्समाहितः ।।२१८

क्रोधहीन, सुप्रसन्न, अनादिप्रवाह स्वरूप तथा लोकहित में सलग्न श्रेष्ठ ब्राह्मणों को मुनियों ने श्राद्धान्न के लिए देवताओं के समान माना है। अपसव्य होकर अग्नीकरण होम करे तब दक्षिण हाथ से पिण्ड रखने के स्थान में जल डाले। फिर उस हविशेष अन्न के तीन पिण्ड बनाकर जल से अभिषिक्त करे और दक्षिणाभिमुख होकर उन पिण्डों को यथा स्थान रखे। फिर विधिवत उन पिण्डों को कुश पर रख कर कुशमूल में लिप्तभाग हाथ को पितरों को तृप्ति के निमित निलिप्त करे। फिर आचमन कर उत्तराभिमुख होकर तीन वार प्राणायाम एवं छः

ऋतुओं को तथा दक्षिणाभिमुख होकर मन्त्र पूर्वक पितरों को नमस्कार करे। पिण्ड देने से पूर्व धरती पर जल छोड़ने से बचे हुए जल को प्रत्येक पिण्ड के पास छोड़कर जिस क्रम से जल दिया हो, उसी क्रम से उन्हें एक-एक करके सूँघें ॥२ ३-२१८॥

पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मात्रां तमादायानुपूर्वशः ।
तेनैव विप्रानासीनान्विधिवत्पूर्वमाशयेत् ॥२१९

ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् ।
विप्रवद्वापि तं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥२२०

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः ।
पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥२२१

पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः ।
कामं वा समनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् ॥२२२

तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु सपवित्रं तिलोदकम् ।
तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् ॥२२३

पाणिभ्यां तूपसंगृह्य स्वयमन्नस्य वर्धितम् ।
विप्रान्तिके पितृन्ध्यायञ्शनकैरुपनिक्षिपेत् ॥२२४

पिण्डान्न से थोड़ा-थोडा भाग ग्रहण कर उन आमन्त्रित ब्राह्मणों को भोजन से पहिले खिलावें। यदि पिता जीवित हों तो पितामह आदि का श्राद्ध करता हुआ उन्हें पिण्ड दे या ब्राह्मणके स्थान पर अपने पिता को ही भोजन करावे। जिसके पिता की मृत्यु होगई हो, किन्तु पितामह जीवित हो तो वह पिता और पितामह का श्राद्ध करे। श्राद्ध में पिता को खिलौने की विधि के अनुसार जीवित पितामह को भोजन करवे अथवा पितामह अपने विषय में जो आज्ञा दें, वही करे। उन ब्राह्मणोंके हाथ में

कुशयुक्त तिलोदक देकर पूर्वोक्त पिण्डों में से थोड़ा-थोड़ा उन्हें दे। भोजनसामग्री से परिपूर्ण पात्र को दोनों हाथों से लावे और पितरों का ध्यान करता हुआ विप्रों के निकट धीरे-धीरे रखे ॥२१९-२२४॥

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते ।
तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः सहसा दुष्टचेतसः ॥२२५
गुणांश्च सूपशाकाद्यान्पयो दधि घृतं मधु ।
विन्यसेत्प्रयतः पूर्वं भूमादेव समाहितः ॥२२६
भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च ।
हृद्यानि चव मांसानि पानानि सुरभाणि च ॥२२७
उपनीय तु तत्सर्वं शनकैः सुसमाहितः ।
परिवेषयेत प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् ॥२२८
नास्रमापातयज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् ।
न पादेन स्पृशेदन्नं न चैतदवधूनयेत् ॥२२९
अस्त्रं गमयति प्रेतान्कोपोऽरीननृतं शुनः ।
पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतोनवधूननम् ॥२३०

दोनों हाथों से पकड़ कर न लाये जाने वाले अन्न को दुष्ट बुद्धि राक्षस हर लेते हैं। अचार, चटनी, रायता, सूप, शाक, दूह, दही, घी और मधु आदि सभी पदार्थ सावधानी से पात्र में रखे, भक्ष्य, भोज, फल, मूल, मांस और सुरभित जल आदि सब वस्तुएं पृथ्वी पर ही (पाँवों में) रखे। सावधानी पूर्वक धीरे-धीरे सब वस्तुएँ लाकर उनका गुण बताता हुआ क्रम से परोसे। ब्राह्मण भोजन के समय अश्रुपात या क्रोध न करे, झूठ न बोले, पाँवों से अन्न का स्पर्श न करे और परोसते समय अन्न को

हिल.व। वह अन्न अश्रु पात करने से भूतों को, क्रोध करने से शत्रुओं को, मिथ्या भाषण से कुत्तों को, पाँव से स्पर्श करने राक्षसों को और हिलाने या उछालने से पापियों को प्राप्त होता है ॥२२५-२३०॥

यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः ।
ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्यात्पितृणामेतदीप्सितत् ॥२३१

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ॥२३२

हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैः शनैः ।
अन्नाद्येनासकृच्चैतान्गुणैश्च परिचोदयेत् ॥२३३

व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् ।
कुतपं चासने दद्यात्तिलैश्च विकरेन्महीम् ॥२३४

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्र कुतपस्तिलाः ।
त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥२३५

अत्युष्ण सर्वमन्नं स्याद्भुञ्जीरंस्ते च वाग्यताः ।
न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टा हविर्गुणान् ॥२३६

ब्राह्मणों को रुचिकर वस्तु प्रसन्नतापूर्वक खिलावे और ब्रह्मविषयक वार्तालाप करे, क्योंकि पितरों को ब्रह्मचर्चा अत्यन्त प्रिय होती है। श्राद्ध में वेद धर्मशास्त्र, आख्यान, इतिहास पुराण और खिल अर्थात् सूक्त आदि का श्रवण करावे। प्रसन्न चित्त से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता हुआ धीरे-धीरे भोजन करावे और खाद्यान्न का गुण कहता हुआ और लेने का पुनः पुनः आग्रह करे। यदि दौहित्र ब्रह्मचारी भी हो तो श्राद्धमें उसे यत्न-सहित भोजन करावे, बैठने को कम्बल का आसन दे तथा जहाँ

श्राद्ध करना हो, उस भूमि पर तिल छिड़क दे। श्राद्ध में दौहित्र ऊनी कम्बल और तिल, यह तीनों पवित्र तथा शौच, अक्रोधऔर स्थिरता प्रशसित हैं। भोजन के सब पदार्थ गर्म रहें, ब्राह्मण उन्हें मौन रह कर खावें, श्राद्धकर्त्ता द्वारा खाद्यान्न का गुण-दोष पूछने पर भी ब्राह्मण कुछ न बतावें ॥२३१-२३६॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः।
पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥२३७

यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखाः।
सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते तद्वै रांक्षसि भुञ्जते ॥२३८

चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैक च।
रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान् ॥२३९

होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते।
दैवे कर्माणि पित्र्ये वा तद्गच्छत्ययथातथम् ॥२४०

घ्राणेन सूकरो हन्ति पक्षवातेन कुक्कुटः।
श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शेनाबरवर्णजः ॥२४१

खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योपि वा भवेत्।
हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्पुनः ॥२४२

अन्न के गर्म रहने तक ब्राह्मण मौन होकर भोजन करते हैं तथा ब्राह्मणों द्वारा उस अन्न के गुण दोष न कहने तक ही पितर भोजन करते हैं। सिर में वस्त्र लपेट कर, दक्षिणाभिमुख होकर या खड़ाऊँ पहन कर किया जाने वाला भोजन पितरों को न मिल कर राक्षसों को मिलता है। चाण्डाल, शूकर, कुक्कुट, श्वान, रजस्वला और नपुंसक यह ब्राह्मणों को भोजन करते समय न देख पावें। यदि यह होम दान, ब्राह्मण भोजन तथा देवकर्म या पितर कर्म देख लेते हैं तो वह कर्म फलहीन ही

जाता है। शूकर उसको गन्ध लेकर, मुर्गा अपने पंख की हवा फेंककर श्वान दृष्टि जमा कर और शूद्र छूकर श्राद्ध के अन्न को फल-रहित कर देता है। लङ्गड़ा, काना, श्राद्धकर्त्ता का दास हीन अंग वाला और अधिकांगी श्राद्धस्थान से हटा दिये जाने चाहिए ।।२३७-२४२।।

ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितम् ।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत् ।।२४३
सार्वर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा ।
समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरन्भुवि ।।२४४
असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् ।
उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः ।।२४५
उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च ।
दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ।।२४६
आसपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु ।
अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ।।२४७
सहपिण्ड क्रियायां तु कृतायामस्य धर्मतः ।
अनयैत्रावृता कार्यं पिण्डनिर्वपणः सुतैः ।।२४८

कोई ब्राह्मण अथवा भिक्षुक भोजन के उद्देश्य से आजाय तो निमन्त्रित ब्राह्मणों की अनुमति से उसे भोजन या भिक्षा देकर सन्तुष्ट करे। सब पदार्थों को एकत्र कर उन्हें जल से शुद्ध करके भोजन किये हुए ब्राह्मणों के आगे पृथिवी में कुशों पर रख दे। अग्नि संस्कार के अधिकार से रहित मर हुए बालकों और कुल-बधुओं को छोड़ने वालों का भाग पात्र में रखी जूठन और कुशों पर रखा हुआ वह अन्न माना गया है। विद्वानों का कथन है कि

शील स्वभाव वाले दासों का अन्नभाग श्राद्ध में पृथिवी पर गिरा अन्न होता है। द्विजाति के श्राद्ध पयन्त किये जाने वाले सपिण्डी करण में ब्राह्मणों को देवस्थान में न बैठाकर पितृस्थान में बैठा कर भोजन करावे और एक ही पिण्ड दे। उक्त प्रकार से सपिंडीं करण होने पर अमावस में पार्वण श्राद्ध को बताई हुई विधि से ही पितृहेतु पिण्डदान क्षयाहादि में पुत्रगण करे ।।२४३-२४७।।

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति ।
स मूढ़ो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ।।२४८

श्राद्धभुग्वृषलीतल्पं तदहर्योऽधिगच्छति ।
तस्याः पुरोषे तन्मासं पितरस्तस्य शेरते ।।२५०

पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः ।
आचान्तांश्चानुजानीयादभितो रम्यतामिति ।।२५१

स्वधास्त्वित्येव तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ।
स्वधाकारः पराह्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ।।२५२

ततो भुक्तवतां तेषामन्नसेषं निवेदयेत् ।
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्यतो द्विजैः ।।२५३

पित्र्ये स्वदितस्विमत्येव वाच्यं गोष्ठे तु सुश्रुतम् ।
संपन्नामित्यभ्युदये दैवे रुचितमित्यपि ।।२५४

श्राद्धन्न भक्षण कर शूद्र को उच्छिष्ट देने वाला ब्राह्मण नीचे सिर और ऊपर पाँव वाले कालसूत्र सज्ञक नरक में गिरता है। श्रद्धान्न खाकर शुद्रा से बिहार करने वाले ब्राह्मणके पितर एक मास पर्यन्त उस स्त्री की विष्टा में रहते हैं। ब्राह्मणों को तृप्त देखकर ब्राह्मणों से प्रश्न करे कि भोजन ठीक तो हुआ ! फिर उनके मुख धुलाकर आचमनादि के पश्चात् निवेदन करे कि आप अपनी इच्छानुसार यहाँ रहें या अपने घर पधारें। फिर

ब्राह्मण 'स्वधाऽस्तु' कहें, क्योंकि पितृकर्म में श्रेष्ठ आशीर्वाद स्वधाकार ही है। उन भोजन से संतुष्ट ब्राह्मणों को शेषान्न निवेदन करे और वे उसके विषय में जो आदेश दें वैसा करे। एकोद्दिष्ट श्राद्ध में स्वदितं, गोष्ठी श्राद्ध में सुश्रुत आभ्युदयिक में सम्पन्न और देवता की प्रसन्नता के निमित्त वाले श्राद्ध में रुचित कहता हुआ पूछे ॥२४८-२५४॥

अपराह्णस्तथा दर्भा वास्तुसम्पादनं तिलाः ।
सृष्टिमृ ष्टिर्द्विजाश्चाग्र्याः श्राद्धकर्मसु संपदः ॥२५५

दर्भः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि च सर्वशः ।
पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसम्पदः ॥२५६

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ।
अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ॥२५७

विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वाग्यतःशुचिः ।
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्याचेतेमान्वरान्पितॄन् ॥२५८

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदा संततिरेव च ।
श्रद्धा च नो माव्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विति ॥२५९

एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डाँस्तांस्तदनन्तरम् ।
गां विप्रमजमग्निं वा प्राशयेदप्सु वाक्षिपेत् ॥२६०

अपराह्न, कुश, गोबर से भूमि संशोधन, तिल, श्रद्धायुक्त अन्नदान, भोज्यान्न का परिष्कार और पंक्तिपावन ब्राह्मण, श्राद्ध की यह सब सम्पत्ति हैं। कुश, मन्त्र, पूर्वाह्न, हविष्य और पूर्व श्लोक में कथित सब वस्तुए देवकर्म की सम्पत्ति हैं। वानप्रस्थियों के खाद्यान्न, दूध, सोमरस, अविकृत मांस और सैंधव लवण—यह स्वाभाविक हवि हैं। उन ब्राह्मणों को जाने देने के पश्चात् सयतचित्त, मौनपूर्वक पवित्रा सहित दक्षिण दिशा में

देखता हुआ पितरों से निम्न इच्छित वर माँगे—हमारे वंश में दाता पुरुष बढ़े, अनुष्ठानों द्वारा धनकी वृद्धि हो सन्तान बढ़े तथा वेद और ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा में कमी न आवे एवं दान योग्य धन भी प्रचुर मात्रा में हमारे पास रहे। इस प्रकार पिण्डदानादि के पश्चात वर मांगे और उन पिण्डों का गौ, ब्राह्मण या बकरे को खिलावे अथवा अग्नि या जल में विसर्जित कर दे ॥२५८-२६०॥

पिण्डानिर्वपणं केचित्पुरस्तादेव कुर्वते ।
वयोभिः खादयन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सु वा ॥२६१

पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा ।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी ॥२६२

आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् ।
धनवन्तं प्रजावन्तं सात्विकं धार्मिकं तथा ॥२६३

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्राय प्रकल्पयेत् ।
ज्ञातिभ्यः सत्कृत दत्त्वा बान्धवानपि भोजयेत् ॥२६४

उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ।
ततोः गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥२६५

हविर्यच्चिररात्राय यच्चानन्त्याय कल्पयते ।
पितृभ्यो विधिवद्दत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥२६६

कोई आचार्य ब्राह्मणभोजन के पश्चात् पिण्ड देते हैं, कोई स्वेच्छापूर्वक पक्षियोंको पिण्ड खिलाते हैं, या कोई अग्नि या जल में डाल देते हैं स्वजाति की जो विवाहिता पतिव्रता पितरों के पूजन में तन-मन से लगी रहती हुई पुत्र की कामना करती हो उसे तीनों पिण्डों के मध्य वाला पिण्ड खाना चाहिए। इससे

उसके दीर्घायुष्म, यशस्वी, बुद्धिमान, धनवान, प्रजावान, सात्विक एव धार्मिक पुत्र होगा। फिर वह हाथ-पाँव धोकर आचमन करे और परिवारीजन को आदर पूर्वक भोजन करा कर बन्धुओं को भो खिलावे। जब तक ब्राह्मण न चले जाय, तब तक उनकी जूठन न हठावे और श्राद्धकम के भले प्रकार पूर्ण हो जाने पर बलिवैश्वदेव आदि नित्य कर्म करे। अब पितरों को दिया जाने वाला जो हव्य उन्हें चिरकाल या अनन्तकाल के लिए तृप्ति दे, उसे कहता हूँ।।२६१-१८६।।

तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा।
दत्तेन मासं तृप्यन्ति विधिवत्पितरो नृणाम् ।।२६७

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारिणेन तु।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै ।।२६८

षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै।
अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु ।।२६९

दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः।
शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु ।।२७०

संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च।
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ।।२७१

कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु।
आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ।।२७२

तिल, व्रीहि, जो, उड़द, जल, मूल और फल में से कोई एक वस्तु के देने से पितर एक मानवमास तक तृप्त रहते हैं। मत्स्य-मांस से दो मास तक, हरिणमांस से तीन मास तक, भेड़ के मांस से चार मास तक, पक्षियों के मांस से पाँच मास तक, अज-मांस से छः मास तक, चित्रमृग-मांस से सात मास तक, ऐण मृग के

मांस से आठ मास तक तथा रुरु मृगके मांस से नौ मास तक तृप्त रहते हैं। जंगली शूकर या जङ्गली भैंसेके मांससे दस मास और खरहे या कछुए के मांस से ग्यारह मास तक तृप्त रहते हैं। गोदुग्ध या खीर से एक वर्ष तथा वार्ध्रीणसके मांस से बारह वर्ष तक पितरों की तृप्ति रहती है। कालशाक, महाशल्क, गेंडे या लाल रङ्ग के बकरे का मास मधु और नीवार आदि शुद्ध अन्न से अनन्तकाल पर्यन्त पितर तृप्त रहते हैं ॥२६७-२७२॥

यत्किंचिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम् ।
तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च ॥२७३

अपि नः स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ।
पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥२७४

यद्यद्ददाति विधिवत्सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ।
तत्तत्पितॄणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् ॥२७५

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।
श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः ॥२७६

युक्षु कुर्वन्दिनर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते ।
अयुक्षु तु पितॄन्सर्वान्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥२७७

यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ।
यथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ॥२७८

वर्षा ऋतु की मघ नक्षत्र वाली त्रियोदशी में पितरों का जो कुछ भी मधु-मिश्रित दिया जाय, वही अक्षय होता है। पितर-गण ऐसी आशा किया करते हैं कि हमारे वंश में कोई पुरुष उत्पन्न हो जो हमें त्रयोदशी तिथि अथवा हाथी की छाया पूर्व दिशा में पड़ती हो उस दिन मधु घृत युक्त खीर प्रदान करे।

श्रद्धा सहित भले प्रकार और विधिपूर्वक पितरों को जो कुछ भी दिया जाय, वही परलोक में उनकी तृप्ति के निमित्त अक्षय हो जाता है। कृष्णपक्ष की दशमी से अमावस तक की छः तिथियों में चतुर्दशी के अतिरिक्त शेष पाँचों तिथियों श्राद्ध के लिए जितनी विशिष्ट मानी गई हैं, उतनी अन्य तिथियाँ नहीं। सम तिथि-नक्षत्र में पितृकर्म सभी कामनाएं देने वाला होता है,किन्तु विषय तिथि नक्षत्र में करने से भी वह धन-विद्या से युक्त पुत्र प्राप्त कराता है। श्राद्ध में जैसे शुक्ल पक्ष कीं अपेक्षा कृष्णपक्ष श्रेष्ठ है वैसे पूर्वाह्न की अपेक्षा अपराह्न श्रेष्ठ है।।२७३-२७८।।

प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा ।
पित्र्यमानिधनात्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना ।।२७९

रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा ।
संध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते ।।२८०

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ।
हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पाञ्चयज्ञिकमन्वहं ।।२८१

न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते ।
न दर्शेन बिना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ।।२८२

यदेव तर्पयत्यद्भिः पितृन्स्नात्वा द्विजोत्तमः ।
तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ।।२८३

दक्षिण कन्धे पर यज्ञोपवीत रख कर अपसव्य होने पर निरालम्ब हुआ कुशा हाथ में लेकर शास्त्र विधिसे जीवन पर्यन्त पितृकर्म करता रहे। रात्रि में श्राद्ध न करे, क्योंकि रात्रि को राक्षसी कहते हैं, प्रातः सायं के समय तथा सूर्योदय काल में भी श्राद्ध न करे इस प्रकार वर्ष में तीन बार अर्थात् हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षा तीनों ऋतुओं में एक-एक बार श्राद्ध अवश्य करे और

पंचमहायज्ञ कर्म के अन्तर्गत तो नित्य ही श्राद्ध करे। पितृयज्ञ के होम को लौकिक अग्नि में नहीं किया करते, आहिताग्नि द्विज अमावस के अतिरिक्त अन्य किसी तिथि में श्राद्ध न करे। स्नान करने के पश्चात् ब्राह्मण जिस जल से तर्पण करता है, उसे उसी के नित्य पितृयज्ञ का फल मिल जाता है ॥२७९-२८३॥

वसून्वदन्ति तु पितॄन्रुद्रांश्चैव पितामहान।
प्रपितामहांनस्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषा सनातनी ॥२८४

विघासाशो नवेन्नियं नित्यं वामृतभोजनः।
विघसो भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथामृतम् ॥२८५

एतद्वोऽभिहितं सर्वं विधानं पांचयज्ञिकम्।
द्विजातिमुख्यवृत्तीनां विधानं श्रूयतामिति ॥२८६

ऋषिगण पिता को वसु, पितामह को रुद्र और प्रपितामह को आदि कहते हैं ऐसी सनातन श्रुति है। नित्य विघसाशी हो अथवा नित्य अमृतभोजा अतिथि ब्राह्मणों को भोजन कराने पर बचा हुआ अन्न विघस एवं यज्ञ का अवशिष्ट अन्न अमृत कहा गया हैं। पंचयज्ञ विषयक यह सम्पूर्ण विधान आपके प्रति कहा गया, अव द्विजों की मुख्य वृत्ति को सुनिये ॥२८४-२८६॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥

———

चौथा अध्याय

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः ।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ।
अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥२
यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम् ॥३
ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा ।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥४
ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम् ।
मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥५
सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते ।
सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥६

ब्राह्मण को अपनी आयु का प्रथम भाग गुरु गृह में रह कर और द्वितीय भाग विवाह करके घर में बिताना चाहिए। वह किसी को कष्ट न देकर अथवा अल्प कष्ट देकर ही अपना जीवन यापन करे। उचित कार्यों को करता हुआ, शरीर को क्लेश न पहुँचाने वाले ढंग से प्राण रक्षा के लिए ही धन का संचय करे। ऋत, अमृत, मृत या प्रमृत तथा सत्य के ग्रहण और झूठ के त्याग से कार्य ले, किन्तु श्वान वृत्ति का अवलम्बन कदापि न करे। शिलोच्छ वृत्ति को ऋत, अयोचित प्राप्ति को अमृत याचना पर

प्राप्त हुए को मृत तथा कृषि से प्राप्त हुए को प्रमृत कहते है। व्यापार को सत्यानृत कहा है, इससे भी जीवन निर्वाह किया जा सकता है। सेवावृत्ति ही श्वानवृत्ति है, अतएव इसे कभी न करे ॥१-६॥

कुसूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा ।
त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥७

चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् ।
ज्यायान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः ॥८

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते ।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥९
वर्तयश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ।

इष्टीः पार्वायणान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥१०

कुसूलधान्यक (तीन वर्ष का पर्याप्त अन्न) कुंभीधान्यक (एक वर्ष को पर्याप्त), त्र्यहैहिक (तीन दिन को पर्याप्त अन्न अथवा उतना ही अन्न सचय करे जो एक ही दिन चल सके। यह चारो प्रकार के गृहस्थ ब्राह्मण से दूसरा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। यह धर्म के द्वारों श्रेष्ठ लोकों को जीत सकता है। ऊक्त चारों से प्रथम षटकर्मी, दूसरा और तीसरा त्रिकर्मी और चौथा एक-कर्मी अर्थात् वेदाध्ययन करता हुआ जीता है। शिलोञ्छवृत्ति से जीवन व्यतीत करता हुआ अमावस, पूर्णिमा एवं नवान्न प्राप्ति के समय यज्ञ करे ॥७-१०॥

न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन ।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥११
संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥१२

अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः ।
स्वर्ग्यायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥१३

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥१४

नेहेतार्थान्प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा ।
न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः ॥१५

लौकिक वृत्ति अर्थात् छल-कपट आदि न करता हुआ संतोष को सुख और असंतोष को दुःख का मूल समझे । स्नातक द्विज को पूर्वोक्त में से किसी एक वृत्ति का आश्रय लेकर स्वर्ग, आयु एवं यश देने वाले व्रत करने चाहिए । निरालस्य हो वेदोक्त कर्म करे क्योंकि इससे परमगति प्राप्त होती है । गति वाद्य की वृत्ति या शास्त्रविरुद्ध कार्यों से जीविका न करे धनाभाव के कारण संकटकाल में भी पतितों का धन न ले ॥११-५॥

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ।
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिवर्तयेत् ॥१६

सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः ।
यथातथाध्यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥१७

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।
वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ॥१८

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥१९

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥२०

इन्द्रियों के विषय में असक्त न होकर उन्हें अनित्य समझ का त्याग दे। वेद विरुद्ध कार्यो को त्याग कर स्वाध्याय करने वालो के साथ ही आजीविका का व्यवहार रखे क्योंकि गृहस्थ ब्राह्मण की कृतकृत्या का यही उपाय हैं। आयु, कम, धन, सुनी हुई विद्या, वेश; वचन और बुद्धि से युक्त रह कर जीवन बितावे बुद्धि एवं धन वधक और हितकर शास्त्रों तथा धर्मशास्त्र आदि का नित्य अध्ययन करता रहे। जैसे-जैसे शास्त्रों का अध्ययन होता है वैसे-वैसे ही ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि होती जाती है ।।१६-२०।।

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ।।२१
एतानेके महायज्ञान्यषशास्त्रविदो जनाः।
अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति ।।२२
वाच्येके जेह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा।
वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिवृत्तिमक्षयाम् ।।२३
ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येतमुखैः सदा।
ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा ।।
अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा।
दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि ।।२५

ऋषियज्ञ देवयज्ञ भूतयज्ञ नृयज्ञ और पितृयज्ञ और अर्थात् वेदाध्ययन, हवन, बलि, अतिथि सेवा तर्पण को जहाँ तक सम्भव हो न छोडे। यज्ञशास्त्रविद् पुरुष इन यज्ञों को न करें तो भी ज्ञानेन्द्रिय में विषयों का हवन (परित्याग) कर इन यज्ञों को ही करते हैं। वाणी और प्राण का अक्षय फल सिद्ध जानने वाले पुरुष बाणीं में प्राण और प्राण में बाणी को हो जाते हैं अर्थात् इन

दोनों को वश में कर लेते हैं। ज्ञानी विप्र इन यज्ञकर्मों को ज्ञानाचक्षु से ज्ञानमूल रूपी देख कर ज्ञान द्वारा ही यज्ञ-फल पा लेते हैं। दिवस रात्रि के अन्त में सदा अग्निहोत्र और अमावस-पूर्णिमा को दर्श एवंपौर्णमास यज्ञ करना चाहिए ॥२१-२५॥

सस्यान्ते नवसस्येष्टया तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः ।
पशुना त्वयनस्यादौ समान्ते सौमिकैर्मखैः ॥२६

नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना चाग्निमान्द्विजः ।
नवान्नद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥२७

नवेनानर्चिता ह्यस्य पशुहव्येन चाग्नयः ।
प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्धिनः ॥२८

आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा ।
नास्य कश्चिद्वसेद्गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः ॥२९

पाषण्डिनो विकर्मस्थान्बैडालव्रतिकाञ्छठान् ।
हैतुकान्बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥३०

अन्न समाप्त होने पर नये अन्न से यज्ञ करे। ऋतु के अन्त में चातुर्मासिक यज्ञ अयन के आरम्भ में पशुयज्ञ और वर्ष के अन्त में सोमरस युक्त यज्ञकरना चाहिए। दीर्घजीवन का इच्छुक अग्निहोत्री नवीन अन्न यज्ञ अथवा पशुयज्ञ किये बिना भोजन न करे। नवीन अन्न या माँस के आकांक्षी अग्नि नवान्न या पशु रूपी अन्न से सत्कृत न हों तो यज्ञकर्ता के प्राण ही भक्षण कर लेते हैं। गृहस्थ घर में शक्त्यानुसार आसन, भोजन, शय्या कन्द- मूल- फल और जल से अतिथि-सत्कार अवश्य होना चाहिए पाखण्डी, विकर्मी, बैडालवृत्तिक, शठ हैतुक और बकवृत्तिक व्यक्ति अतिथिरूप से भी आवें तो उनका सत्कार वाणी से भी न करे ॥२६-३०॥

वेदविद्याव्रतस्नाताञ्श्रोत्रियान्गृहमेधिनः ।
पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्जयेत् ।।३१

शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना ।
संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ।।३२

राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकः क्षुधा ।
याज्यान्तेवासिनोर्वापि न त्वन्यत इति स्थितिः ।।३३

न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधा शक्तः कथंचन ।
न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ।।३४

क्लृप्तकेशनखश्मश्रु दान्तःशुक्लाम्बरः शुचिः ।
स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ।।३५

वेदविद्या स्नातक, व्रतस्नातक या विद्याव्रतस्नातक इन तीनों में से कोई भी आवे तो हव्य-कव्य से उन्हें पूजे और इनके विपरीत को न पूजे। स्वयं भोजन न बना सकने वाले सन्यासी या ब्रह्मचारी को गृहस्थ भोजन दे। परिवारीजनों और अन्य जीवों को भी बिना कष्ट दिये अन्न-जल प्रदान करे। अन्नाभाव की स्थिति में प्रथम राजा से फिर यजमान से और फिर स्नातक से गृहस्थ ब्राह्मण द्रव्य ले ले, किन्तु अन्य से कुछ भी न माँगे। दान लेने में समर्थ होने के कारण विद्वान् स्नातक राजा आदि से दान मिलने पर, उसे छोड़कर भूखा न रहे और धन प्राप्त होने पर मैले और फटे पुराने वस्त्र न रहे। केश, नख, दाढ़ी छँटवा ले, श्वेत-स्वच्छ वस्त्र पहिने तथा स्वाध्याय युक्त रह कर आत्म-कल्याण के कार्यों में लगा रहे ।।३१-३५।।

वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम् ।
यज्ञोपवीतं वेदं च शुभं रौक्मे च कुण्डले ।।३६

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तंयन्तं कदाचन ।
नोपसृष्टं च वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ॥३७
न लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीं न प्रधावेच्च वर्षति ।
न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणा ॥३८
मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् ।
प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥३९
नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने।
समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥४०
रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ॥४१
तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम् ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते ॥४२

वेंत अर्थात् दण्ड जल युक्त कमण्डलु यज्ञोपवीत बेद कुश और कुण्डल धारण करने चाहिए। उदय और अस्त के समय, ग्रहण के समय, आकाश के मध्य में पहुँचे हुए सर्य को या जल में उसके प्रतिबिम्ब को न देखे। बछड़ा बांधने वाली रस्सी को न लाघे वर्षा होते समय न भागे और अपनी परछाईं को न देखे, यह शास्त्रसम्मत है मिटटी, गौ देवप्रतिमा विप्र घृत, मधु, चौराहा और प्रसिद्ध वृक्ष की प्रदक्षिणा करता हुआ चले अर्थात् मार्ग चलते में इन्हें अपने दाँयी ओर करले कामासक्त होकर भी रजस्वला से समागम न करे और न उसके साथ एक शय्या पर शयन करे। क्योंकि रजस्वला से समागम करने वाले पुरुष की प्रज्ञा, तेल, बल, दृष्टि और आयु भी क्षीण हो जाती है। किन्तु रजस्वला से दूर रहते वाले की प्रज्ञा तेज, बल, दृष्टि और आयु बढ़ती है ॥३६-४२॥

नाश्नीयाभ्दार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् ।
क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथासुखम् ॥४३
नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम् ।
न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥४४
नान्नमद्योवेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् ।
न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥४५
न फालकृष्मे न जले न चित्यां न च पर्वते ।
न जीर्णदेवायतने न बल्मीके कदाचन ॥४६
न ससत्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः ।
न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ॥४७
वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गा ।
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥४८

स्त्री के साथ भोजन न करे, भोजन करती, छींकती, जँभाई लेती या एकान्त में सुखपूर्वक बैठी स्त्री को न देखे नेत्रों में काजल या अंगो में उबटन लगाती हुई नंगी बैठो हुई या प्रसव करती हुई स्त्री को तेजस्वी होने की इच्छा वाला ब्राह्मण न देख एक वस्त्र धारण किये भोजन न करे। नंगा होकर स्नान न करे भस्म के ढेर या गऊशाला में मूत्र त्याग न करे। जुते खेत, जल ईंट के भट्टे, पर्वत, जीर्णदेवमन्दिर और वल्मीक पर भी मल-मूत्र न त्याने। जीवयुक्त गर्त में नदी के किनारे या पर्वत शिखर पर चलते हुए या खड़े होकर मल-मूत्र न छोड़े जिधर वायु का प्रवाह हो उस ओर या अग्नि,ब्राह्मण सूर्य,जल और गौ की ओर मुख करके या देखता हुआ मल मूत्र न छोड़े ॥४३-४८॥

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्ठपत्रतृणादिना।
नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः।।४६
मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ् मुखः ।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्ययोश्च तथा दिवा ।।५०
छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ।
यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेष च ।।५१
प्रत्यग्नि प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान् ।
प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ।।५२
नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम् ।
नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ।।५३
अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलंघयेत् ।
न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणाबाधमाचरेत् ।।५४

शुष्क काष्ठ,पत्ते,तृण या मिट्टी के ढेले आदि से पृथिवी को आच्छादित कर, अपने शरीर को वस्त्र से ढक कर सिर में भी वस्त्र लपेट कर, मोन एवं स्थिर स्थिति से मलमत्र छोड़ें। दिन में उत्तर की ओर तथा रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके मल-मत्र विसर्जन करे। तथा प्रातः और सायं के समय दिन के समान ही करे। रात्रि में, दिन में छाया में, अंधेरे में या जहां प्राण बालक भय की संभावना हो वहां द्विज जिधर सुविधा हो उधर ही मल मूत्र का त्याग करे अग्नि सूर्य चन्द्रमा, जलाशय द्विज, गौ और वायु के सामने मुख करके मलमूत्र छोड़ने से बुद्धि का नाश होता है। मुख से अग्नि में फूंक न दे और अग्नि में कोई अप-वित्र पदार्थ न डाले और अग्नि पर पावों को ऊंचे करके न सेके चारपाई के नीचे अग्नि न रखे, अग्नि को न लांघे, पांवों की ओर अग्नि न रखे, और ऐसा कोई भी कार्य न करे जिसमें प्राण बाधा की आशंका हो ।।४६-५४।।

नाश्नीयात्संधिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत् ।
न चैव प्रलिखेद्भूमिं नात्मनोपहरेत्स्रजम् ॥५५
नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं समुत्सृजेत् ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ५६
नैकः सुप्याच्छून्यगेहे श्रेयांसं न प्रबोधयेत् ।
नोदक्ययाभिभाषेत यज्ञं गच्छेन्न चावृतः ॥५७
अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ।
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ॥५८
न वारयेद्गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित् ।
न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुधः ॥५९
नाधार्मिके वसद्ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् ।
नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥६०

सधिवेला अर्थात् सायंकाल में भोजन ग्रामान्तर गमन अथवा शयन न करे। पृथिवी पर रेखा न काढ़े और पहिनी हुई माला को अपने कंठ से न उतारे। जल में मल-मूत्र थूक अथवा रक्त, मांस विष, आदि दूषित पदार्थ न डाले। शून्य गृह में अकेला शयन न करे सोते हुए श्रेष्ठ पुरुषों को न जगावे, रजस्वला से बातचीत न करे और यज्ञ में बिना बुलाये न जाय। अग्निशाल गौशाला या ब्राह्मणों के पास तथा वेदापाठ और भोजन के समय दाहिनी हाथ बाहर रखे। जल पीने से गौ को न रोके और जिस का दाना-घास खा रही हो उसे न बतावे। आकाश में इन्द्रधनुष को देख उसे किसी प्रकार अन्य को न दिखावे। जिस ग्राम में अधार्मिक या असाध्य रोगियों का बाहुल्य हो वहाँ अधिक समय न रहे, मार्ग में अकेला न चले और पर्वत पर चिरकाल तक निवास न करे ॥५५-६०॥

न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृते ।
न पाषण्डिगणाक्रांते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥६१
न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नीतिसौहित्यमाचरेत् ।
नातिगे नाति सायं न सायं प्रातराशितः ॥६२
न कुर्वीत वृथाचेष्टां न वार्यञ्जलिना पिबेत् ।
नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान्न जातु स्याकुतूहली ॥६३
न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ।
नास्फोटयेन्न च क्ष्वेन्न च रक्तो विरावयेत् ॥६४
न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भोजन ।
न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते ॥६५
उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् ।
उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेव च ॥६६

शूद्र राजा के राज्य में न रहे। चोर-दस्यु, पाखंडी आदि दुष्टों, नास्तिको और वेद-निन्दकों की अधिकता वाले ग्राम में भी निवास न करे। चिकनाई निकले हुए पदार्थों का न खाय, पूर्ण भोजन करने पर फिर कुछ न खाय, उदय और अस्त काल में भोजन न करे तथा प्रातःकाल अधिक खा लिया हो तो सायं-कालीन भोजन न करे। उद्देश्य रहित कार्य न करे अंजलि से जल न पीवे भक्ष्यान्न को जाँघ पर रख कर न खाय और कौतूहल के कारण निरर्थक बात न पूछे। ब्राह्मण को नृत्य गायन, वादन, ताल ठोकना दांत टिकटिकाना या गधे की बोली बोलना आदि वर्जित हैं। कांस्यपात्र में पांव न धोवे फूटे हुए पात्र में अथवा जिस पात्र में मन न रुचे उसमें भोजन न करे। अन्य द्वारा व्यवहृत जूता वस्त्र, जनेऊ,अलंकार और कमण्डलु आदि धारण न करे ।६१-६६।

नाभिनीतेर्व्रजेद्धुर्नं च क्षुद्व्याधिपीडितैः ।
न भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैर्न वालधिविरूपितैः ॥६७
विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः ।
वर्णरूपोपसंपन्नैः प्रतोदेनातुदन्भृशम् ॥६८
बालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम् ।
न छिन्द्यान्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान् ॥६९
न मृल्लोष्ठं च मृद्नीयान्न छिन्द्यात्करजैस्तृणम् ।
न कर्म निष्फलं कुर्यान्नायत्यामसुखोदयम् ॥७०
लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ।
स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च ॥७१
न विगर्ह्य कथां कुर्याद्बहिर्माल्यं न धारयेत् ।
गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् ॥७२

अशिक्षित, भूख प्यास और रोग से ग्रस्त टूटे-फटे सींग, नेत्र और खुर तथा कटी हुई पूंछ वाले अश्वादि पशुओं पर सवारी न करे। सीखे हुए, शीघ्रगामी शुभ लक्षण युक्त श्रेष्ठ वर्ण वाले तथा बिना चाबुक मारे चलने वाले वृषभों युक्त रथ अथवा अश्वों पर चढ़ कर यात्रा करे। सूर्योदय कालीन धूप शव का धुँआ और टूटे हुए आसन को त्याग दे तथा नख और लोम को न काटे अथवा दाँत नखों को न उखाड़े मिट्टी के ढेलों का मर्दन न करे नख से तृणा न तोड़े निष्फल कार्य या दुखद फल वाले कार्य न करे। ढेलों का मदन करने वाला तृण तोड़ने वाला दाँतों से नख उखाड़ने (काटने) वाला लोभी और अपवित्र मनुष्य शीघ्र ही नाश को प्राप्त होते है। अहंकार की बात न करे, बालों के बाहर माला न पहिने और गायों की पीठ पर चढ़ने वाले निन्दित कार्य को न करे ॥६७-७२॥

अद्वारेण च नतीयाद्ग्रामं या वेश्म वावृतम् ।
रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् ॥७३

नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नोपानहौ हरेत् ।
शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थं न चासने ॥७४

सर्वं च तिलसम्बद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ ।
न च नग्नः शयीतेह न चोच्छिष्टःक्वचिद्व्रजेत्॥७५

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।
आर्द्रपास्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥७६

अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रपद्यत कर्हिचत् ।
न विण्मूत्रमुदीक्षेत न बाहुभ्यां नदी तरत् ॥७७

अधितिष्ठेन्न केशांस्तु न भस्मास्थिकपालिकाः ।
न कार्पासास्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषु ॥७८

भीत से घिरे हुए ग्राम या घर में मुख्य द्वार के अतिरिक्त अन्य मार्ग से न घुसे तथा रात्रि के समय वृक्ष की जड़ के पास से दूर ही रहे । जुआ न खेले, जूता हाथ में लेकर न चले और बिछौने आसन या हाथ पर रख कर कुछ न खाय । सूर्यास्त के पश्चात तिल मिश्रित पदार्थ न खाय नंगा होकर न सोवे, जूठे मुख से कहीं गमन न करे । भीगे पांवों से भोजन तो करे, पर भीगे पांवों से शयन न करे तथा भीगे पाँवों से भोजन करने वाला दीर्घायुष्य होता है। झाड़ियों से घिरे घने मार्ग में जिसमें उस ओर की वस्तु दिखाई न देती हो उसमें न जाय, अपने मलमूत्र को न देखे और बाहुओं से नदी पार न जाय। दीर्घ जीवन की कामना वाला मनुष्य केश, भस्म अस्थि, बिनौले और भूसे पर खड़ा न हो ॥७३-७८॥

न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुल्कसैः ।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥७९
न शूद्राय मीत दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ।
न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥८०
यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम् ।
सोऽसंवृतं नाम तमः सह तेनैव मज्जति ॥८१
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मन. शिरः ।
न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः ॥८२
केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ।
शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत् ॥८३
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूतितः ।
सूनाचक्रध्वजवतां वेशेनैव च जीवताम् ॥८४

पतित, चाण्डाल, पुल्कस मूर्ख धन के मद से गर्व में भरे अन्त्यजों और उनसे व्यवहार रखने वालों के साथ सम्पर्क न रखे। शूद्र को मति, जूठन या हवि का शेषान्न न दे और उसे धर्म या व्रत का भी उपदेश न दे ! जो शूद्र का धर्म व्रत का उपदेश करता है वह उसी के साथ असंवृत संज्ञक अन्धकार युक्त नरक में पड़ता है। दोनों हाथों से सिर न खजावे उच्छिष्ट मुख से सिर का स्पर्श न करे और स्नान करते समय पहिले सिर धोवे केशों से किसी के सिर पर प्रहार न करे। सिर सहित स्नान के पश्चात् किसी अंग में तेल न लगावे। अक्षत्रिय से उत्पन्न राजा से दान ले पशु मांस बेचने वाले तेली, कलाल और रूप द्वारा आजीविका करने वाले से भी दान न ले ॥७९-८४॥

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥८५

दश सूनासहस्राणि यो वाहयति सौनिकः ।
तेन तुल्यः स्मृत राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ।।८६
यो राज्ञ प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ।
स पर्यायेण यातीमन्नरकानेकविंशतिम् ।।८७
तामिस्त्रमंधतामिस्त्रं महारौरवरौरवौ ।
नरकं कालसूत्र च महानरकमेव च ।।८८
संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम् ।
संहातं च सकाकोलं कुड्मलं प्रतिमूर्तिकम् ।।८९
लोहशंकुमृजीषं च पन्थानं शाल्मली नदीम् ।
असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेव च ।।९०

दस वाधको के समान एक तेली दस तेलियो के समान एक कलाल दस कलालों के समान एक रूपाजीवी एवं दस रूपाजीवियों के समान एक राजा होता है। अक्षत्रिय राजा दस हजार जीवों की हिंसा करने वाले वधिक के समान होता हैं, अतएव उसका दान भी भयंकर होता है। कृपण एवं शास्त्रानुकूल कार्य न करने वाले राजा से दान लेने वाला क्रम से इक्कीस नरकों में पड़ता है। तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव रौरव, कालसूत्र, महानरक, संजीवन, महावीचि, तपन, सप्रतापन संहात सकाकोल, कुड्मल, प्रतिमूतिक, लोहशंकु, ऋजीष, पन्था, शाल्मली, वैतरणी, असिपक्षवन और लोहदारक-यह इक्कीस नरक हैं।८५-९०।

एतद्विदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणाः ब्राह्मवादिनः ।
न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति प्रेत्य श्रेयोऽभिकांक्षिणः ।९१
ब्राह्म मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ।।९२

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः
पूर्वां संन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ॥९३
ऋषयो दीर्घसंध्यत्वादीर्घमायुरवाप्नुयुः ।
प्रज्ञां यशश्च कीर्ति च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥४९
श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि
युक्तश्छन्दाँस्यधीयीत मसान्विप्रोऽर्धपंजमान् ॥९५
पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः ।
माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥९६

कर्मनिष्ठ एव ब्रह्मवादी विद्वान् तथा जन्मान्तर में श्रेय की आकांक्षा रखने वाले ब्राह्मण राजा का दान ग्रहण नहीं करते। सूर्योदय से पूर्व जाग कर धर्म-अर्थ का चिन्तन करे, उसके निमित्त जो क्लह देह को होता है। उसका, तथा वेद के तत्वार्थ का भी विचार करे। फिर उठ कर आवश्यक कृत्य शौचादि से निवृत्त होकर समाहित चित्त से प्रातःकालीन सन्ध्या और मंत्र-जप करे तथा सायंकालीन सध्या यथा समय करता हुआ चिर-काल तक गायत्री का जप करे। दीर्घ काल तक सन्ध्या आदि करने से ही ऋषिगण प्रज्ञा, यश कीर्ति और ब्रह्मवर्चस्व को प्राप्त होते थे। श्रावण-भादों की पूर्णिमा को यथाविधि उपाकर्म करके साढ़े चार मास तक वेदाध्ययन करना चाहिए। फिर पुष्य नक्षत्र में ग्राम से बाहर वेदों का उत्सर्जन करे अथवा माघ शुक्ल की प्रतिपदा के पूर्वाह्न में करे ॥९१-९६॥

यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः ।
विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं तदेवैकमहर्निशम् ॥९७
अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियमः पठेत् ।
वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥९८

नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसंनिधौ ।
न निशांते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् ॥९९
यथोदितेन विधिना नित्थं छन्दस्कृतं पठेत् ।
ब्रह्म छन्दस्यकृतं चैवं द्विजो युक्तो ह्यनापदि ॥१००
इमान्नित्यमनध्यायनधीयानो विवर्जयेत्।
अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥१०१
कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसुसमूहने ।
एतौ वर्षास्वनध्यायावध्यायज्ञाःप्रचक्षते ॥१०२

शास्त्र विधि से ग्राम से वेद का का उत्सर्ग करके दो दिन के मध्य की रात्रि में अनध्याय रखे । तत्पश्चात् शुक्ल पक्ष में एकाग्र चित्त से वेदपाठ करे। तथा कृष्णपक्ष में वेदांगों का अध्ययन करे। स्वर-वर्णादि के स्पष्ट उच्चारण के बिना अथवा शूद्रों के निकट वेदपाठ न करे । रात्रि के पिछले पहर में वेदाध्ययन करके परिश्रान्त होने पर शयन न करे । गायत्री आदि छन्दों से युक्त मन्त्रों का यथाविधि नित्य पाठ करे तथा निरापद अवस्था में ब्राह्मण और मत्र दोनों का अध्ययन करे। विधि सहित नित्य वेदाध्ययन करने या शिष्यों को वेद पढ़ाने वाला अध्याय न करे। अध्यापन में विज्ञ मुनियों का कथन है कि वर्षा ऋतु में रात्रि के समय वायु चलने का शब्द सुनाई दे और दिन में धूल के साथ वायु चले तो वे दोनों रात्रि दिन अनध्याय के माने जाते हैं ॥९७-१०२॥

विद्युत्स्तनितवर्षेषु महाल्कानां च संप्लवे ।
आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् ॥१०३
एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु ।
तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥१०४

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ।
एतानांकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ॥१०५
प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिःस्वने ।
सज्योतिः स्यादनध्यायःशेषे रात्रो यथा दिवा ॥१०६
नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च ।
धर्मनैपुण्यकामनां पूतिगन्धे च सर्वदा ॥१०७
अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ ।
अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥१०८

यदि विद्युत के गर्जने और दमकने के साथ वर्षा हो रही हो घोर उल्कापात हो रहा हो, इस समय भी मनु ने अनध्याय ही कहा हैं। सन्ध्याकाल में होम के लिए अग्नि प्रज्वलित करते यदि बिजली और मेघ गर्जे तो भी अनाध्याय समझे तथा अन्य ऋतु में अग्नि प्रज्वलित होने के समय बादल घिरे दिखाई देने पर अनध्याय माना जाता है । दिशाओं का गर्जन, भूकम्प, ग्रह और तारों को परस्परा भिड़न्त होने के समय वर्षाऋतु आका लिक अनध्याय माना गया है। प्रातःकालीन सन्ध्या के समय होम के लिए अग्नि प्रज्वलित करने पर विद्युत के साथ मेघ का गर्जन हो तो सज्योति अनध्याय अर्थात् सूर्य के प्रकट होने तक का अनध्याय होता है और सायंकाल में ऐसा हो तो नक्षत्रों के प्रकट होने तक अनध्याय माने । धर्माभिलाषियों के लिए ग्राम, नगर या दुर्गन्ध वाले स्थानों में सदा अनाध्याय रहता है । ग्राम में शव पड़ा हो समीप में अधार्मिक व्यक्ति हो या जहाँ भीड़-भाड़ हो वहाँ भी अनध्याय युक्त है ॥१०३-१०८॥

उदके मध्यरात्रौ च विण्मूत्रस्य विसर्जने ।
उच्छिष्टः श्राद्धभुक्चैव मनसापि न चिन्तयेत् ॥१०९

प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् ।
त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥११०
यावदेकानुदिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति ।
विप्रस्य विदुषो देहे तावद्ब्रह्म न कीर्तयेत् ॥१११
शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् ।
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥११२
नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोरेव चोभयोः ।
अमावस्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च ॥११३
अमावस्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी ।
ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥११४

जल में, मध्य रात्रि में, मलमूत्र-त्याग के समय, उच्छिष्ट मुख तथा श्राद्ध में भोजन करके वेद का चिन्तन मन से भी न करे। श्राद्ध का निमन्त्रण स्वीकार करके विद्वान् द्विज तीन दिन पर्यन्त तथा राजा से सम्बन्धित अशौच में या ग्रहण के अवसर पर भी तीन दिन तक अनध्याय रखे। विद्वान् विप्र शरीर में जब तक श्राद्ध की गधं या लेप रहे तब तक अनध्याय रखे। लेटे हुए पाँव पर पाँव रखे, हुए घुटनों के बल बैठे हुए एव अपवित्र अन्न या मांस खाकर वेदपाठ न करे। धूल उड़ रही हो या बाण का शब्द हो रहा हो तब प्रातः सायं सन्ध्या के समय तथा अमावस, चतुदशी, पूर्णिमा और अष्टमी में अनध्याय रखे। अमावस गुरु का और चतुर्दशी शिष्य का हनन करती हैं तथा पूर्णिमा और अष्टमी पढ़े हुए का विस्मृत करतो है अतः उक्त तिथियों में भी वेदाध्ययन करे ।१०९-११४।।

पांसुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा ।
श्वखरोष्ट्रे च रुवति पङ्क्तौ च न पठेद्द्विजः ॥११५

नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा ।
वसित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥११६
प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किंचिच्छ्राद्धिकं भवेत्।
तदालभ्याप्यनध्यायःपाण्यास्यो हि द्विजःस्मृतः ॥११७
चोरैरुपप्लुते ग्रामे संभ्रमे चाग्निकारिते ।
आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च ॥११८
उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् ।
अष्टका सु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥११९
नाधीयीताश्वमारूढो न वृक्षं न च हस्तिनम् ।
न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः ॥१२०

धूलि-वर्षा तथा दिशा दाह हो रहा हो शृगाल श्वान और ऊँट ऊँचे स्वर से बोलते हों,उस समय भी अनध्याय रखे। श्मशान या ग्राम के निकट, गौशाला में या रतिशाला में पहने हुए वस्त्र पुनः पहनकर और श्राद्धिक दान लेकर वेद न पढ़े। श्राद्धिक दान सजीव अर्थात् गौ-अश्वादि का हो या निर्जीव अर्थात् वस्त्राभूषण आदि का हो उसके ग्रहण करने पर अनध्याय करे, क्योंकि ब्राह्मण का हाथ ही मुख कहा गया है। ग्राम में चोरों के उपद्रव अग्नि से गृहदाहादि तथा अद्भुत संकट की अवस्था में आकालिक अनध्याय होता हैं। उपाकर्म और उत्सर्ग में तीन अहोरात्र तथा मार्गशीर्ष पूर्णिमा के पश्चात् कृष्णपक्ष की अष्टमी एवं ऋतु समाप्ति की अन्तिम रात्रियों में भी एक अहोरात्र वेद न पढ़े। अश्व, गज, गधा, ऊँट नाव, वृक्ष, ऊसर भूमि और रथ पर बैठ कर वेद न पढ़े ॥११५-१२ ॥

न विवादे न कलहे न सेनायां न संगरे ।
न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न शुक्तके ॥१२१

अतिथिं चाननुज्ञाप्य मारुते वाति वा भृशम् ।
रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥१२२

सामध्वनावृग्यजुषी नाधीयीत कदाचन ।
वेदस्याधीत्य वाप्यन्तमारण्यकमधीत्य च ॥१२३
ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः ।
सामवेदः स्मृतःपित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥१२४

एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ।
क्रमतः पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयते ॥१२५
पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः ।
अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहर्निशम् ॥१२६

किसी के विवाद, कलह, सेना के मध्य या युद्ध में तथा भोजनोपरान्त अजीर्ण होने पर, वमन करने पर या खट्टी डकार आने पर वेद न पढ़ं । अतिथि की अनुज्ञा बिना, वायु की तीक्ष्ण गति में देह से रक्तपात होनें या शस्त्र से कट जाने पर वेद पाठ न करे ।समावेद की ध्वानि होरही हो तब ऋग्वेद या यजुर्वेद का पाठ न करें। किसी वेद या अण्यक के पाठ के पश्चात् उस दिन रात में पुनः वेद न पढ़ें । ऋग्वेद के देवता देव, ययुर्वेद के मनुष्य और सामवेद के पितर हैं, इसलिए सामवेद की ध्वनि अशुचि मानी गई है । उक्त वेदत्रय के देवताओं को जानकर प्रथम व्याहृतियुक्त गायत्री का क्राम पूर्वक अभ्यास कर लेने पर भी वेदाध्ययन करे । पशु मेंढक, बिल्ली, कुत्ता, सर्प, तो एक अहोरात्र का अनध्यय रखे ॥१२१-१२६॥

द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः ।
स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धामात्मानं चाशुचिं द्विजः ॥१२७

अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥१२८
न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ।
न वासोभिः सहाजस्रं नाभिज्ञाते जलाशये ॥१२९
देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा ।
नाक्रामेत्कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ॥१३०
मध्यंदिनेऽर्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषम् ।
संध्ययोरुभयोश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् ॥१३१
उद्वर्तनमपस्नानं विण्मूत्रे रक्तमेव च ।
श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामतः॥१३२

स्वाध्याय भूमि और अपना शरीर यदि पवित्र न हो तो भी वेद न पढ़े और इन दोनों अनध्यायों में कभी अध्ययन न करे । स्नातक द्विज अमावस, पूर्णिमा और चतुर्दशी में ऋतुकाल होने पर भी स्त्री से दूर रहे। भोजन करने पर या रोगी होने पर स्नान न करे, रात्रि के द्वितीत तृतीत पहर में अधिक वस्त्रों के सहित और बिना जाने जलाशय में स्नान न करे । देवता, गुरु, राजा, स्नातक, आचार्य, अग्नि और दीक्षित की छाया को न लाँघे । दिन के मध्य या अर्द्ध रात्रि में तथा प्रातः और सायंकाल आमिष युक्त श्राद्धान्न खा कर चौराहे पर न जाय। उबटन का मल, स्नान का जल, मल, मूत्र, रक्त, कफ, थूक एवं वमन आदि के पास खड़ा न रहे ॥१२९-१३२॥

वैरिणं नोपसेवेत सहायं चैव वैरिणः ।
अधार्मिकं तस्करं च परस्यैव च योषितम् ॥१३३

न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥१३४

क्षत्रियं चैव सर्पं च ब्राह्मणं च बहुश्रुतम् ।
नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदाचन ॥१३५

एतत्त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम् ।
तस्मादेतत्त्रयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ॥१३६

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आमृत्योःश्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥१३७

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥१३८

शत्रु, शत्रु के सहायक, अधार्मिक, तस्कर और परनारी के संग न रहे । परनारी के संग के समान और कोई पाप संसार में नहीं है जो पुरुष की आयु को क्षीण करता हो । क्षत्रिय, सर्प और वेदपाठी बलहीन हो तो भी अपने हित का आकाँक्षी पुरुष उसका अपमान न करे । क्योंकि यह तीनों ही अपमान करने वाले को भस्म करते हैं इसलिए बुद्धिमान् इनका तिरस्कार कभी न करें। समृद्धि की प्राप्ति प्रयत्न करने पर भी न हो तो स्वयं को तिरस्कृत न करें, किन्तु मरण पर्यन्त लक्ष्मी को दुर्लभ न मान कर उसे पाने का उद्योग करता रहे । सत्य बोले, प्रिय बोले, अप्रिय सत्य न बोले, किन्तु असत्य प्रिय भी न बोले, यही सनातन धर्म है ॥ १३३-१३८॥

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत् ।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह ॥१३९

नातिकल्यं दोतिसायं नातिमध्यदिने स्थिते ।
नाज्ञातेन समं च छेन्नकी न वृषलः सहः ॥१४०
हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोधिकान् ।
रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥१४१
न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ।
न चापि पश्येदशुचिःसुस्थो ज्योतिर्गणान्दिवि ॥१४२
स्पृष्टवैतानशुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानुपस्पृशेत् ।
गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु ॥१४३
अनातुरः स्वानि खानि नस्पृशेदनिमित्ततः ।
रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत् ॥१४४

अभद्र को भी भद्र शब्दों में कहे निरर्थक वैर या विवाद न करे। अत्यन्त प्रातः अत्यन्त सायं और अत्यन्त दुपहरी में अपरिचित्त या अधार्मिक व्यक्तियों के साथ अकेला न जाय। अंगहीन, अधिक अंग, विद्याहीन, रूपहीन, द्रव्यहीन और जातिहीन के दोषों को कह कर अपमानित न करे। उच्छष्ट मुख गो ब्राह्मण और अग्नि का स्पर्श हाथ न से करे, स्वस्थ या अपवित्र अवस्त्र में आकाशस्थ ग्रह नक्षत्रों को न देखे। किसी अपवित्र अवस्था वाले का स्पर्श होने पर आचमन करे तथा शरीर के सब अंग एवं नाभि आदि का हाथ में जल लेकर स्पर्श करे स्वस्थ अवस्था में इन्द्रियों के छिद्र और गुप्त स्थान के रोमों का अकारण स्पर्श न करे ॥१३९-१४०॥

मङ्गलचारयुक्तः स्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ।
जपेच्चजुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः ॥१४५
मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम् ।

जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते ॥१४६

वेदमेवाभ्यसंन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥१४७
वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च ।
अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥१४८
पौर्विकीं समस्मरञ्जातिं ब्रह्मवाभ्यसते पुनः
ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तं सुखमश्नुते ॥१४९
सावित्राञ्छान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः ।
पितॄंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च ॥१५०

श्रेष्ठ आचरण एवं पवित्र हृदय वाला जितेन्द्रिय पुरुष प्रमाद-रहित रूप से गायत्री जप एवं हवन करें। जो शुभ आचरण वाले प्रयतात्मा पुरुष नित्य जप हवन करते हैं उनके लिए कोई उपद्रव नहीं होता। नित्य यथा समय निरालस्य रूप से वेदपाँठ करें, ब्राह्मण का यह मुख्य धर्म और शेष सब उपधर्म कहे हैं। वेदाभ्यास पवित्रता तप और अहिंसा से पूर्वजन्म की जाति का स्मरण होता है। पूर्व जन्म को जाति का स्मरण होने पर भी जो नित्य वेदाभ्यास करता है, वह उसके प्रभाव से अनन्त सुख को पाता है। पूर्णकाल में नित्य प्रति अनिष्ट की निवृत्ति के लिए शान्त होम करें वैसे ही अष्टका और अन्वष्टका में पितरों का श्राद्ध करें ॥१४५-१५०॥

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।
उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत् ॥१५१
मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम् ।
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ॥१५२
दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ।
ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरुनेव च पर्वसु ॥१५३

अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥१५४

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु ।
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥१५५

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥१५६

अग्निशाला से दूर जाकर मलमूत्र उच्छिष्ट अन्न एवं गर्भाधान करे अथवा पादप्रक्षालन करे । शौच, अभ्यंग, दन्ताधावन स्नान, अंजल और दवपूजन पूर्वाह्न में हो करे । अपनी रक्षा के लिए देवता, धार्मिक ब्राह्मण, गुरु और राजा का दर्शन पूर्वकाल में करे । घर पर आये हुए वृद्ध पुरुषों का उठकर अभिवादन करे बैठने को आसन दे तथा अंजलि बाँध कर सम्मख खड़ा रहे और जब वे जाय तब उनके पीछ दूर तक चले । स्वकर्म में सम्यक रूप स युक्त एवं धर्म के मूल रूप श्रुत-स्मृति सम्मत सदाचारों को प्रमाद रहित होकर पाले । आचार से आयु इच्छित सन्तान और अक्षन धन की प्राप्ति तथा अशुभ लक्षणों का क्षय होता है ॥१५१-१५६॥

दुराचारो हि पुरुष लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥१५७

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥१५८

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥१५९॥

सर्वं परवशं दुःख सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥१६०

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषांऽन्तरात्मनः ।
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥१६१

आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम् ।
न हिंस्याद्ब्राह्मणान्गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ॥१६२

दुराचारी पुरुष लोक में सदा निन्दित दुःखभागी, रोगी और अल्पायु वाला होता है। सर्वलक्षणहीन भी जो सदाचार और श्रद्धालु पुरुष परनिन्दा नहीं करता, वह सौ वर्ष जीवित रहता है। पराधीनता वाले कार्यों को त्याग दे और अपने अधीन कार्यों को यत्न पूर्वक करे। पराधीन कार्य दुःखदायी और स्वाधीन कार्य सुखदायी होते हैं, सुख-दुःख का यही लक्षण है। जिसे करने पर आत्मा को संतोष हो, उसे अवश्य करे और जिसे करने पर असंतोष हो उसे त्याग दे। आचार्य प्रवक्ता पिता माता, गुरु, ब्राह्मण गौ और तपस्वी को हिंसित न करे ॥१५९-१६२॥

नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ।
द्वेषं दम्भं च मानञ्च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत् ॥१६३

परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैव निपातयेत् ।
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्ट्यर्थं ताडयेत्तु तौ ॥१६४

ब्राह्मणायावगुर्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया ।
शतं वर्षाणि तामिस्रे नरके परिवर्तते ॥१६५

ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम् ।
एकविंशतिमाजातीः पापयोनिषु जायते ॥१६६

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृगङ्गतः ।
दुःखं सुमहदाप्नोति प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥१६७

शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतलात् ।
तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते ॥१६८
न कदाचिद्द्विजे तस्माद्विद्वानवगुरेदपि ।
न ताडयेत्तृणेनापि न गात्रात्स्रावयेदसृक् ॥१६९

नास्तिकता, वेद-देव निन्दा द्वेष दम्भ, अभिमान, क्रोध एवं क्रूरता को त्याग दे। दूसरे पर क्रुद्ध हो कर मारने के लिए लाठी न उठावे किन्तु पुत्र और शिष्य को शिक्षा के लिए अवश्य ताड़ित करे । द्विजाति को मारने के उद्देश्य से क्रुद्ध होकर लाठी उठाने वाला सौ वर्ष तक तामिस्र नरक में भ्रमता है । जो क्रोधपूर्वक जान कर एक तिनके से भी ब्राह्मण पर प्रहार करता है वह इक्कीस बार पाप योनियों में उत्पन्न होता है । जो युद्ध न करने वाले ब्राह्मण के देह से रक्त बहाता है वह अपने अज्ञानवश मरने पर अत्यन्त दुःख उठाता है । ब्राह्मण के गिरे हुए लोहू से जितने मृत्तिका कण भीगते है उतने ही वर्ष वह रक्तपात करने वाला व्यक्ति परलोक में हिंसक जीवों द्वारा काटा जाता है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष ब्राह्मण पर कभी शस्त्र क्या, तृण भी न उठावे और उसके शरीर से रक्त न गिरावे ॥१६३-१६९॥

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥१७०
न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ।
अधार्मिकानां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ॥१७१
नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥१७२
यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु ।
न त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥१७३

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ।।१७४
सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ।।१७५

अधार्मिक, मिथ्यावादी, अनुचित रूप से धन कमाने वाले एवं हिंसारत मनुष्य इस लोक में भी सुखी नहीं रहते । अधार्मिकों एवं पापियों को शीघ्र नष्ट होता देख कर भी धर्माचरण में कष्ट पाता हुआ मनुष्य अधर्म में चित्त न लगावे । कृत पाप धरती में बोये हुए बीज के समान सद्यः फलप्रद नहीं होता, किन्तु धीरे। धीरे समय पाकर पाप करने वाले का का मूलनाश कर देता है। पाप का फल स्वयं को न मिले तो पुत्र पौत्रों को भोगना पड़ता है, क्योंकि वह निष्कल नही होता । अधर्म से जो वृद्ध कुछ समय की ही होती है. उससे सब प्रकार के ऐश्वर्य एवं विजय आदि प्राप्ति होने के पश्चात् समूल नाश होजाता है । सत्य, धर्म, सदाचार और शौच में सदैव लगा रहे, वाणी, बाहु और उदर को संयम में रखकर शिष्यों को धर्म की शिक्षा दे ।।१७४-१७५।।

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ।।१७६
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः ।
न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः ।।१७७
येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ।।१७८
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ।
बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ।।१७९

मातापितृभ्यां जामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया ।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ।।१८०
एतौर्विवादान्संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
एभिर्जितैश्च जयति सर्वांल्लोकानिमान्गृही।।१८१

अर्थ, काम और धर्म के विरुद्ध कार्यों को,छोड़ दे तथा दुःखद परिणाम वाले या लोक रीति के विरुद्ध धर्म कार्यों को भी न करे। व्यर्थ वस्तु को हाथ में न रखे निष्प्रयोजन न घूने नेत्रों को चंचल न रखो, अधिक न बोले कुटिल और अन्य को हानि पहुँचाने वाले कार्य न करे। पिता-पितामह के श्रेष्ठ मार्ग पा ही स्वयं भी चले, क्योंकि उससे पाप का भागी नहीं होना पड़ता। ऋत्विक् पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, आश्रितजन, जाब. वृद्ध, रोगी, वैद्य, जातिबान्धव, सम्बन्धी, पिता, जामाता, भ्राता, पुत्र, पत्नी पुत्री और दासवर्ग के लोगों से विवाद न करे। इनसे विवाद न करने वाला सब पापों से छूट जाता है और जो विवाद में नही पड़ता इन लोकों को पाता है।१ ६-१८१।

आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजात्ये पिता प्रभुः ।
अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चर्त्विजः ।।१८२
जामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः ।
सबन्धिनो ह्यपां लोके पृथिव्यां मातृमातलौ।१८३
आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्धकृशातुराः ।
भ्राता ज्येष्ठःसमः पित्रा भार्या पुत्रःस्वका तनुः।१८४
छाया स्वो दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम् ।
तस्मादेतैरधिक्षप्तः सहेतासंज्वरः सदा ।।१८५

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेण ह्यास्याशु ब्राह्मं तेजःप्रशाम्यति।।१८६
न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहें ।
प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा ।।१८७

आचार्य ब्रह्मलोक का, पिता प्राजापत्य लोक का, अतिथि इन्द्रलोक का, ऋत्विज् देवलोक का प्रभु होता है। भगिनी और पुत्रवधु अप्सरा लोक की, बाँधवगण वैश्वदेवलोक के, सम्वन्धी वरुण लोक के माता और मामा पृथिवीलोक के तथा बाल-वृद्ध-कृश और रोगी आकाश के प्रभु होते हैं। बड़ा भाई पिता के समान और स्त्री पुत्र तो अपना ही शरीर है। दासवर्ग अपनी छाया के समान तथा पुत्री परम दया की पात्री होती है इसलिए इनके द्वारा तिरस्कार होने पर भी मौन धारण कर ले। दान लेने में समर्थ होकर भी बार-बार दान लेने की इच्छा न करें, क्योंकि दान लेने से ब्रह्मतेज का लोप होजाता है। विपत्ति काल में क्षुधार्त होता हुआ भी तब तक द्रव्य-दान ग्रहण न करें, जब तक कि दान लेने के विधान को ठीक प्रकार से न जान ले ।।१८२-१८७।।

हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्धृतम् ।
प्रतिगृहणन्नविद्वांस्तु भस्मी भवती दारुवत् ।।१८८
हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् ।
अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाःप्रजाः ।।१८९
अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ।।१९०
तस्मादविद्वान्विभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात् ।
स्वल्पकेनाप्यविद्वान्हि पङ्के गौरिव सीदति ।।१९१

न वार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विजे ।
न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ॥१९२

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥१९३

स्वर्ण, भूमि, अश्व, गौ, अन्न, वस्त्र तिल और घृतादि का दान ग्रहण करने वाला मूर्ख ब्राह्मण काष्ठ के समान भस्मीभूत हो जाता है। स्वर्ण और अन्न आयु को, भूमि और गौ देहको, अश्व चक्षु को, वस्त्र त्वचा को, घी तेज को और तिल का लिया हुआ दान सन्तानों को भस्म करता है। तप तथा वेदविद्या से हीन दान ग्रहण करने वाला ब्राह्मण यजमान के साथ वैसे ही नरकमें जा डूबता है,जैसे कि जल में पाषाण-निमित्त नाव डूब जाती है। अतः थोड़ा दान लेने से भी डरे, अन्यथा पंक में फँसी गौ के समान मूर्ख ब्राह्मण कष्ट भोगता है। बैडालव्रतिक,बकव्रतिक और वेदज्ञान से रहित ब्राह्मण को धर्म के जानने वाला पुरुष जल न दे। उक्त तीनों में से किसी एक को धन देने से दाता और प्रतिग्रहीता दोनों ही परलोक में जाकर अनर्थ में पड़ते हैं ॥१८८-१९३॥

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥१९४

धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ।
बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसंधकः ॥१९५

अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥१९६

ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ।
ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा ॥१९७

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रत चरेत् ।
व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन्स्त्रीशूद्रदम्भनम् ।।१९८

प्रेत्येह चेदृशा विप्रा गर्ह्यन्तेब्रह्मवादिभिः ।
छद्मनाचरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति ।।१९९

अलिङ्गी लिङ्गिवेषण यो वृत्तिमुपजीवति ।
स लिङ्गिनां हरत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते ।।२००

जिस प्रकार पाषाण की नाव उतरने वाले को साथ लेकर डूब जाती है, वैसे ही मूर्ख दाता और प्रतिग्रहीता नरक में जो डूबते हैं। जो धर्मध्वजी परधन का लोभी, दंभी, वंचक, परनिन्दक और हिंसक होता है, वह वडालिक कहा जाता है। जो नम्रता प्रदर्शन के लिए नीची दृष्टि रखता हुआ भी क्रूर आचरण करता, स्वार्थसाधन में रत रहता तथा वक्रगतियुक्त कपट नम्रता प्रदर्शित करता, वह द्विज वकसादी है। वकव्रतिक और वैडालव्रतिक ब्राह्मण अपने पापकर्म के कारण अन्धतामिस्र में जा गिरते हैं। पाप करके उसे छिपाने के लिए व्रत रख कर स्त्री शूद्र आदि अज्ञानियों को भ्रमित न करे। क्योंकि ऐसा द्विजलोक-परलोकमें वेदवादियों द्वारा निन्दा पाते हैं। क्योंकि छलपूर्वक किए हुए व्रत का फल राक्षसोंको प्राप्त होता है। जो अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी जैसे चिन्ह धारणकर वृत्ति कमाता हुआ पाप संचय करता है, वह मरने पर तिर्यग्योनि को प्राप्त होता है ।।१९०-२००।।

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन ।
निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ।।२०१

यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च ।
अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ।।२०२

नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरासु च ।
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च ॥२०३
यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ।
यमात्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥२०४
नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा ।
स्त्रिया क्लीबेन च हुते भुञ्जीतब्राह्मणःक्वचित् ॥२०५
अश्लीकमेतत्साधूनां यत्र जुह्वत्यमी हविः ।
प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥२०६

अन्य द्वारा निर्माण कराते हुए जलाशय में स्नान न करे, क्योंकि उससे निर्माण कराने वाले के पापों का अंशभागी होना पड़ता है। यान, शय्या, आसन, कूप, उद्यान और घर का उपयोग, दिये बिना ही करने वाले व्यक्ति दाताके पाप का चतुर्थांश भोगते हैं। नदी, देवकुण्ड, तड़ाग, सरोवर आदि में नित्यप्रति स्नान करे। नियमों का नित्य पालन न कर सके तो भी यमोंका सदैव सेवन करे। क्योंकि नियम पालन यदि यम न करे तो पतित हो जाता है। अश्रोत्रिय, मूर्ख, स्त्री, नपुंसक या अन्य। व्यक्तियों द्वारा जिस यज्ञ का अनुष्ठान किया गया हो उस यज्ञ में ब्राह्मण को कभी भोजन नहीं करना चाहिए। उक्त स्त्री आदि द्वारा किया गया यज्ञ अहितकर एवं देवताओं के प्रतिकूल होने के कारण वर्जित है ॥२०१-२०६॥

मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन ।
केशकीटावपन्नं च पदा स्पृष्टं च कामतः ॥२०७
भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं चाप्युदक्यया ।
पतत्रिणावलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च ॥२०८

गवा चान्नमुपाघ्रातं घुष्टान्नं च विशेषतः ।
गणान्नं गणिकान्नं च विदुषां च जुगुप्सितम् ॥२०९
स्तेनगायनयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्धुषिकस्य च ।
दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडस्य च ॥२१०
अभिशस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च ।
शुक्तं पर्युषितं चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ॥२११
चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः ।
उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्याचान्तमनिर्दशम् ॥२१२

मत्त, क्रुद्ध और रोगियों का अन्न सेवन न करे तथा केश युक्त एवं कृमियुक्त या जानबूझ कर पैरोंसे खुदा हुआ अन्न भी न खाय। भ्रूण हत्यारे द्वारा देखा हुआ, रजस्वला या श्वान द्वारा स्पर्शित, अथवा काकादि पक्षियों द्वारा उच्छिष्ट अन्न भी त्याज्य है। गौ द्वारा सूंघा हुआ, पूछ कर दिया जाने वाला, शठों का ब्राह्मणों के गणों का और वेश्या का अन्न निन्दित होने के कारण असेवनीय है। चोर, गायक, बढ़ई, ब्याजखोर, या हवन से पहिले दीक्षित का तथा कृपण और बद्ध पुरुष का अन्न न खाय। अभिशस्त, नपुंसक, व्याभिचारिणी स्त्री और दाम्भिकका तथा बासी अन्न एवं सिरका या शूद्र का झूठा अन्न न खाय। चिकित्सक, शिकारी और क्रूर व्यक्ति का उच्छिष्ट तथा उग्रकर्मा का या सूतिका के लिए बनाया हुआ अन्न न खाय। यदि पंक्ति में साथ के किसी व्यक्ति ने आचमन कर लिया हो या अपवित्र अन्न हो तो उसे भी न खाय ॥२०७-२१२॥

अनार्चितं वृथामांसवीरायाश्च योषितः ।
द्विषदन्नं नगर्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम् ॥२१३

पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा ।
शैलूषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥२१४

कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च ।
सुवर्णकर्तु र्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा ॥२२५

श्ववतां शौण्डिकानां च चैलनिर्णेजकस्य च ।
रञ्जकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥२१६

मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः ।
अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च ॥२१७

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ।
आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः ॥२१८

असम्मान पूर्वक दिया हुआ अन्न, दूषित माँस, पुत्रहीना का, शत्रु का, नगर में प्राप्य पतित का या जिस पर किसी ने छीक दिया हो उस अन्न को न खाय। चुगलखोर, मिथ्यावादी, यज्ञ-विक्रयी, नट, दर्जी और कृतघ्न का अन्न भी सेवन न करे। लोहार, केवट, रंगरेज, स्वर्णकार, बाँस और शस्त्र विक्रेता का अन्न न खाय। श्वान-पालक, मद्यविक्रेता, रजक, रंगरेज, नृशंस या उपपति वाली स्त्री के घर का अन्न भी न खाय। पत्नी का उपपति जानकर भी जो पति घर में रहे या जो स्त्री के वशीभूत हो उस गृहस्थ के घरका या मृतक अशौचका अथवा अतृप्तिकर अन्न का सेवन न करे। राजा का अन्न तेज को, शूद्र का ब्रह्मतेज को, सुनार की आयु को और चर्मकार का अन्न यश को क्षीण करती है ॥२१३-२१८॥

कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च ।
गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति ॥२१९

पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् ।
विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् ॥२२०
य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाःक्रमणः परिकीर्तिताः ।
तेषां त्वगस्थिरोमाणि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥२२१
भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममन्या क्षपणं त्र्यहम् ।
मत्या भुक्त्वाचरेत्कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च ॥२२२
नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः ।
आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम् ॥२२३
श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्धुषेः ।
मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥२२४

सूपकार का सन्तति को, रजक का बल को तथा गण एवं गणिका का अन्न परलोक को नष्ट करता है। चिकित्सक का अन्न पूय के समान, पुंश्चली का वीर्य के समान, सूदखोर का विष्ठा के समान तथा शस्त्र विक्रेताका अन्नमल के समान होता है। इतनों का अन्न सेवन निषिद्ध कहा गया है तथा जिन अन्यान्य व्यक्तियों का अन्न सेवनीय हैं, उनका अन्न चर्म, अस्थि और रोम के समान है, यह मनीषियों का मत है। इस लिए उनका अन्न अनजाने में खाले तो तीन दिन का उपवास तथा जानकर खाये तो कृच्छ्रव्रत करे। वीर्य एवं मलमूत्र खाने पर भी यही प्रायश्चित्त है। विद्वान्द्विज श्राद्ध के अधिकारी से रहित शूद्र का पका अन्न सेवन न करे। यदि खाद्यवस्तु का अभाव हो तो उससे एक रात्रि के खाने योग्य अपक्व अन्न ग्रहण करले। कृपण श्रोत्रिय और सूदखोर दानी के गुण-दोषों का विवेचन कर देवगण ने उनके अन्न को समान बताया है ॥२१९-२२०॥

तान्प्रजापतिराहैत्य मा कुध्वं विषमं समम् ।
श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ।।२२५

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ।।२२६

दानधर्मं निषेवेत नित्यमष्टिकपौतिकम् ।
परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ।।२२७

यत्किंचिदपि दातव्थं याचितेनानसूयया ।
उत्पत्स्यते हि उत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ।।२२८

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षुय्यमन्नदः ।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ।।२२९

भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानी रूप्यदो रूपमुत्तमम् ।।२३०

तब ब्रह्मा उन देवगण से बोले —इन विषम अन्नों को समान मत बताओ क्योंकि दानी द्वारा श्रद्धा से दिया हुआ अन्न पवित्र और कृपण द्वारा अश्रद्धा पूर्वक दिया हुआ, अन्न अपवित्र होता है। इसलिए इष्ट-पूर्त कर्मो को नित्य निरालस्य रह कर श्रद्धा पूर्वक करे। क्योंकि वैधोपाय से अर्जित धन से श्रद्धा पूर्वक किये गये कर्म मोक्ष प्राप्त कराते हैं। इष्ट-पूर्त विषयक दान धर्म प्रसन्न मन से यथाशक्ति सत्पात्र देख कर करे। याचना करने पर श्रद्धा पूर्वक यथाशक्ति दे, क्योंकि दान देने वालेके पास कभी सब पापों से तारने वाला पात्र भी आ सकता है। प्यासे को जल देने वाला तृप्ति, क्षुधात को अन्न देने वाला अक्षय सुख, तिल देने वाला इच्छित सन्तान और दीपदान करने वाला श्रेष्ठ नेत्र पाता है। भूमिदाता भूमि, स्वर्णदाता दीर्घ आयु,घर देने वाला श्रेष्ठ भवन

और रजत दान करने वाला सुन्दर रूप प्राप्त करता है ॥२२५-२३०॥

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।
अनडुद्दः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥२३१

यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ।
धान्यदःशाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम् ॥२३२

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम् ॥२३३

येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ।
तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥२३४

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च ।
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥२३५

न विस्मयेत तपसा वदेदिष्ट्वा च नानृतम् ।
नार्तोऽप्यपवदेद्विप्रान्न दत्त्वा परिकीर्तयेत् ॥२३६

वस्त्रदाता, चन्द्रलोक, 'अश्वदाता, अश्विलोक, वृषभदाता लक्ष्मी और गौ-दाता सूर्यलोक पाता है। रथ या शय्या दाता भार्या, अभयदाता ऐश्वय अन्नदाता शाश्वत सुख और वेदशिक्षक ब्रह्म के समान गति प्राप्त करता है। जल,अन्न, धेनु, भूमि, वस्त्र, तिल, स्वर्ण और घृतादि सब से बढ़ कर ब्रह्मविद्या का दान है। जिस-जिस भाव से, जिस-जिस फल की अभिलाषा करता हुआ जो-जो वस्तु दान करता है, उस उस वस्तु को उसी उसी भाव से जन्मान्तर में ससम्मान प्राप्त करता है। आदर पूर्वक दान देने और लेने वाले दोनों ही स्वर्ग में तथा इसके विपरीत नरक में जाते हैं। तप करके विस्मय न करे, यज्ञ करके मिथ्या न बोले

ब्राह्मण द्वारा पीड़ित होकर भी उसकी निन्दा न करे और दान करके उसकी प्रसिद्धि न करे ।।२३१-२३६।।

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ।
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परकीर्तनात् ।।२३७

धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ।।२३८

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ।।२३९

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ।।२४०

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ।।२४१

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः ।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ।।२४२

मिथ्या भाषण से यज्ञ, विस्मय से तप, विप्रनिन्दा से आयु और लोगों के समक्ष कहने से दान नष्ट होता है । परलोक बनाने की इच्छा वाला व्यक्ति सर्व जीवोंको अपीड़ित रखता हुआ यथा-शक्ति शनैः शनैः वैसे ही धर्म संचय करे, जैसे कि दीमक मिट्टीको भीत खड़ी कर देती है । परलोक में माता पिता, पुत्र स्त्री, बान्धव आदि कोई भी सहायक नहीं होता, केवल धर्म ही काम आता है । यह जीव एकाकी आता, जाता और एकाकी ही पुण्य-पाप का फल प्राप्त करता है । मृत देह को काष्ठ और ढेले के समान भूमि पर पड़ा छोड़कर बान्धवगण मुख फेर कर चले जाते हैं, किन्तु धर्म उसके पीछे-पीछे हो गमन करता है । इसलिए

सदैव धर्म का शनैः शनैः संग्रह अपनी सहायता हेतु करे, जिससे कि दुस्तर तम से पार हो सकता है ।।२३७-२४२।।

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्विषम् ।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ।।२४३

उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं संबन्धानाचरेत्सह ।
निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् ।।२४४

उत्तमानुत्तमान्गच्छन्हीनान्हीनांश्च वर्जयन् ।
ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ।।२४५

दृढकारो मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ।।२४६

एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाभयदक्षिणाम् ।।२४७

आहृताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् ।
मेने प्रजापतिर्ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः ।।२४८

जिसका तप के द्वारा पाप नष्ट हो चुका उस धर्मप्रधान तपस्वी को धर्म ही ब्रह्मलोक में पहुँचता है। अपनी वंश-वृद्धि का अभिलाषा पुरुष श्रेष्ठ कुल, शील, विद्या एव आचरण वालों के साथ संबंध रखे, नीच व्यक्तियों के साथ नहीं। हीन के संबंध का त्याग कर श्रेष्ठ पुरुषोंसे सम्बन्ध करने वाला श्रेष्ठ हो होजाता है, किन्तु इसके विपरीत करने वाला नीचता को प्राप्त होता है। दृढ़, मृदु, दान्त, क्रूरकर्माओं के संग से दूर रहने वाला तथा किसी को दुःख न देने वाला व्रती अपने संयम और दान से स्वर्ग पर भी विजय पा लेता है। काष्ठ, जल, मूल, फल कच्चा अन्न, मधु, अभय एवं दक्षिणा यदि कोई बिना माँगे दे तो ग्रहण

करले ; लाई हुई, समक्ष रखी हुई, अयाचिता और पहिले से न सुनी हुई भिक्षा पापी भी दे तो उससे ले ले, क्योंकि प्रजापति इसे ग्राह्य मानते है ॥२४३-२४८॥

नाश्नन्ति पितरस्तस्य दश वर्षाणि पञ्च च ।
न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥२४९

शय्यां गृहान्कुशान्गन्धानपः पुष्पं मणीन्दधि ।
धाना मत्स्यान्पयो मांसं शाकं चैव न निर्नुदेत् ॥२५०

गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन्देवतातिथीन् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥२५१

गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तैर्गृहे वसन् ।
आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्गृह्णीयात्साधुतःसदा ॥२५२

आर्धिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥२५३

यादृशोऽस्य भवेदात्मा यादृशं च चिकीर्षितम् ।
यथा चोपचरेदेनं तथात्मानं निवेदयेत् ॥२५४

उस भिक्षा का निरादार करने वाले के पितर उसके द्वारा प्रदत्त काव्य का भक्षण पंद्रह वर्ष तक नहीं करते और न अग्नि ही उसका हव्य देवताओं के पास पहुँचाते हैं। शय्या, घर, कुश गंध, जल, पुष्प, मणि, दधि, धान, मत्स्य, मांस शाक, दुग्ध यदि कोई माँगे बिना ही दे तो न ठुकरावे। गुरुजनों और सेवकों के पाषणार्थ एवं अतिथियों और देवताओं के अर्चनार्थ दान तो सब से ले, किन्तु स्वयं उस दान का उपभोग न करे। गुरुजनोंके जीवित न रहने, या जीवित रहने पर भी उनसे अलग रहने वाला व्यक्ति अपनी आजीविका रूप दान सज्जन से ही ले। खेत जोतने वाला

अपने कुल का सखा, गोपालक, दास, नाई एवं आत्मसमर्पक आदि शूद्रों का अन्न सेवन करना दोष-रहित है। उक्त शूद्रों का आत्मा जैसी हो अथवा जो करने का विचार हो या जैसे सेवा करना चाहता हो, वैसे ही शुद्ध भाव से पहिले ही आत्मसमर्पण कर दे ।।२४६-२५४।।

योऽन्यथा सन्तामात्मानमन्यथा सत्सु भाषते ।
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः ।।२५५
वाच्यार्था नियदाःसर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ।
तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ।।२५६
महर्षिपितृदेवानां गत्वानृण्यं यथाविधि ।
पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थमाश्रितः ।।२५७
एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः ।
एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोधिगच्छति ।।२५८
एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती ।
स्नातकव्रतकल्पश्च सत्त्ववृद्धिकरः शुभः ।।२५९
अनेन विप्रो वृत्तेन वर्त्तयन्वेदशास्त्रवित् ।
व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीयते ।।२६०

सज्जनों को अपना यथार्थ परिचय न देकर कुछ का कुछ कहने वाला मनुष्य संसार में पापकर्मी एवं चोर है, क्योंकि वह आत्मापहारक होता है। सबके वाच्यार्थ नियत है, उनका मूल शब्द है, शब्द ही उनके अर्थों का बोध कराते हैं अतः शब्द चुराने वाला सर्वस्व चुराने वाला होता है। महर्षि, पितर और देवता के ऋण से निवृत्त होकर और गृहस्थ का भार पुत्र को

देकर राग-रहित भाव का अवलम्बन करे। तथा जनहीन स्थान में एकाकी बैठकर अपना हित चिन्तन करे। ऐसा करने से परम श्रेय की प्राप्ति होती है। गृहस्थ विप्र की यह शाश्वती वृत्ति हुई, वैसे ही सत्व गुणों की वृद्धि करने वाले स्नातक व्रतों की श्रेष्ठ विधि भी कह दी गई। शास्त्रविद् ब्राह्मण इस आचरण का पालन करने पर सर्व पापों से छूट कर ब्रह्मलोक में महानता को प्राप्त होता है ॥२५५-२६०॥

॥ चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥

★★★

पांचवां अध्याय

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्स्नातकस्य यथोदितान् ।
इदमूचुर्महात्मानमनलप्रभव भृगुम् ॥१
एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधममनुतिष्ठताम् ।
कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो ॥२
स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ।
श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥३
अनभ्यासेन वेदानामाचापस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥४
लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ॥५
लोहितान्वृक्षनिर्यासान्वृश्चनप्रभवांस्तथा ।
शेलुं गव्यं च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥६

स्नातक के धर्म सुनकर अग्नि से उत्पन्न महात्मा भृगुजी से ऋषिगण बोले—इस प्रकार अपने धर्म का यथोक्त विधि से अनुष्ठान करने वाले वेदशास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मणों की मृत्यु किस प्रकार होती है ? मनुपुत्र भृगु उन महर्षियों के प्रति बोले—वेद का अनभ्यास, स्वधर्माचार का त्याग, कर्त्तव्यपालन में आलस्य और दूषित अन्न का सेवन करने से मृत्यु ब्राह्मणों को नष्ट करने की इच्छा किया करती है। लशुन गृंजन, प्याज और कवक आदि अशुद्ध उत्पत्ति वाले पदार्थ द्विजाति वालों के लिए अभक्ष्य माने

गये हैं। वृक्ष से उत्पन्न लालवर्ण का गोंद अथवा वृक्ष के काटने पर निकलने वाला गोंद, लिहसोड़ा, गौ का पेयूष (दूध) आदि प्रयत्न पूर्वक त्याग देने योग्य हैं ।।१-६।।

वृथा कृसरसंयावं पायसापूपमेव च ।
अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च ।।७

अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा ।
आविकं सधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः ।।८

आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं बिना ।
स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि ।।९

दधि भक्ष्यं च शूक्तेषु सर्वं च दधिसंभवम् ।
यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ।।१०

क्रव्यादाञ्छकुनान्सर्वांस्तथा ग्रामनिवासिनः ।
अनिर्दिष्टांश्चैकशफांष्टिट्टिभं च विवर्जयेत् ।।११

कलविङ्कं प्लवं हंसं चक्राङ्वं ग्रामकुक्कुटम् ।
सारसं रज्जुवालं च दात्यूहं शुकसारिके ।।१२

अपने निमित्त पकाया कृसर (तिल चावल युक्त) संयाव (दूध-गुड़ के साथ सिद्ध गेहूँ का आटा), खीर, मालपूआ, अवध्य मांस, देवान्न और हवि न खाय। बछड़ा प्रसव करने के बाद जब तक गाय शुद्ध न हो तब तक होने वाला उसका दूध, ऊँटनी, घोड़ी ऋतुमयी होनेके कारण बैल की कामना वाली गौ अथवा अवत्सा गौ का दूध भी सेवन न करें। भैंस के अतिरिक्त अन्य वन्य पशुओं का दूध, स्त्री का दूध तथा सब प्रकार की कांजियों को त्याग दे। कांजियों में दही, छाछ तथा जल में सिझाये हुए फल, पुष्प और मूल आदि विकृत न हुए हों तो ही खाने योग्य रहते

हैं। कच्चा मांस खाने वाले गिद्धादि या ग्राम अथवा घर में रहने वाले कपोतादि का मांस भी त्याग दे, अनिर्दिष्ट नाम वाले एक खुर के अश्व-गदर्भ एवं टिटहरी का मांस भी न खाय। गौरैया, पपीहा हंस, चकवा, मुरगा, बतख, रज्जुत्राल, जलकाक तोता और मैना का मांस त्याज्य है ।।६-१२।।

प्रतुदाञ्जालपादांश्च कोयाष्टिनखविष्किरान् ।
निमज्जतश्च मत्स्यादान्शौनं वल्लूरमेव च ।।१३

बकं चैव बलाकां च काकोलं खञ्जरीटकम् ।
मत्स्यादान्विड्वराहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः ।।१४

यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते ।
मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत् ।।१५

पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः ।
राजीवान्सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्वशः ।।१६

न भक्षयेदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान् ।
भक्ष्येष्वपि समुद्दिष्टान्सर्वान्पञ्चनखांस्तथा ।।१७

श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा ।
भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ।।१८

कठफोड़ा. झिल्ली से जुड़ हुए चंगुल वाले जलमुर्ग, नख से चीर खाने वाले बाज आदि, जल में घुस कर मछली खाने वाले पक्षी का मांस वधस्थान का मांस, शुष्क मांस भी न खाय। बक, बालक ककोल, खंजन, मत्स्यभक्षक जलजीव, ग्राम्यशूकर और सब प्रकार की मछलियाँ त्याज्य हैं। जो जिसके मांस का भक्षण करता है, वह उसका मांसपक्षी कहा जाता है, किन्तु मछली खाने वाला सर्वमांसपक्षी होता है, इसलिए मछली खाना वर्जित है। पाठीन एवं रोहित मछली हव्य-कव्य में विशिष्ट मानी है,

राजीव, सिंहतुण्ड और सशल्क आदि सब मछलियाँ खाने योग्य है। अकेले चलने या रहने वाले, सर्पादि तथा न जाने हुए मृगादि पशुपक्षी और पाँच नख वाले अभक्ष्य हैं। पाँच नख वालों में साही, गोह; गेंदा, कछुआ और खरहा तथा एक ओर दाँत वाले पशुओं में ऊँट के अतिरिक्त अन्य सब भक्ष्य हैं ॥ १३-१८॥

छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् ।
पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेद्द्विजः ॥१९

अमत्यतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।
यतिचान्द्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः ॥२०

संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः ।
अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥२१

यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः ।
भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा ॥२२

बभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम् ।
पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषु च ॥२३

यत्किञ्चित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् ।
तत्पर्युषितमप्याद्यं हविः शेषं च यद्भवेत् ॥२४

गोबरछत्ता, ग्रामशूकर लहसन, ग्रामकुक्कुट, प्याज और गृंजन को जान बूझकर भक्षण करने वाला द्विज पतित होता है। उपर्युक्त को अनजाने में खाले तो कृच्छ्रसान्तपन अथवा यति चन्द्रायण व्रत करे तथा शेष अखाद्यों में से कोई वस्तु खाले तो उस दिन उपवास करे। ब्राह्मण अनजाने में भक्षण के दोष की शान्ति के लिए न्यूनतम एक कृच्छ्रव्रत करे, किन्तु जानकर खाले तो विशेष रूप से व्रत करे। ब्राह्मण यज्ञ के लिए अथवा भृत्योंके

पोषणार्थ सब प्रशस्त पशु पक्षियों का वध कर सकते हैं, अगस्त्य मुनि ने पहिले यही किया था। पूर्वकाल में भी ऋषियों और ब्राह्मण-क्षत्रियों ने जो यज्ञ किये उनमें भी भक्ष्य जीवों के पुरोडाश हुए थे। भक्ष्य और भोज्य अनिन्दित पदार्थ बासी हों तो भी भक्ष्य हैं तथा वासी हवि शेष भी खाने योग्य होता है ॥१९-२४॥

चिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः ।
यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया ॥२५

एतदुक्तं द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्यमशेषतः ।
मांसस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणवर्जने ॥२६

प्रोक्षितं भक्षयन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया ।
यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये ॥२७

प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥२८

चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः ।
अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैव भीरवः ॥२९

नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्यान्प्राणिनोऽहन्यहन्यपि ।
धात्रैव सृष्टा ह्याद्याश्च प्राणिनोऽत्तार एव च ॥३०

जौ, गेहूँ और खोआ की निमित वस्तु में तेल-घृत न हो तो भी यदि वह खराब न हुई हो तो बहुत दिन तक खाने योग्य रहती है। द्विजातियों के खाद्य-अखाद्य के विषय में कहा गया, अब मांस भक्षण करने और त्यागने के विषय में कहेंगे। मन्त्रों से पवित्र किया मांस भक्षण करे, इच्छा होने पर ब्राह्मण शास्त्रोक्त विधिसे एक बार मांस खा सकता है, वह भी प्राणों पर संकट उपस्थित होने पर। ब्रह्मा ने प्राण के लिये ही यह अन्न कल्पित किया है,

स्थावरजगम सभी प्राण के भोजन हैं। चरों का अन्न अचर, दाढ़ वालों का अन्न दाढ़-रहित जीव, हाथ वालों का भोजन बिना हाथ का जीव और शूरों का अन्न भीरु होता है। खाने वाला भक्ष्य जीवों को नित्यप्रति खाकर भी दोष का भागी नहीं होता, क्योंकि खाने वाला और खाद्य दोनों को ही ब्रह्मा ने बताया है ॥२५-३०॥

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधिः स्मृतः।
अतोऽन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते ॥३१

क्रीत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य परोपकृतमेव वा।
देवान्पितॄंश्चार्चयित्वा खादन्मांसं न दुष्यति ॥३२

नाद्यादविधिना मांसं वि धज्ञोऽनापदि द्विजः।
जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य तैरद्यतेऽवशः ॥३३

न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः।
यादृशं भवति प्रेत्य वृथामांसानि खादतः ॥३४

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः।
स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥३५

असंस्कृतान्पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः कदाचन।
मन्त्रैस्तु संस्कृतानद्याच्छाश्वतं विधिमास्थित ॥३६

यज्ञ के लिए मांस-भक्षण को दैवीविधि बताया है, इसके अतिरिक्त मांस खाना राक्षसी प्रवृत्ति है। खरीद कर, कहीं से लाकर या किसी के द्वारा उपहार में प्राप्त मांस देवता और पितरों को अर्पण करके खाने से दोषभागी नहीं होता। विधि-अविधि का ज्ञाता विप्र अविधि से मांस-भक्षण न करे, क्योंकि अवधि से मांस-भक्षक को मरने पर वही जीव भक्षण किया

करते हैं। धन के लिए मृगवध का वैसा पाप नहीं होता, जैसा कि वृथा मांस खाने वाले को मरने पर होता है। यथाविधि नियुक्त होने पर जो मांस,भक्षण न करे, उसे इक्कीस जन्मों तक पशु होना पड़ता है। वेदमन्त्रों से संस्कार के किये बिना मांसका भक्षण ब्राह्मण कदापि न करे, क्योंकि विधिवत संस्कृत मांस खाना ही वैध है ॥३१-३६॥

कुर्याद्‌घृतपशुं सङ्गे कुर्यात्पिष्टपशुं तथा ।
न त्वेव तु वृथा हन्तुं पशुमिच्छेत्कदाचन ॥३७
यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वो ह मारणम् ।
वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥३८
यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ।
यज्ञस्य भूत्य सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥३९
ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा ।
यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युसृतीः पुनः ॥४०
मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवान्मनु ॥४१
एष्वर्थेषु पशून्हिंसन्वेदतत्त्वार्थविद्विजः ।
आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥४२

मांस-भक्षण की अधिक इच्छा हो तो घृत युक्त मैदा का पशु बनाकर खा ले, किन्तु पशु को व्यर्थ न मारे। पशुओं का वृथा वध करने वाला जन्म-जन्मांतरमें उन पशुओं के रोमों की संख्या के बराबर वध किया जाता है। ब्रह्मा ने पशुओं की रचना यज्ञ तथा यज्ञों की समृद्धि के उद्देश्य से किया है, इसलिए यज्ञ में

पशु-हिंसा अहिंसा ही है । औषधि, पशु, वृक्ष, कछुए आदि तथा पक्षी यज्ञ के लिए हिंसित होने पर पुनर्जन्म में श्रेष्ठ योनि में उत्पन्न होते हैं। मधुपर्क, यज्ञ, पितृकर्म एवं देवकम में ही पशु-हिंसा करे, अन्यत्र नहीं यह मनुजी का कथन है। वेदार्थज्ञाता द्विज उपयुक्त कर्मों में पशु-हिंसा करता हुआ स्वयं को और उस पशु को श्रेष्ठ गति प्राप्त कराता है ॥३७-४२॥

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः ।
नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत् ॥४३

या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिश्चराचते ।
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥४४

योऽहिंसाकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥४५

यो बन्धनवधुक्लेशान्प्राणिनां च चिकीर्षति ।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥४६

यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च ।
तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किञ्चन ॥४७

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥४८

आत्मवान ब्राह्मण घर में, गुरुगृह या अरण्य में रहता हुआ विपत्ति के समय भी वेद-विरुद्ध हिंसा कदापि न करे। चराचर जगत में नियत वेदविहित हिंसा को अहिंसा ही मानें, क्योंकि वेद से ही धर्म का प्राकट्य है। जो आत्म सुख के लिए अहिंसक जीवों का वध करता है वह इहलोक-परलोक में कहीं सुखी नहीं होता। जो जीवों को बांधने, मारने या क्लेश देने का इच्छुक नहीं, वह सब जीवों का हित-चिन्तक अत्यन्त सुखी रहता है।

किसी जीव को दुःख न देने वाला व्यक्ति मन से जिस धर्म की कामना करता है, जो कर्म करता और जिस परमार्थ पर ध्यान देता है, वह उसे अनायास ही मिल जाता है। जीव-हिंसा बिना माँस उपलब्ध नहीं हो सकता और पशु-वध स्वर्ग प्राप्त कराने वाला नहीं होता, इसलिए मांस-भक्षण वर्जित है ॥४३-४८॥

समुत्पत्तिं मांसस्य बधबन्धौ च देहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥४९

न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत् ।
स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते ॥५०

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥५१

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
अनभ्यर्च्य पितृन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥५२

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥५३

फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः ।
न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥५४

मांस कैसे उत्पन्न होता है इसे तथा जीवों के वध और बन्धन को भूले प्रकार सोच कर सब प्रकार का मांस खाना छोड़ दे। जो विधि रहित मांस का भक्षण पिशाच के समान खाता है वह लोकप्रिय होता और रोगों से सतप्त नहीं होता। मारने का आदेश देने वाला, टुकड़े-टुकड़े करने या मारने वाला, क्रय-विक्रय करने वाला, पकाने परोसने और खाने वाला—यह सभी हत्यारे हैं। देव-पितर को अर्पण किये बिना जो व्यक्ति दूसरे के

मांस न अपनी मांसवृद्धि का इच्छुक है, उससे अधिक पापी अन्य नहीं होता। जो सौ वर्ष तक यज्ञ करे और जो मांस का सेवन कभी न करे, इन दोनों के पुण्य का समान फल है। पवित्र फल-मूल या मुनियों द्वारा व्यवहृत नीवार आदि हविरन्न खाने से वह फल प्राप्त नहीं होता, जो माँस न खाने से होता है।४९-५४।

मांस भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५५

ना मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां विवृत्तस्तु महाफला ॥५६

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च ।
चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥५७

दत्तजानेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते ।
अशुद्धा बान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते ॥५८

दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।
अर्वाक् सचयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव वा ॥५९

सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥६०

मनीषियों का कथन है कि मैं जिसका मांस इस लोक में खाता हूँ, वह मुझे परलकोक में खायेगा। विधिवत मांसभक्षण मद्यपान और मैथुन में दोष नहीं हैं क्योंकि प्राणियों की ऐसी ही प्रवृत्ति है, किन्तु विवृत होने में महान् फल की प्राप्ति निहित है। अब चारों वर्णों की प्रेतशुद्धि एवं द्रव्यशुद्धि को क्रम से कहूँगा। दाँत उत्पन्न होने का आभास होना अथवा चूड़ाकर्म या उपनयन के पश्चात् बालक मर जाय अथवा किसी बालक का

जन्म हो तो सपिण्ड और समानोदक बान्धवों को सूतक लगता है। मरने के अशौच में सपिण्ड को दस दिन तक का या अस्थि-संचय के पहिले तीन दिन या एक अहोरात्र का ही अशौच होता है। सातवीं पीढ़ी पर पहुँच पर सनिण्डता समाप्त हो जाती हैं तथा जन्म और नाम के अज्ञात रहने पर समानादकता निवृत्त होती है ॥५५-६०॥

यथेदं शावमाशौचौ सपिण्डेषु विधीयते ।
जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणं शुद्धिमिच्छताम् ॥६१
सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥६२
निरस्य तु पुमाञ्शुक्रमुपस्पृश्यैय शुद्ध्यति ।
बैजिकादभिसंबन्धादनुरुन्ध्यादघं त्र्यहम् ॥६३
अह्ना चकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः ।
शवस्पृशो विशुद्ध्यन्ति त्र्यहादुदकदायिनः ॥६४
गुरोः प्रतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ।
प्रतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥६५
रात्रिभिर्मासतुल्याभिगर्भस्रावे विशुध्यति ।
रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥६६

सपिण्डों में जैसे मृतक का अशौच दस दिन का मानते हैं, वैसे ही शुद्धि की इच्छा वाले सपिण्डों के लिए जन्म विषयक अशौच के विषय में भी समझना चाहिए। मृतक का सूतक सब सपिण्डों को समान होता है, किन्तु जन्म का सूतक माता-पिता को ही लगता है, इसमें भी माता दस दिन तक अशुचि रहती है किन्तु पिता केवल स्नान से ही पवित्र हो जाता है। स्वेच्छासे शुक्र क्षत्र

करने वाला पुरुष स्नान से ही शुचिता को प्राप्त हो जाता है, किन्तु पराये क्षेत्र में बीज विषयक अर्थात् गर्भाधान कर्म करने पर तीन दिन तक अपवित्रता रहती है। एक या तीन दिन के अशौचाधिकारी पुरुष यदि मोहवश शव का स्पर्श कर लें तो दस दिन में तथा समानोदक तीन दिन में ही शुद्ध हो जाते हैं। गुरु की मृत्यु होनें पर उनके अगोत्र का कोई शिष्य मृतक संस्कार करे तो वह उनके सपिण्डों के हीं समान दस रात्रि में पवित्र होता है। गर्भ गिरने पर, जितने मास गिरे, उतनी संख्यक रात्रि में स्त्री शुद्ध हो जाती है, किन्तु रजस्वला साध्वी रज की निवृत्तिके पश्चात् शुद्ध ही मानी जाती है ॥६ -६६॥

नृणामकृतचूडकानां विशुद्धिर्नैशिको स्मृता ।
निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥६७

ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः ।
अलंकृत्य शुची भूमावस्थिसंचयनादृते ॥६८

नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योनकक्रिया ।
अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षपेयुस्त्र्यहमेव च ॥६९

नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया ।
जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥७०

सब्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं स्मृतम् ।
जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥७१

स्त्रीणासंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः ।
यथोक्तेनैव कल्पेन शुद्ध्यन्ति तु सनाभयः ॥७२

चूड़ाकर्म से पहिले बालक की मृत्यु होने पर सपिण्ड दायाद एक रात्रि में और चूड़ाकर्म के पश्चात्, किन्तु उपनयन से पहिले

मृत्यु हो जाय तो तीन रात्रि में शुद्धि होती है। दो वर्ष से कम आयु के बालक के मरने पर बान्धवगण पुष्पमालाओं से सजाकर ग्राम के बाहर पवित्र स्थान में रखें तथा उसका अस्थिसंचय न करें। इसका अग्नि संस्कार या उदक क्रिया वर्जित है, उसे वन में काष्ठवत् छोड़कर तीन दिन तक का सूतक मानें तीन वर्ष से न्यून आयु के बालक के मरने पर उसे जलाँजलि न दे किन्तु जिसके दाँत निकल आते और नामकरण हो गया तो उसकी उदकक्रिया एवं अग्निसंस्कार भी करे। सहपाठी ब्रह्मचारी के मरने पर एक दिन का अशौच और समानोदकों के यहाँ जन्म हो तो तीन दिन का अशौच होता है। यदि वाग्दानके पश्चात् अविवाहिता कन्या को मृत्यु हो जाय तो उसका पति आदि तथा कन्यापक्ष के लोग भी तीन दिन में शुद्ध हो जाते हैं ॥६९-७२॥

अक्षारलवणान्नाः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहम् ।
मांसाशनं च नाश्नीयुःशयीरंश्च पृथक् क्षितौ ॥७३

सन्निधावेष वै कल्पः शावांशौचस्य कीर्तितः ।
असन्निधावयं ज्ञेयो विधिः संबन्धिबान्धवैः ॥७४

विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् ।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥७५

अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रिमशुचिर्भवेत् ।
संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुद्ध्यति ॥७६

निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ।
सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥७७

बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते ।
सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुद्ध्यति ॥७८

मृतक के अशौच में क्षार लवण सेवन न करे, नदी आदि में तीन दिन स्नान करे, मांस न खाय तथा धरती पर एकाकी शयन न करे। मृतक अशौच की यह विधि निकट रहने वालों के लिए बताई गई, जो लोग दूर रहते हैं उनके लिए निम्न विधि है— विदेश में रहने वाले व्यक्ति दशाह अशौच की अवधिमें जब मृत्यु का समाचार सुनें तब दस दिन में जितने दिन शेष हों,उतने दिन का ही अशौच रहता है। दशाह व्यतीत होने पर मृत्यु का समाचार मिले तो तीन रात्रि का अशौच और एक वर्ष बीतने पर पता लगे तो स्नान करने पर ही शुद्धि हो जाती है। दशाह के पश्चात् सपिण्ड दायाद का मरण या जन्म सुनकर सचैल स्नान अर्थात् पहिने हुए वस्त्रों के सहित स्नान करने से शुद्धि होती है। असपिण्ड अर्थात् समानोदक बालकका देशान्तरमें मरण सुनकर तुरंत सचैल स्नान करने से शुद्धि होती है ।।७२-७८।।

अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत्स्यावशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ।।७९

त्रिरात्रमाहूराशौचमाचार्ये संस्थिते सति ।
तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ।।८०

श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ।।८१

प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः ।
अश्रोत्रिये त्वहः कृत्स्नमनूचाने तथा गुरौ ।।८२

शुद्धयेद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धयति ।।८३

न वर्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः ।
न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योप्यशुचिर्भवेत् ।।८४

दशाह के अन्तर्गत ही यदि मरने के सूतक में पुनः अन्य मरण या जन्म के सूतक में अन्य के जन्म का सूतक पुनः हो जाय तो पहिले दशाह होने तक ही ब्राह्मण अशुद्ध रहता है। आचार्य की मृत्यु पर तीन दिन और आचार्य के पुत्र या स्त्री की मृत्यु पर एक दिन-रातका ही अशौच कहा है। किसीके यहाँ कोई श्रोत्रिय मर जाय तो तीन रात्रि का तथा मामा, पुरोहित, बान्धव एवं शिष्य आदि में से किसीका मरण हो जाय तो दो दिन एक रात्रि का सूतक होता है। जिसके राज्य में ब्राह्मण का निवास हो उस राजा के मरने का समाचार दिन में मिले तो सूर्यास्त तक और रात्रि में मिले तो तारागण दिखाई देते रहें तब तक का, अश्रोत्रिय जिसके यहाँ दिन में मरे तो दिन भर और रात्रि में मरे तो रात्रि भर का तथा वेदज्ञानी गुरु के मरने पर भी इसी प्रकार सूतक माने। उपनीत सपिण्ड के जन्म-मरण में ब्राह्मण की शुद्धि दस दिन में, क्षत्रिय की बारह दिन में, वैश्य की पन्द्रह दिन में और शूद्र की एक महीने में होती है। अशौच के दिन न बढ़ावे और अग्निहोत्र कर्म में बाधा न डाले, क्योंकि उस कामको करता हुआ सपिण्ड भी अशुद्ध नहीं होता ॥७९-८४॥

दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा।
शव तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्धयति ॥८५

आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने।
सौरान्मन्त्रान्यत्तोत्साहं पावमानीश्च शक्तितः ॥८६

नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्धयति।
आचम्यैव च निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ॥८७

आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात्।
समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्धयति ॥८८

वृथासंकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ।
आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्तेतोदकक्रिया ॥८९

पाषण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां च कामतः ।
गर्भभर्तृद्रुहां चैव सुरापीनां च योषिताम् ॥९०

चाण्डाल, रजस्वला, पतित, सूतिका और शव को स्पर्श करने पर स्नान से ही पवित्र हो जाता है । स्नानाचमन के बाद पितृ-देव-कर्म का कर्त्ता यदि अपवित्र व्यक्ति या जीव को देख ले तो सूर्यमन्त्र या पावमानी मन्त्र का यथाशक्ति जप करे । विप्र मनुष्य की मज्जायुक्त अस्थि छूने पर स्नान करके, शुष्क अस्थि छूने पर आचमन करके और मृत गौ को छूने पर सूर्यदर्शनसे ही शुद्ध हो जाता है । ब्रह्मचारी अपना व्रत पूर्ण होने तक प्रेत का उदककर्म न करे, जब ब्रह्मचर्य व्रत पूर्ण हो जाय तब वह उदक-कर्म करके तीन रात्रि में ही शुद्ध हो जाता है । स्वधर्मत्यागी, प्रतिलोम वर्णसंकर, सन्यासी और आत्महत्या करने वाले को जलांजलि न दे । पाखण्डिनी, स्वेच्छाचारिणी गर्भ नष्ट करने वाली, पतिद्रोहिणी तथा मदिरा पीने वाली स्त्री को भी जलांजलि न दे ॥८५-९०॥

आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातुरं गुरुम् ।
निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते ॥९१

दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् ।
पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोमं द्विजन्मनः ॥९२

न राज्ञामघदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणाम् ।
ऐन्द्रं स्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा ॥९३

राज्ञो महात्मिके स्थाने सद्यः शोचं विधीयते ।
प्रजानां परिरक्षार्थमासनं चात्र कारणम् ॥९४

डिम्भाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च ।
गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः ।।९५
सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च ।
अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ।।९६

आचार्य, उपाध्याय, पिता, माता और गुरु को अर्थी ढ़ाने से ब्रह्मचारी का व्रत नष्ट नहीं होता। मरे हुए शूद्र को नगर के दक्षिण द्वार से, वैश्य को पश्चिम द्वार से, क्षत्रिय को उत्तर द्वार से और ब्राह्मण को पूर्व द्वार से होकर श्मशान पर ले जाना चाहिए। राजाओं को सपिण्ड के जन्म-मरणका सूतक नहीं होता क्योंकि वे इन्द्रपद पर अधिकृत रहते हैं, व्रती और याज्ञिक भी ब्राह्मण के समान शुद्ध होने के कारण अशुचि नहीं होते। प्रजा-रक्षा के लिए राज्यासन पर प्रतिष्ठित होना सद्यः शौच का कारण माना जाने से राजा की तुरन्त शुद्धि कही गई है। राजा-रहित युद्ध में मारे गये पुरुष, वज्रपात से मारे हुए, प्राणदण्ड-प्राप्त वध्य पुरुष, गौ ब्राह्मण की रक्षा में जीवन देने वाले अथवा राजा जिसका अशौच न होना चाहे, उनका भी सद्यः शौच माना गया है। चन्द्र, अग्नि, सूय, पवन, इन्द्र, कुबेर, वरुण और यम इन अष्ट लोकपालों का राजा के देह में निवास रहता है ।।९१-९६।।

लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्ताशौचं विधीयते ।
शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् ।।९७
उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च ।
सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ।।९८
विप्रःशुद्ध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम् ।
वैश्यः प्रतोदं रश्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ।।९९

एतद्वोऽभिहितं शौचं सपिण्डेषु द्विजोत्तमाः ।
असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधत ॥१००

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ।
विशुध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् ॥१०१

यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेनैव शुद्ध्यति ।
अनदन्नन्नमह्नैव न चेत्तस्मिन्गृहे वसेत् ॥१०२

इस प्रकार लोकपालों का अंश रहने के कारण राजा को अशौच-दोष नहीं होता, क्योंकि मनुष्यों के शौचाशौच का भावाभाव लोकपालों से ही है। क्षात्र धर्मसंगत युद्ध में शास्त्रों से मारे गये को यज्ञफल तत्क्षण मिलकर उसी समय शुद्धि होती हैं। सूतक के जन्म में ब्राह्मण पितृकर्म करके दक्षिण हाथ से जल स्पर्श करके क्षत्रिय वाहन और शस्त्र का स्पर्श करके, वैश्य चाबुक या लगान छूकर तथा शूद्र लकड़ी छूकर शुद्ध हो जाता है। हे द्विजश्रेष्ठों ! मैंने यह शौच सपिण्ड-मरण का कहा है अब असपिण्डों की प्रेतशुद्धि कहता हूँ। असपिण्ड ब्राह्मण के शव को बन्धु के समान ले जाकर और मातृपक्ष के बान्धव (मामा, मौसी आदि के) का शव वहन करके तीन रात्रि में शुद्ध होता है। शव उठाने वाला यदि उसके सपिण्ड का अन्न सेवन करे तो उसे भी दस दिन का शौच करना होता है, इसके विपरीत अशौच में अन्न न खाने या उसके घर पर न रहने से एक दिन-रात में ही पवित्र हो जाता है ॥९७-१०२॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च ।
स्नात्वासचैलःस्पृष्ट्वाग्निं घृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ॥१०३

न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत् ।
अस्वर्ग्या ह्याहुतिःसा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता ॥१०४

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्युपाञ्जनम् ।
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् ।।१०५

सर्वेषामेव शौचनामर्थशौचं परं स्मृतम् ।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचि ।।१०६

क्षान्त्या शुद्धयन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ।।१०७

मृत्तोयैः शद्धयते शोध्यं नदी वेगेन शुद्धयति ।
रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमाः ।।१०८

सपिन्ड या असपिण्ड शव के पीछे स्वेच्छापूर्वक चलने वाला सचल स्नान, अग्नि स्पर्श तथा घृत-पान से पवित्र होता है। आत्मीयजनों के होते हुए ब्राह्मण को शूद्र द्वारा व उठवाये, क्यों कि शूद्र के स्पर्श-दोष से मृतक का वह शरीर स्वर्ग देने वाला नहीं रहता। ज्ञान, तप, अग्नि, आहार, मिट्टी, मन, जल, उपलेप, वायु, कर्म, सूर्य और काल—यह सब शरीरधारियों को पवित्र करते है। सब शौचों में अथशौच श्रेष्ठ कहा जाता हैं, क्यों कि अर्थ अर्थात् धन के सम्बन्ध में शुद्ध ही यथार्थ में शुद्ध है, केवल मिट्टी और जल से शुद्ध भी यथार्थ रूप से शुद्ध नहीं है। क्षमा से विज्ञजन दान से अकार्यकर्त्ता, जप से गुप्त पाप करने वाले और तप से वेदविज्ञ पवित्र होते हैं। मल से दूषित हुए पदार्थ मिट्टी और जल से नदी अपने प्रवाह के वेग से, दूषित मन वाली स्त्री रज से तथा ब्राह्मण संन्यासधर्म के पालन से पवित्र होता है ।।१०१-१०८।।

आद्‌भर्गात्राणि शुद्धयन्तिमनःसत्येन शुद्धधयति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्माबुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति ।।१०९

एष शौचस्य वः प्रोक्तः शरीरस्य विनिर्णयः ।
नानाविधानां द्रव्यणां शुद्धेःश्रृणुत निर्णयम् ॥११०
तेजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ।
भस्मनाभ्दिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥१११
निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमाभ्दिरेव विशुद्धयति ।
अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥११२
अपामग्नेश्च सयोगाद्धमं रौप्यं च निर्बभौ।
तस्मात्तयो स्वयोन्यव निर्णेको गुणवत्तरः ॥११३
ताम्रायः कास्यरत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च ।
शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥११४

जल से देह सत्य से मन, विद्या और तप से जीवात्मा तथा ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है । यह शरीर से सबंधित शौच का निर्णय हुआ अब विभिन्न द्रव्यों की शुद्धि जैसे होती है उसका निर्णय करता हूँ । मनीषियों के अनुसार धातुओं और मणि आदि पाषाणों से निमित पदार्थों की पवित्रता भस्म जल और मिट्टी से होती है। विना लेप लगा हुआ स्वर्णपात्र शंख मूंगा आदि या पाषाण निर्मित पात्र रजत पात्र आदि जल से ही पवित्र हो जाते हैं । सोने चाँदी की उत्पत्ति जल और अग्नि से होने के कारण उनका शोधन भी जल और अग्नि से ही हो सकता है। ताम्र, लोह, कांस्य, पीतल, राँग सीसा आदि का यथायोग्य क्षार, खटाई और जल से शोधन करे ॥१०६-११४॥

द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिरुत्पवनं स्मृतम् ।
प्रोक्षणं संहतानां च दारवाणां च तक्षणम् ॥११५
मार्जनं यज्ञपात्रणां पाणिना यज्ञ कर्मणि ।
चमसानां ग्रहाणं च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥११६

चरुणा स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ।
स्फ्यशूर्पशकटानां च मुसलोलूखलस्य च ॥११७

अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् ।
प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौच विधीयते ॥११८

चेलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च ।
शाकमूलफलानां च धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥११९

कौशेयाविकयोरूषैः कुतपानामरिष्टकैः ।
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥१२०

द्रव अर्थात् घृत-तैलादि का शोधन उनके ऊपर का कुछ भाग कुश से उठाकर फेंकने से, दरी कम्बल आदि का जल द्वारा पोंछने से तथा काष्ठ का शोधन रम्दा फेरने से होता है। यज्ञपात्रों का शोधन जोड़ने से, यज्ञकर्म से चमस आदि का धोन से चरु-पात्र, स्रुक, स्रुवा स्फ्य, शूर्प, शकट, ऊखल और मूसल का उष्ण जल द्वारा धोने से अधिक अन्न वस्त्रादि का जल छींटे देने से या अल्प हो तो धोने से होता है : छूने योग्य चर्म तथा बांस आदि के द्वारा निमित्त वस्तुओं को शोधन वस्त्र के समान और शोक मूल फल आदि का अन्न के समान करे। रेशमी ऊनी वस्त्रों का शोधन खारी मिट्टी से कुतप (कम्बल) का रीठों से, सन, निर्मित वस्त्रों का बेल से तथा अलसी के सूत से बने वस्त्रों का शोधन श्वेत सरसों के चूर्ण से होता है ॥११५-१२०॥

क्षौमवच्छङ्खश्रृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च ।
शुद्धिर्विजानता कार्या गोमूत्रेणोदकेन वा ॥१२१

प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च पलालं चैव शुद्धयति
मार्जनोपाञ्जनैर्वेश्म पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥१२२

मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः ।
संस्पृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥१२३
संमार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च ।
गवां च परिवासेन भूमिशुद्ध्यति पञ्चभिः ॥१२४
पक्षिजग्धं गवाघ्रातमवधूतमवक्षुतम् ।
दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षेपेण शुद्ध्यति ॥१२५
यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गन्धो लेपश्च तत्कृतः ।
तावन्मृद्वारि चादेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु ॥१२६

शंख, सींग, अस्थि हाथीदाँत की शुद्धि अलसी के सन से बने वस्त्रों के समान है किन्तु इसमें गोमूत्र या जल मिलाया जाता में, तृण, काष्ठ और पुआल का शोधन जल छिड़कने से, घर का झाड़ने लीपने से तथा मिट्टी का पुनःअग्नि पर पकाने से होता है। किन्तु जिस मृत्तिकापात्र में मन्दिरा, मूत्र, विष्ठा, थूक, लोहू और पीव लग जाय, वह फिर अग्नि से भी शुद्ध नहीं हो सकता भूमि का शोधन पचकर्म अर्थात् जाड़ने बुहारने लीपने, गोमूत्र या जल छिड़कने, ऊपर की कुछ मिट्टी खोदकर फेंकने तथा गोओं के रखने से होता है। जो अन्न सामान्य पक्षियों द्वारा झूँठा कर लिया हो, गौ द्वारा सूंघा गया हो, जिस पर किसी ने छींक दिया हो या जिसमें बाल अथवा कीड़े पड़ गए हों वह मिट्टी डालने से शुद्ध होता है। किसी वस्त्रादि में कोई अपवित्र वस्तु लग जाय तो उसकी गन्ध और दाग दूर होने तक उसे जल और मिट्टी से स्वच्छ करता रहे ॥१२१-१२६॥

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ।
अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥१२७

आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यासु गोर्भवेत् ।
अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥१२८
नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम् ।
ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥१२९
नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने ।
प्रस्रवे च शुचिर्वत्सः श्वाः मृगग्रहणे शुचिः ॥१३०
श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत् ।
क्रव्याद्भिश्चहतस्यान्यैश्चण्डालाद्यैश्च दस्युभिः ॥१३१
ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः।
यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मालाश्च्युता ॥१३२

देवताओं ने ब्राह्मण के लिए तीन वस्तुएँ पवित्र कहा है— अदृष्ट अपवित्रता वाली, जल से धुली हुई और वाणी द्वारा प्रशस्त बताई हुई। यदि पृथ्वी पर जल अपवित्र वस्तुओं से युक्त न हो, वरन् गन्ध, वर्ण और रस युक्त हो तथा इतनी मात्रा में हो, जिससे गौ की प्यास मिट सके तो वह पवित्र ही है। माली या शिल्पकार का हाथ, बाजार में फैला कर रखे हुए पदार्थ तथा ब्रह्मचारी को प्राप्त भिक्षा सर्वदा पवित्र है। स्त्रियों का मुख सदा पवित्र रहता है, पक्षियों द्वारा चोंच से गिराया हुआ फल दुग्ध दोहन में बछड़े का मुख और मृग पकड़ने में श्वान शुद्ध माना जाता है। मनु जी की सम्मति में कुत्तों द्वारा मारे गये मृग का मांस, कच्चा मांस खाने वाले हिंसक पशुओं का मांस और चाण्डाल आदि के द्वारा मारे गये मृगादि पशुओं का मांस शुद्ध होता है। देह के नाभि से ऊपर के सभी छिद्र शुद्ध और नीचे के अशुद्ध होते हैं तथा देह से निकलने वाले मल भी अपवित्र होते है ॥१२७-१३२॥

मक्षिका विप्रुषश्छाया गोरश्वः सूर्यरश्मयः ।
रजो भूर्वायुरग्निच स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥१३३

विण्मूत्रोत्सर्गशद्ध्यर्थं मृद्वार्यादियमर्थवत् ।
दैहिकानाँ मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि ॥१३४

वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रविट् घ्राणकर्णविट् ।
श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वाद्वशैते नृणां मलाः ॥१३५

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दंश ।
उभयोः सप्तदातव्या मृदः शुद्धिम भीप्सता ॥१३६

एतच्छौचं गृहस्थानाँ द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ।
त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥१३७

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत् ।
वेदमध्येष्यमाणश्च अन्तमश्नंश्च सर्वदा ॥१३८

मक्खी मुख से निर्गत सूक्ष्म जलकण, छाया गौ, अश्व सूर्य-रश्मि, धूल, धरती, वायु और अग्नि स्पर्श में अपवित्र कभी नहीं होते। मल-मूत्र-त्याग के पश्चात् तथा देह से उत्पन्न हुए बारह प्रकार के मलों शोधन करने लिए मिट्टी और जल का प्रयोग में लावें। वसा, शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, नाक-कान के मल, कफ, अश्रु, नेत्र का कीचड़ और स्वेद यह शरीर के बाहर मल हैं। पवित्रता के लिए उपस्थ में एक बार मलद्वार में तीन बार, बाम हाथ में दस बार और दोनों हाथों में सात बार मिट्टी लगाकर जल से धोना चाहिए। यह शोच गृहस्थों का, है, ब्रह्मचारियों का द्विगुणित, बानप्रस्थोंक त्रिगुणित और संयासी का चार गुना होता है। मलमत्र त्याग के पश्चात् शौचादि से निवृत होकर बेदाध्ययन या भोजन की इच्छा वाला पुरुष आचमन करके

इन्द्रिय छिद्रों अर्थात् नेत्र कान आदि का स्पर्श करे ॥१३३-१३८॥

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।
शारीरं शौचमिच्छन्हि स्त्री शूद्रस्तु सकृत्सकृत ॥१३६

शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम् ।
वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ॥१४०

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गे पतन्ति य ।
न श्मश्रूणि गतान्यास्यं न दन्तान्तरधिष्ठितम् ॥१४१

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयनः परान् ।
भौमिकैस्ते समा ज्ञेया न तैराप्रयतो भवेत् ॥१४२

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथंचन ।
आनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात् ॥१४३

वान्तो विरिक्तःस्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत् ।
आचामेदेव भुक्त्वान्नं स्नानं मैथुनिनःस्मृतम् ॥१४४

शरीर-शुद्धि की इच्छा वाला पुरुष पहले तीन वार आचमन करके दो बार मख धोवे, किन्तु स्त्री और शूद्र यह कार्य एक एक बार ही करे। शास्त्रानुसार चलने वाला शूद्र प्रत्येक पास केश बनवाये जन्म मरण में वैश्य के समान शौचकर्म करे और द्विजाति का उच्छिष्ट खाय। मुख से निकले जलकणों के शरीर पर पड़ने से शरीर उच्छिष्ट नही होता, दाढ़ी मूँछ के बाल मुख में जाँय तो वे उच्छिष्ट नहीं होते तथा दांतों में अठके हुए अन्न से मुख झूठा नहीं होता। दूसरों को आचमनार्थ जल में अपने पाँवों पर छींटे पड़ें तो उन्हें धरती में स्थित जल के समान देह को अशुद्ध न करने वाला माने। हाथ में कोई वस्तु रहने पर किसी उच्छिष्ट मुख वाले से स्पर्श हो जाय तो उस वस्तु को रखे

बिना ही आचमन करके पवित्र हो जाय । वमन-विरेचन होने पर स्नान करके घृतपान करे, भोजन के पश्चात् वमन हो जाय तो आचमन ही करे और ऋतुमती सहवास करने पर स्नान करे ॥१३ -१४४॥

सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठाव्योक्त्वानृतानि च ।
पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च अ चामेत्प्रयतोऽपि सन् ॥१४५
एष शौचविधिः कृत्स्नो द्रव्यशुद्धिस्तथैव च ।
उक्तो वः सर्ववर्णानां स्त्रीणां धर्मान्निबोधत॥१४६
बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि ॥१४७
बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्रहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रुताम् ॥१४८
पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः ।
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्यं कुर्यादुभे कुले ॥१४९
सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥१५०

वेदाध्ययन की इच्छा वाला पुरुष सोने, छींकने, खाने, थूकने, मिथ्या बोलने या जल पाने के पश्चात् पवित्र होते हुए भी आचमन करे । यह सब वर्णों का अशौच विषयक एवं द्रव्य शोधन से सम्बन्धित सम्पूर्ण विधान कहा गया अब स्त्री धर्म के विषय में कहते हैं बालिका युवती अथवा वृद्धा भी हो तो भी कोई गृह-कार्य स्वतन्त्रता पूर्वक न करे । स्त्री बालिकावस्था में पिता के यौवनावस्था में पति ने और पिता के परलोकगत होने पर पुत्रों के अधीन रहे, स्वतन्त्र न रहे । पिता, पति या पुत्र से अलग रहने की सभी इच्छा न करे ।

क्योंकि ऐसा करने वाली स्त्री अपने पिता और पति दोनों के कुलों को निन्दित कर देती है। स्त्री सदा प्रसन्न रहकर गृह कार्यों को दक्षता पूर्वक करे, सभी वस्तुओं को स्वच्छ रखे और धन का व्यय कम करें ॥१४५-१५०॥

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः ।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत् ॥१५१

मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः ।
प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥१५२
अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः ।
सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः ॥१५३
विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥१५४

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् ।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥१५५
पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा ।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचिदप्रियम् ॥१५६

पिता अथवा पति की अनुमति से भाई जिसको पाणिग्रहण करादे उसकी जीवनपर्यन्त सेवा करे और उसके मरणोपरान्त भी धर्मोल्लंघन कभी न करे। विवाह के समय किया जाने वाला स्वास्तिकर्म और प्रजापतिकर्म पति पत्नी दोनों के ही कल्याणार्थ होता है तथा वाग्दान के पश्चात् स्त्री पर पति का अधिकार हो जाता है। मन्त्र-संस्कार पूर्वक पाणिग्रहणकर्त्ता पति स्त्री को ऋतु काल और अनृतुकाल में इहलौकिक सुख देता हुआ परलोक में भी सुख प्रदान करता है पति अनाचारी परस्त्रीरत या विद्यादि गुण

से हीन हो तो भी साध्वी पत्नी उसका सेवा सदा देवता के समान करे। स्त्रियों के लिए पृथक यज्ञ, व्रथ और उपवास आदि नहीं है वह तो पति सेवा करने से ही स्वर्ग में पूजित होती है स्वर्ग-लोक प्राप्ति की इच्छावाली साध्वी अपने जीविका या मत पति के प्रति कोई भी अप्रिय कार्य न करे ॥१५१-१५६॥

कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ।
नतु नामापिगृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥१५७
आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ।
यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥१५८
अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् ॥१५९
मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि तथा ते ब्रह्मचारिणः ॥१६०
अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥१६१
नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे ।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिभ्दर्तोपदिश्यते ॥१६२

पति के मरने पर स्त्री पवित्र पुष्प फल-मूल आदि का भोजन करती हुई अपने देह को क्षीण करे, किन्तु पर पुरुष का कभी नाम तक न ले। विधवा स्त्री को सदा श्रेष्ठ पतिव्रताओं के धर्म की इच्छा करने वाली क्षमामयी और ब्रह्मचारिणी रहना चाहिए। सहस्रों अविवाहित ब्रह्मचारी ब्रह्मण वंशवृद्धि के निमित्त पुत्र उत्पन्न किये बिना ही स्वर्ग को प्राप्त हो चुके हैं। पति की मृत्यु के उपरान्त जो प्रतिव्रता ब्रह्मचर्य पालन करती हैं वह पुत्र

रहित होकर भी ब्रह्मचारियों के समान स्वर्ग में जाती है है किन्तु जो सन्तान प्रलोभन में पति का अतिक्रमण करती है, वह इस लोक में निन्दित होती हुई पतिलोक से गिर जाती है। अन्य पुरुष द्वारा उत्पन्न सन्तान शास्त्र विरुद्ध तथा अन्य की स्त्री में उत्पन्न सन्तान उत्पादनकर्त्ता की नहीं होती, पतिव्रता के लिए परपति उपदेश कहीं नहीं है ।।१५९-१६२।।

पतिंहित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते ।
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते ।।१६३
व्यभिचारात् भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोतिनिन्द्यताम् ।
श्रृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीडयते ।।१६४
पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिःसाध्वीतिचोच्यते ।।१६५
अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता ।
इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्रं च ।।१६६

अपने हीन पति को त्याग कर अन्य श्रेष्ठ पुरु को स्वीकार करने वाली स्त्री समान में निन्दित होती हुई व्यभिचारिणी कहलाती है। परपुरुष से व्याभिचार करने से निन्दित मानी जाने वाली स्त्री कुष्ट आदि रोगों से ग्रस्त और मरने पर गीदड़ी होती है। मन वचन क्रम से पति के विरुद्ध आचरण न करने वाली स्त्री परलोक में पति को प्राप्त करती है तथा इस लोक में सज्जन पुरुष उसी साध्वी कहते है।इस नारी धर्म के अनुसार तन मन, वचन से पतिसेवा करने वाली स्त्री इस लोक में सुयश और परलोक में पति के साथ सुख पाती हैं ।।१६३-१६६।।

एवंवृत्ता सवर्णां स्त्री द्विजातिः पूर्वमारिणीम् ।
दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ।।१६७

भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्वाग्नीन्त्यकर्मणि ।
पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥१६८
अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ॥
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥१६९

विधिपूर्वक विवाहिता सवर्णा स्त्री यदि पहले मरे तो धर्म-ज्ञाता द्विज अग्निहोत्र और यज्ञपात्रों के द्वारा उसका दाह संस्कार करे। पति के पहिले मरने वाली स्त्री का अग्नि कर्म पूर्ण कर लेने के पश्चात् यदि इच्छा हो तो पुनर्विवाह कर ले। इस प्रकार पंचयज्ञों को यथाशक्ति नित्य नियम से करे उसे छोड़े नहीं तथा जीवन के द्वितीय भाग में विवाह करके गृहस्थाश्रम में निवास करें ॥१६७-१६९॥

॥पंचम अध्याय समाप्त ॥

———

छठा अध्याय

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥१
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥२
संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥३
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥४
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥५
वसीत चर्मं चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा ।
जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥६

इस प्रकार स्नातक द्विज शास्त्रविधि से गृहस्थ धर्म का पालन करने के पश्चात् जितेन्द्रिय होकर धर्मानुष्ठान करता हुआ वन में निवास करे। गृहस्थ को जब यह दिखाई दे कि शरीर पर झुर्रिया पड़ गई, बाल सफेद हो गये तथा पुत्र के भी पुत्र उत्पन्न हो गये, तब वन के आश्रय में जाय। ग्राम्याहार और वस्त्राभूषणादि को छोड़कर स्त्री को पुत्रों को सोंप दे या अपने साथ ले ले और वन में चला जाय। घर की होमाग्नि तथा उसके उपकरण लेकर ग्राम से निकले और जितेन्द्रिय होकर वन में रहे। वानप्रस्थ होकर वन में नीवार आदि शुद्ध अन्नों या शाक, मूल

फल से पंचमहायज्ञों को विधिवत करे। मृगचर्म या वल्कल वस्त्र धारण करे, प्रातः सायं स्नान एवं जटा दाढ़ी मूँछ और नख को धारण करे ।।१६।।

यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षां च शक्तितः ।
अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ।।७
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्र समाहितः ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ।।८
वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ।
दशमस्कन्दयन्पर्वं पौर्णमासं च योगतः ।।६
ऋक्षेष्टयाग्रयणं चैव चातुर्मास्यानि चहरेत् ।
तुरायणं च क्रमशो दाक्षस्यायनमेव च ।।१०
वासन्तशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नै स्वयताहृतैः ।
पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ।।११
देवतांभ्यतु तत्भुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः ।
शेवमात्मनि पुञ्जीत लवणं च स्वयं कृतम् ।।१२

इस आश्रम में विहित भोजन में से ही यथाशक्ति बलि और भिक्षा दे तथा आगत अतिथि को जल, मूल और फल की भिक्षाँ से सत्कृत करे। नित्य स्वध्याय परायणं रहे गर्मी सर्दी सहन करे, यथासंभव सभी का उपकार करे मन को दश में रखे नित्य दान करे किन्तु दान न ले और सब प्राणियों पर दया रखे। अमावस पूर्णिमा सहित यथा विधि वैधानिक अग्निहोत्र करे। नक्षत्रेष्टि, धाग्रयण, चातुर्मास्य तुरायण और दाक्षायन कार्मो को क्रम से करे। बसन्त और शरद ऋतु के मुनियों द्वारा सेवनीय अन्न स्वयं लाये हुए हों, उनसे पुरोडाश और चरु पृथक् २ विधि व्रत करे। वह अति पवित्र वन्य हवि देवताओं के लिए अग्नि में

होम कर शेष अपने लिए रखो तथा अपने हाथ का बनाया हुआ नमक प्रयोग करे ॥७-१२॥

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च ।
मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात्स्नेहांश्च फलसंभवान् ॥१३
वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कवकानि च ।
भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकलानि च ॥१४
त्यजेदाश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्वसंचितम् ।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥१५
न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित्।
न ग्रामजातान्यार्तोऽपि मूलानि च ॥१६
अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा ।
अश्मकुट्टो भवेद्वापि दन्तोलूखलिकोऽपि वा ॥१७
सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्मासंसंचयिकोपि वा ।
षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा ॥१८

जल-थल में उत्पन्न शाक और पुष्प, मूल, फल तथा फलों में तेल का सेवन करे। मधु मांस, गोबरछता, भूस्तृण शिग्रुक और श्लेष्मातक का त्याग करें। पूर्व संचित मुनि-योग्य अन्न, जीर्ण वस्त्र, शाक, मूल, फल का प्रयोग आश्विन मास में न करे। खेत में उत्पन्न अनाज दिया जाने पर भी न ले तथा ग्राम में उत्पन्न मूल फल को भूखा होने पर भी भक्षण न करे। अग्नि-सिद्ध वन्य अन्न या ऋतु अनुसार स्वयं पके फल अथवा पाषाण से कूटा अन्न हुआ भक्षण करे अथवा पाषण के स्थान पर दांत और मुख को ही ऊखल मूसल मानता हुआ अन्न को चबा ले। भोजन करके पात्र को धोकर रखने के बराबर ही अन्न संचय करे अथवा एक

मास, छः मास या एक वर्ष निर्वाह योग्य अन्न का संग्रह करले ॥१३१॥

नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तितः।
चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥१९
चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लकृष्णे च वर्तयेत्।
पक्षान्तयोर्वाप्यश्नीयाद्यवागूं क्वथितां सकृत् ॥२०
पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा।
कालपक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥२१
भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम्।
स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः ॥२२
ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः ॥२३
उपस्पृशंस्त्रिषवणं पितॄन्देवांश्च तर्पयेत्।
तपश्चरंश्चोग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः ॥२४

दिन में अन्न सिद्ध कर प्रदोष काल में भोजन किया कर या एक दिन उपवास रखकर दूसरे दिन अथवा दो दिन उपवास रख कर तीसरे दिन खाया करे। चान्द्रायणव्रत विधान से शुक्ल या कृष्ण पक्ष में क्रमशः आहार की मात्रा को बढ़ाने-घटावे अथवा पक्ष के अन्त में एक बार पकाई हुई यवागू (खिचड़ी) का सेवन करे अथवा वानप्रस्थ धर्म का पालन करता हुआ समय पर स्वयं पक कर गिरे हुए फल पुष्प और मूल का आहार करे पृथिवी पर लेटता हुआ-सा पड़ा रहें अथवा दिन भर दोनों पांवों के अगले भाग के सहारे खड़ा रहे अथवा अपने स्थान या आसन पर कुछ समय बैठे कुछ समय खड़ा रहे और तीन समय स्नान करे। ग्रीष्म में पंचाग्नि से तपे, वर्षा में खुले मैदान में रहे और हेमन्त

भीगे वस्त्र पहन कर क्रमशः तपस्या की वृद्धि करे । त्रिकाल स्नान के अनन्तर देव ऋषि और पितरों का तर्पण किया करे तथा उग्रतर तप के द्वारा अपने देह को सुखावे ॥१६-२०॥

अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि ।
अनग्नरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥२५
अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥२६
तापसेष्वेव विप्रेषु याधिकं भैक्षमाहरेत् ।
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥२७
ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन् ।
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ॥२८
एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वनें वसन् ।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥२९
ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः ।
विद्यातपोविवृद्धर्थं शरीरस्य च शुद्धये ॥३०

वैतानाग्नि को अपने में विधिवत समारोपण कर मौन धारण करे और कन्द मूल सेवन करता हुआ जीवन यापन करे । शारिरिक सुख के लिए प्रयत्न न करे भूमि पर सोवे और वृक्ष के नीचे रहे आवश्यक हो तो तपस्वी ब्राह्मणों से ही प्राण रक्षा के लिए भिक्षा ले अथवा अन्य वनवासी का गृहस्थ द्विज से भिक्षा ग्रहण कर ले अथवा ग्राम से भिक्षा लाकर वन में बैठे और पत्ते ठीकरे पर हाथ से उठा कर उसके आठ कौर खाय । वानप्रस्थ विप्र इन नियमों या अन्य नियमों का पालन करता हुआ आत्म-ज्ञान के लिए उपनिषदों का मनोयोग पूर्वक स्वध्याय करे । ऋषियों

ब्रह्मदर्शी सन्यासियों और गृहस्थों ने भी देहशुद्धि तथा तप और विद्या की वृद्धि के लिए उपनिषद्-वाक्यों का अभ्यास किया है ॥२५ ३०॥

अपराजितां वास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः ।
आ निपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः ॥३१
आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम् ।
वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ॥३२
वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ॥३३
आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः ।
भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य बर्धते ॥३४
ऋणानि त्रीण्ययपाकृत्य जनो मोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेदमानो व्रजत्यधः ॥३५
अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ।
इष्टवा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥३६

(असाध्य-रोग या अन्य कारणवश) ईशान की ओर मुख करके योगनिष्ठ होता हुआ तथा वायु भक्षण करता हुआ प्राण निकलने तक सरल गति से निरन्तर चलता रहे। महर्षिचर्या वाले अनुष्ठानों में से किसी को करता हुआ जो ब्राह्मण शोक और भय को छोड़कर देह त्याग देता है, वह ब्रह्मलोक में पूजाको प्राप्त होता है। आयु का तीसरा भाग वानप्रस्थ में व्यतीत कर चौथे भाग में सभी संग छोड़कर सन्यास ले। एक आश्रम से दूसरे में जाता हुआ जो जितेन्द्रिय बलिवैश्वदेव यथा अग्निहोत्र आदि नित्य कर्मों से थक कर अन्त में सन्यास लेकर देह छोड़ता है,

वह परलोक में महान् श्रेय को पाता है। तीनों ऋण शोध कर ही चित्त को मोक्ष में लगावे, क्योंकि ऋण-शोधन बिना मोक्ष की इच्छा नरक में पहुँचाने वाली है। विधिवत वेदाध्ययन के पश्चात् पुत्रोत्पादन और यज्ञानुष्ठान करने के पश्चात् मन को चौथे आश्रम में लगाना चाहिए ॥३१-३६॥

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् ।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥३७

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥३८

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥३९

यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यते भयम् ।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥४०

आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः पारिव्रजेत् ॥४१

एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ।
सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते ॥४२

जो द्विज वेदाध्यन पुत्रोत्पादन अज्ञानुष्ठान किये बिना ही संन्यास धारण की इच्छा करता है, वह निकृष्ट गति को पाता है। ब्राह्मण प्राजापत्य यज्ञको शास्त्र विधि से पूर्ण करके स्वयं में अग्नि का समारोपण कर संन्यास लेने के लिए घर से चल दे। जो सब प्राणियों को अभय प्रदान कर घर से चल देता है उस ब्रह्मवादी को तेजोमय लोक मिलता है। जिस द्विज से किसी को किंचित् भी भय नहीं होता, उस देहमुक्त पुरुषको किसी का भी भय नहीं

हो सकता। घर से निकला हुआ पुरुष पवित्र दण्ड-कमण्डलु आदि लेकर किसी से व्यर्थ बात न करता हुआ तथा निकट रखे हुए सुस्वाद भोज्य पदार्थों की इच्छा न करके घूमता रहे। अकेले पुरुष को मोक्ष मिलता जानकर सन्यासी किसी को साथ न रख कर मोक्ष प्राप्ति के लिए अकेला ही रहे, इस प्रकार वह न किसी का त्याग करता है और न किसी से त्यागा जाता है ।३७ ४२॥

अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ।
उपेक्षकोऽसंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥४३

कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता ।
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥४४

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥४५

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥४६

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥४७

क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुद्ध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वाराकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥४८

गृहाग्नि-रहित और ग्रहविहीन होकर रहे रोग आदि की चिंता न करे स्थिरचित्त और मौन रह कर विशुद्ध भाव से ब्रह्म चिंतन करता हुआ आहार के लिए ग्राममें जाय। खप्पर वृक्षमूल मोटा एवं जीर्ण वस्त्र, सहायक साथ न रखना तथा समता-भाव रखना मुक्त पुरुष का लक्षण है। मरने या जीने की कामना न करे, जैसे सेवक स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है, वैसे ही

सन्यासी को काल की प्रतीक्षा करनी चाहिए। भले प्रकार देख कर भूमि पर पाँव रखे वस्त्र से छान कर जल पीवे, सत्य द्वारा छानी हुई बात कहे और शुद्ध मन से काम करे। किसी के द्वारा किये गये अतिवाद को सहन करले किन्तु किसी का अपमान न करे इस शरीर के आश्रम में रह कर किसी से शत्रुता न करे। क्रोध का उत्तर क्रोध से न दे, निन्दक को भी भद्र वाणी में उत्तर न दे सात द्वारों (पंच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि) से ग्रहण किये जाने वाले विषयों की चर्चा से दूर रहे ॥४३-४८॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥४९
न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया।
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥५०
न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः।
आकीर्णं भिक्षुकैर्वान्यैरगारमुपसंव्रजेत् ॥५१
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥५२
अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च।
तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥५३
अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा।
एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥५४

आत्मचिन्तन में लगा रहे, योगासन लगाकर बैठे किसी वस्तु में मोह न रखे, विषयेच्छा से पृथक रहे तथा शरीर मात्र की सहायता से मोक्ष सुख की कामना रखकर विश्वभ्रमण करे। उत्पात, निमित्त, नक्षत्र के योगायोग आदि का फल-अफल कह

कर या नीति और शास्त्र की बात कह कर भिक्षा कभी न ले। तपस्वी, ब्राह्मणों, चिड़ियों, कुत्तों अथवा भिक्षुकों से भरे हुए घर वाले गृहस्थ के यहाँ भिक्षा के लिए न पहुँचे। सिर के बाल, दाढ़ी, मूँछ और नखों को कटावे, भिक्षापात्र और दण्ड कमण्डलु साथ रखे तथा किसी भी जीव को दुःख दिये बिना नित्यप्रति भ्रमण करे संन्यासियों के भिक्षापात्र छिद्र-रहित तथा किसी धातु के न हों, उन पात्रों की शुद्धि चमस के समान जल से ही कहीं है। सन्यासी का भिक्षापात्र कद्दू के फल का, काष्ठ का, मिट्टी या वंदल का बना हो, यह स्वायंभुव मनु का कथन है।४९-५४।

एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे।
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥५५
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भूक्तवज्जने।
वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥५६
अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत्।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥५७
अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः।
कभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपिबद्ध्य ते ॥५८
अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च।
ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्तयेत् ॥५९
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥६०

भिक्षा केवल एक बार माँगे, अधिक विस्तृत भिक्षा न माँगे, क्योंकि अधिक भिक्षा खाने में आसक्ति से विषयों में भी आसक्ति हो सकती है। रसोई का धुँआ भी रहे, मूसल का शब्द न होता

हो रसोई की अग्नि बुझ चुकी हो, सभी भोजन कर चुके हों, जूठे पात्र पृथक, रखे जा चुके हों, तब सन्यासी भिक्षा के लिए गृहस्थ घर में नित्य भिक्षा न मिले तो विषाद न करे और मिल जाय तो हर्षित न हो, प्राण-यात्रा मात्र के लिए ही भिक्षा ले तथा दण्ड-कमण्डलु में भी आसक्त न हो। पूजित होकर भिक्षा लेने को हर समय अनुचित माने, क्योंकि पूजित होकर भिक्षा लेने वाला सन्यासी मुक्त होता हुआ भी बन्धन में पड़ता है। अन्य भोजन और एकान्त में रहकर विषयों द्वारा आकर्षित होने वाला इन्द्रियों को संयम में रखे। इन्द्रिय निग्रह राग-द्वेष का त्याग और जीवों की अहिंसा से सन्यासी मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी होता है ।।५५-६०।।

अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः ।
निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ।।६१

विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगं च तथाऽप्रियैः ।
जरया चाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ।।६२

देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भे च संभवम् ।
योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ।।६३

अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ।
धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ।।६४

सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः ।
देहेषु च समुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ।।६५

दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ।।६६

मनुष्यों के कर्मदोष उत्पन्न गति, नरक में पतन और यम-लोक की यातनाओं का विचार करे। प्रियजनों का वियोग,

अप्रियों का संयोग, वृद्धावस्था में होने वाली क्षीणता तथा व्याधि दुःख रूपी परिणामों पर विचार करे। जीवात्मा का शरीर से निकलना, गर्भ में पुनः प्रविष्ट होना और असंख्य कोटि योनियों में भ्रमण करना स्वधर्म के दोषों का ही फल है। देहधारियों के सभी दुःखों की उत्पत्ति अधर्म से तथा अक्षय सुख की प्राप्ति धर्म से होती है। योग से ईश्वर की सूक्ष्मता का अनुभव करे तथा कर्मदोष से श्रेष्ठ या निकृष्ट देहों में जन्म होने के विषय में सोचे। कोई किसी आश्रम में रह कर किसी दोष से दूषित हो जाय वह पुरुष भी सब जीवों को समान रूप से देखता हुआ धर्म का अनुष्ठान करे, किसी आश्रम के चिन्ह विशेष ही उस आश्रमधर्म के कारण नहीं हो सकते ॥६१-६६॥

फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥६७

संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा ।
शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥६८

अह्ना रात्र्या च याञ्जन्तून्हिनस्त्यज्ञानतो यतिः ।
तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान्षडाचरेत् ॥६९

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः ।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥७०

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
यथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥७१

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥७२

निर्मली-फल जल को स्वच्छ करता है, किन्तु उसके नाम लेने मात्र से जल स्वच्छ नहीं हो जाता शरीर ।ड़ित

तो भी जीवों की रक्षा के लिए, दिन हो या रात्रि सदैव देखकर ही पृथिवी पर पाँव रखे। अनजाने में ही दिन या रात्रि में संन्यासी से क्षुद्र जीवों की जो हिंसा हो जाती है, उस पाप से छूटने के लिए स्नान करके छः प्राणायाम करे। जो कोई ब्राह्मण व्याहृति और प्रणव के सहित विधिवत तीन प्राणायाम करे तो यह उसके लिए परम तप ही हैं। जैसे अग्नि में तपने से धातुओं का मैल जम जाता है, वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रिय-दोष भस्म हो जाते हैं। प्राणायाम से रागादि दोष, धारणा से पाप, प्रत्याहार से ससर्ग और ध्यान से अनैश्वर्य-गुणों को नष्ट करे। ६७-७ ः

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः।
ध्यानयोगेन सपदयेद्गतिमस्यान्तरात्मनः ॥७३

सम्यदग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबद्धयते।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥७४

अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्मभि।
तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥७५

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशणितलेपनम्।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥७६

जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्।
रजस्वलमवित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥७७

नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा।
तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्रद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥७८

अज्ञानियों के लिए जानने में अत्यन्त कठिन जीवात्मा का उच्च या निम्न योनियों में पड़ने का कारण जानने के लिए उसे ध्यान योग से देखे। ब्रह्म का भले प्रकार साक्षात्कार किया

हुआ पुरुष कर्म-बन्धन में नहीं पड़ता, किन्तु ब्रह्मदर्शन से वंचित ही सांसारिक वन्धनों में पड़ा रहता है। अहिंसा, इन्द्रिजय, वैदिक कर्मानुष्ठान एवं घोर तपश्चर्या, से साधक को ब्रह्मपद मिलता है। जिस देहरूपी घर का खम्भा अस्थि है,जो स्यानुरूपी रस्सी से बँधा है, जिस पर रक्त मांस लिपा और चमड़ा मढ़ा है, जो मलमूत्र और दुर्गन्ध से भरा जरा और शोक से आक्रान्त, रोगों का घर तथा भूख प्यास से व्याकुल रहने वाला, भोगाकांक्षी एवं क्षणभंगुर है, इस प्रकार के भूतावास को त्याग ही दे। जैसे वृक्ष नदी तट को और पक्षी वृक्ष को त्याग देता है, वैसे ही संन्यासी इस देह का त्याग करके संसार-दुःख रूपी ग्राह से छूट जाता है ।।७३-७८।।

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ।
विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम् ।।७९

यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः ।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ।।८०

अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा सङ्गाञ्छनैः शनैः ।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ।।८१

ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम् ।
न ह्यनध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुते ।।८२

अभियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च ।
आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ।।८३

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम् ।
इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ।।८४

ब्रह्मज्ञानी अपने हितैषियों में अपना पुण्य और अपने अहित चिन्तन सम्बन्धों में पाप छोड़कर ध्यान योगके द्वारा सनातन ब्रह्म

को प्राप्त होता है। पारमार्थिक भाव से विषयों को सदोष देख कर जब उनसे विरक्ति होती है तब वह इस लोक में सुख और परलोक में शाश्वत मोक्ष पाता है। सभी आसक्तियों को शनैः शनैः छोड़कर और सब द्वन्द्वों से मुक्त होकर वह ब्रह्मलीन हो जाता है पहिले जो कहा है, वह आत्मध्यान से सिद्ध होता है, इस आध्यात्मिक विषय का न जानने वाला ध्यानात्मक क्रिया का फल प्राप्त नहीं करता। यज्ञ और दैव विषयक वेदमन्त्रों और वेदान्त सम्मत आध्यात्मिक विषयों का सदा चिन्तन करे। यह वेदरूप ब्रह्म वेदार्थ से अनभिज्ञों को भी गति तथा स्वर्ग और मोक्ष की कामना वाले विज्ञों की भी शरण है ॥७९-८४॥

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ।
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥८५

एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां नियतात्मनाम् ।
वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत ॥८६

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
एते गृहस्थ प्रभावाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥८७

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः ।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥८८

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः ।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्ति हि ॥८९

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्तिथिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥९०

इस क्रमयोग से जो द्विज सन्यासाश्रम का आश्रय लेता है, वह पापों से मुक्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है। संयतात्मा

सन्यासियों का यह धर्म मैंने कहा है, अब वेद-सन्यासियों का धर्म कहता हूँ। ब्रह्मचारी, गृहस्थ वानप्रस्थ और सन्यासी, यह चारों आश्रम पृथक् होते हुए भी गृहस्थाश्रम से ही प्रकट हुए हैं। यह चारों आश्रम क्रम पूर्वक शास्त्रविधि से अनुष्ठित हों तो अनुष्ठाता विप्रको परमप्रद प्राप्त कराते हैं। सभी आश्रमोंमें वेद एवं स्मृति द्वारा कही हुई विधि का पालन करने वाला गृहस्थ श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि वही तीनों आश्रमों का पालन करता है। जैसे सभी नद-नदी समुद्र में आश्रय प्राप्त करते हैं, वैसे ही सब आश्रम गृहस्थाश्रम में ही आश्रय पाते हैं ॥८५-९०॥

चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः ।
दशलक्षको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥९१

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥९२

दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥९३

दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः ।
वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संयसेदनृणो द्विजः ॥९४

इन चारों आश्रमों में स्थित द्विज सदैव प्रयत्न-पूर्वक दश प्रकार के धर्मों का सेवन करें। सन्तोष, क्षमा, दम, अपरिग्रह, पवित्रता, इन्द्रिय, संयम, बुद्धि, विद्या सत्य अक्रोध—यह दस लक्षण धर्म के हैं। जो विप्र धर्म के इन दश लक्षणों को समझा कर उसका पालन करते हैं, वे परमगति को पाते हैं। समाहित चित्त से दस प्रकार के धर्मों का पालन करने वाला द्विज विधिवत वेदान्त का श्रवण करता हुआ सन्यास ग्रहण करे ॥९१-९४॥

संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानानुदन् ।
नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् ॥९५

एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरभोऽस्पृहः ।
संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥९६

एष वाऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ।
पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्मं निबोधत ॥९७

सब कर्मों और कर्मदोषों को त्याग कर निश्चल चित्त से वेदाभ्यास करता हुआ सब भार पुत्रों को देकर निश्चित भाव से घर पर रहे। इस प्रकार (वेदसंन्यास द्वारा) कर्मों से सन्यास लेकर, आसक्ति रहित चित्त से आत्म साधन में संलग्न रहता हुआ पुरुष संन्यास के द्वारा पापों का क्षय करके परमगति को प्राप्त होता है। ब्राह्मण के चार प्रकार के यह आश्रम धर्म कहे गये जो कि परलोक में अक्षय पुण्य-फल प्रदान करते है.अव राज-धर्म कहेंगे ॥९५-९७॥

॥ छठवाँ अध्याय समाप्त ॥

★★★

सातवां अध्याय

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ।
संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ॥१

ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि ।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥२

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात् ।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥३

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥४

यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ।
तस्मादभिवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ॥५

तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च ।
न चैन भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ॥६

राजा के धर्म और आचार राज्य की उत्पत्ति और उसको परमसिद्धि जैसे होती है, वह कहता हूँ। यज्ञोपवीत से संस्कृत क्षत्रिय राजा सब प्रजाजनोंकी न्यायपूर्वक रक्षा करे। इस जगत्में राजा के अभाव में सर्वत्र हाहाकार होने लगा तब लोक रक्षा के लिए ईश्वर ने राजा को बनाया। इन्द्र, पवन, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र, कुबेर–इन आठों का सारांश लेकर राजा की रचना की। इन इन्द्रादि देवताओं के अंश से राजा की उत्पत्ति होती है, इससे वह अपने तेज से सब जीवों को वशीभूत रखता है। सूर्य के समान ही वह नेत्र और मन को तपाता है, इसलिए

विश्व में कोई भी उसके समक्ष नेत्र उठाकर देख नहीं पाता ॥१-६॥

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट् ।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्र भावतः ॥७

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥८

एकमेव दहत्यग्निर्नरं दुरुपसर्पिणम् ।
कुलं दहति राजाग्निः सपशुद्रव्यसंचयम् ॥९

कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः ।
कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः ॥१०

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे ।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सह ॥११

तं यस्तु द्वेष्टि सम्मोहात्स विनश्यत्यसंशयम् ।
तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः ॥१२

वह अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र में से जिसका रूप जब चाहे तभी धारण करता है राजा बालक हो तब भी उसे सामान्य मनुष्य समझ कर तिरस्कृत न करे क्योंकि वह मनुष्य रूप में कोई विशेष देवता ही प्रतिष्ठित होता है। अग्नि में जा गिरता है, वही एक जलता है, किन्तु राजा की क्रोधाग्नि अपराधी को पशु-द्रव्य आदि के सहित पूर्णतया भस्म कर देती है। राजा स्वशक्ति देश, काल और कार्य की भले प्रकार बार-बार आलोचना करके धर्मकी सिद्धि के लिए अनेक रूप रखता है। जिसकी प्रसन्नता में लक्ष्मी, पराक्रम में विजय और क्रोध में काल का निवास है, वह राजा सब तेजो से सम्पन्न होता है, जो व्यक्ति अज्ञानवश राजा से द्रोह करता है,

वह अवश्य नष्ट हो जाता है, क्योंकि उसके क्षयार्थ राजा अपने मन को शीघ्र ही प्रेरित करता है ॥ :१२॥

तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवस्येन्नराधिपः ।
अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत् ॥१३
तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः ॥१४
तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्नचलन्ति च ॥१५
त देशकालौ शक्ति च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः ।
यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्तिषु ॥१६
स राजा पुरुषो दंडःस नेता शासिता च सः ।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥१७
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्डएवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥१८

इसलिए वह राजा सज्जनों के लिए जो इच्छित धर्म और दुष्टोंके लिए जो अनिच्छित धर्म निश्चित करता है, उसका उल्लघन न करे। उस राजा का कार्य बनाने के लिए ईश्वर ने सब जीवों के रक्षक, ब्रह्मतेज से सम्पन्न धर्मरूप दण्ड को पहिले बनाता। जिस दण्ड के भयसे सब चराचर जीव सुख प्राप्त करते हैं और स्वधर्म से विचलित नहीं होते। देश, काल, दण्डशक्ति एव अपराधानुसार दण्ड आदि के शास्त्रीय ज्ञान का तत्वपूर्वक विचार करके अपराधियों के लिए यथायोग्य दण्ड निश्चित करे। तथार्थ में वही दण्ड राजा, पुरुष, नेता और शासक है तथा वही चारों आश्रमों का प्रतिभू कहा जाता है। दण्ड सब प्रजाओं का

शासक, और रक्षक है, वही राक्षसों के सो जाने पर जंगा रहता है, इसलिए विज्ञजन दण्ड को ही धर्म कहते हैं ॥१३-१८।

समीक्ष्य स धृतः सस्यक्सर्वा रञ्जयति प्रजाः ।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥१९

यदि न प्रयेद्राजा दण्डं दश्येष्वतन्द्रितः ।
शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन्दुर्बलान्बलवत्तरा ॥२०

अद्यात्काकः पुरोडाशं श्वा च लिह्याद्धविस्तथा ।
स्वाम्यं च न स्यात्कस्मिश्चित्प्रवर्तेताधरोत्तरम् ॥२१

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः ।
दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते ॥२२

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतगोरगाः ।
तेऽपि भोगाय कल्पते दण्डेनैव निपीडिताः ॥२३

दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः ।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात ॥२४

विचारपूर्वक प्रदत्त वह दण्ड सब प्रजाओं को प्रसन्नताप्रद है किन्तु अविचारयुक्त दण्ड सब प्रकार से नाश करता है। यदि आलस्य को त्याग कर राजा दण्डनोय को दण्ड न दे तो बलवान व्यक्ति निर्बल व्यक्तियों को काँटेमें पकड़ी गई मछलियोंके समान भूनकर भक्षण करलें। दण्ड न देने से काक भी यज्ञ का पुरोडाश ले जाय और श्वान हवि का भक्षण कर जाय किसी का कुछ अधिकार न रहे और नीच व्यक्ति महान बन जांय। सम्पूर्ण विश्व दण्ड के अधीन है, शुद्ध सज्जन तो दुर्लभ ही हैं दण्धभय से ही विश्व के सब जीव अपना-अपना आवश्यक भोग भोगते हैं। देव दानव, गन्धर्व, राक्षस पक्षी और नाग-यह सब दण्डभय से त्रस्त होकर ही नियम में रहते हैं दण्ड के उचित प्रयोग न होनेसे सभी

वर्ण दूषित हो जांय, धर्म के सब बन्धन टूट जाय और सब में विद्रोह उत्पन्न हो जाय ।।१९-२४।।

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ।।२५
तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ।।२६
तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते ।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ।।२७
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः ।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ।।२८
ततो दुर्गं च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम् ।
अन्तरिक्षगतांश्चैव मुनीन्देवांश्च पीडयेत् ।।२९
सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ।।३०

यहाँ पापनाशक कृष्णवर्ण और लोहित नेत्रयुक्त दण्ड गतिशील होता है, उसी दण्ड का विधान करने वाला राजा न्यायपूर्वक विधान करे तो प्रजा दुःखित नहीं होती । मनीषियों ने राजा को दण्ड का जानने वाला कहा है । उचित दण्ड का विधान करता हुआ राजा धर्म, अर्थ काम से बढ़ता है किन्तु कामासक्त विषम और क्षुद्र राजा उसी दण्ड से नष्ट होजाता है दण्ड ही महान तेज है, अज्ञानी उसे कठिनाई से धारण कर सकता है धर्म भ्रष्ठ राजा को दण्ड बान्धवादि के सहित नष्ट कर डालता है । वह दण्ड दुर्ग देश, लोक चराचर जीव एवं अन्तरिक्ष में विद्यमान ऋषि-देवतादि के उत्पीडन में समर्थ है । जो राजा मन्त्री आदि सहायकों

से रहित मूर्ख, लोभी, शास्त्रविहीन और विषयासक्त है, वह दंड का प्रयोग न्यायपूर्वक नहीं कर सकता ।।८-३०।।

शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा ।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ।।३१

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्माद्भृशदण्डश्च शत्रुषु ।
सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ।।३२

एवंवृत्तस्य नृपतेः शिलोञ्छेनापि जीवतः ।
विस्तीर्यते यशो लोके तैलबिन्दुरिवाम्भसि ।।३३

अतस्तु विपरीतस्य नृपतेरजितात्मनः ।
संक्षिप्यते यशो लोके घृतबिन्दुरिवाम्भसि ।।३४

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामानुपूर्वशः ।
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिताः ।।३५

तेन यद्यत्सभृत्येन कर्तव्यं रक्षता प्रजाः ।
तत्तद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।।३६

जो राजा पवित्र, सत्यनिष्ठ, शास्त्रानुसार आचरण करने वाला बुद्धिमान और श्रेष्ठ सहायकों से सम्पन्न हो वही दण्ड का प्रयोग कर सकता है । राजा स्वराष्ट्र में न्याय पूर्वक शासन करे शत्रुओं को कठोर दण्ड दे स्नेही मित्रों से छल-रहित व्यवहार और ब्राह्मणों से क्षमाभाव रखे । ऐसे आचरण वाला राजा शिलोञ्छवृत्ति से जीवनयापन करे तो भी विश्व में उनका यश जल में तेल की बूंदे के समान फलता है । इसके विपरीत आचरण वाले असंयमी राजा का यश घी की बूंदों के समान संसार में संकुचित हो जाता है अपने-अपने धर्म में विद्यमान सब वर्णों और आश्रमों की रक्षा के लिए ब्रह्मा ने राजा को बनाया भृत्यों

और प्रजाओं की रक्षा करते हुए उस राजा का कर्त्तव्य मैं यथा क्रम कहता हूँ ॥३१-३६॥

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः ।
त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषां च शासने ॥३७
वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन् ।
वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते ॥३८
तेभ्योऽधिगच्छेद्विनयं विनीतात्मापि नित्यशः ।
विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित् ॥३९
बहवोऽविनयान्नष्टा राजानः सपरिच्छदाः ।
वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ॥४०
वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः ।
सुदाः पैजवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च ॥४१
पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेव च ।
कुवेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥४२

नित्य प्रातःकाल उठ कर राजा तीनों वेदों के अर्थज्ञाता और नीतिशास्त्र पारंगत श्रेष्ठ ब्राह्मणों की सेवा करता हुआ उनकी आज्ञा में चले। पवित्रात्मा वेदविज्ञ तथा आयु और तप में वृद्ध ब्राह्मणों को नित्य सेवा करे, क्योंकि सेवारत राक्षसों द्वारा भी सर्वत्र पूजित होता है। विनीतात्मा राजा विनय की शिक्षा नित्य ग्रहण करे तो वह नाश को प्राप्त नहीं होता। अविनयी होने के कारण अनेक राजा कोष, सेना, वाहनादि के सहित नष्ट हो चुके है और अनेक विनयी पुरुषों ने वन में रहते हुए भी राज्य प्राप्त कर लिया राजा वेन, नहुष, पिजवनपुत्र सुदा सुमुख तथा निमि अविनय से ही नाश को प्राप्त हुए। विनय की पृथु और मनु ने

राज्य कुबेर ने धनैश्वर्य तथा विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया ।।३७ ४२।।

त्रैविद्येभ्यस्त्रोविद्यांदण्डनीतिं च शाश्वतीम् ।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यांवार्तारम्भांश्चलोकतः ।।४३
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति दशे स्थापयितुं प्रजाः ।।४४
दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।।४५
कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनेव तु ।।४६
मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाटया च कामजो दशको गणः ४७
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डजं पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ।।४८

त्रिवेदियों से वेद, सरातन दंडनीति, तक आत्मविद्या एवं व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करे । इन्द्रियों को जीतने का सदैव यत्न करे, क्योंकि जितेन्द्रिय राजा की प्रजाओं को वश में रख सकता है । काम से दस और क्रोध से आठ व्यसन उत्पन्न होते हैं, जो छोड़ दे । कामोत्पन्न व्यसनों में आसक्त राजा अर्थ, धर्म से हीन होता है तथा क्रोधात्पन्न व्यसनों में आसक्त राजा अपने देह को ही नष्ट कर बैठता है । आखेट, द्युत, दिवाशयन परदोष, वर्णन नारी-सहवास, मद्यवास, नृत्य, गान,वाद्य औप वृथाभ्रमण—यह दस कामजन्य व्यसन हैं । चुगली, साहसकर्म, द्रोह, ईर्ष्या, असूया

अर्थदूषण कठोर वचन और प रुष्य (क्रूरता) —यह आठ क्रोधजन्य व्यसन हैं ॥५३-५८॥

द्वयोप्येत्योर्मूलं यं सर्वे कत्रयो विदुः ।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥४९
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥५०
दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥५१
सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः ।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् ॥५२
व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्ट मुच्यते ।
व्यसुन्यधोधो व्रजति स्वर्यात्यत्यव्यसनो मृतः ॥५३
मौलाञ्छास्त्रविदःशूरांल्लब्धलक्षान्कुलोद्भवान्।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥५४

विद्वानों ने इन दोनों प्रकार के व्यसनों का मूल लोभ कहा है उस लोभ को प्रयत्न से जीते कामजन्य व्यसनों में मद्यपान द्युत स्त्रीसहवास-और शिकार यथाक्रम अत्यन्त दुःखदायी है । क्रोध-जन्य व्यसनों में दण्डप्रहार क्रूर भाषण और धन का अपहरण यह तीनों यथाक्रम अधिक दु;ख देने वाले है । इन मद्यपानादि सात व्यसनों में उत्तरोत्तर व्यसन से पूर्वोक्त को अधिक कष्टकर समझो । मृत्यु और व्यसन में व्यसन ही विशेष कष्टप्रद है क्योंकि व्यसनी पुरुष निरन्तर नीचे गिरता जाता तथा अव्यसनी स्वर्ग प्राप्त करता है वंश परम्परागन से सेवा करने वाले शास्त्रज्ञानी शूर रणकुशल शुद्ध कुल वाले एवं परीक्षा किए हुई सात-आठ मन्त्रियों की नियुक्ति राजा को करनी चाहिए ॥४९-५४।

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किं तु राज्यं महोदयम् ॥५५
तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं संधिविग्रहम् ।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥५६
तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक् ।
समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ॥५७
सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता ।
मंत्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥५८
नित्यं तस्मिन्समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत् ।
तेन सार्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समारभेत् ॥५९
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्राज्ञानवस्थितान् ।
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान् ॥६०

क्योंकि सुसाध्य कर्म भी एक से सम्पादित होना कठिन होता है तब महान् फल वाले राजकाज को सहायकों से रहित राजा एकाकी कैसे चला सकता है ! राजा उन मन्त्रियों से नित्य सामान्य सन्धि, विग्रह, स्थान, समुदय, रक्षा एवं प्राप्त वस्तुओं का सत्यपात्रों में अर्पण करने का विचार-विमर्श करे । उन मन्त्रियों में सब का पृथक्-पृथक् अभिप्राय जानकर फिर सबका सम्मिलित मत ले और तब जिसमें अपना हित प्रतीत हो वैसा कार्य करे । मन्त्रियों में भी जो ब्राह्मण विशेष विद्वान् और प्रतिभा सम्पन्न हो उसके साथ राजा संधि-विग्रहादि छः गुणों से युक्त मन्त्रणा करे । उन ब्राह्मण मन्त्री पर सदैव विश्वास करता हुआ राजा उसे सब कार्य भार सौंपता हुआ कार्यारम्भ करे । तथा पवित्र शुद्ध स्वभाव के, मेधावी, सुव्यवस्थित, न्याय से उपार्जन करने वाले परखे हुए अन्य मन्त्रियों की भी नियुक्ति करे ।५५-६०।

निर्वर्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता: नृभि: ।
तावतोऽतन्द्रितान्दक्षान्प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥६१

तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान्दक्षान्कुलोद्गतान् ।
शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने ॥६२

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥६३

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान्देशकालवित् ।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशष्यते ॥६४

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया ।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ ॥६५

दूत एव हि संधत्ते भिनत्येव च संहतान् ।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन मनवाः ॥६६

जितने पुरुषों से आवश्यक कार्य सम्पन्न हो सकते हों उतने निरालस्य कार्य में दक्ष एवं विशिष्ट व्यक्तियों की नियुक्ति करे। उन मन्त्रियों में जो शूर, दक्ष श्रेष्ठ कुल वाले, सदाचारी हों उन्हें खान एवं अन्नभण्डार आदि पर नियुक्त करे तथा भीरु स्वभाव के पुरुषों को अन्तःपुर के सामान्य कार्यों पर लगावे। सर्वशास्त्रदिशारद, इंगित, आकार और चेष्टा से तनोभाव समाझने वाला पवित्र, चतुरतथा कुलीन पुरुष को दूत नियुक्त करे। सब पर प्रेम करने वाला, सदाचारी, दक्ष, मेधावी, देशकाल का ज्ञाता, रूपवान, निर्भीक तथा बोलने में चतुर राजदूत राजा की प्रशँसा का पात्र होता है. दण्ड सेनाध्यक्ष अमात्य के अधीन विनयरूपी क्रिया दण्ड के अधीन कोश और राज्य राजा के अधीन तथा सन्धि विग्रह दूत के आधीन है। दूत ही बिछुड़े हुओं

को मिलाता और मिले हुओं में भेद डालता है, वही शत्रु के जन वल को छिन्न भिन्न करने का कार्य करता है ।।६१-६६।।

स विद्यादस्य कृत्येषु निगूढेङ्गितचेष्टितैः ।
आकारमिङ्गितं चेष्टां भृत्येषु च चिकीर्षितम् ।।६७
बुद्ध्वा च सर्वं तत्वेन परराजचिकीर्षितम् ।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ।।६८
जाङ्गलं सस्यसंपन्नमार्यप्रायमनाविलम् ।
रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत् ।।६९
धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा ।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ।।७०
सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् ।
एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते ।।७१

कार्यो में नियुक्त सेवकों के हाव भाव से उनके इंगित चेष्टा आदि को जाने तथा सेवकों के प्रति राजा का कैसा व्यवहार है, यह भी समझ ले। प्रतिपक्षी राजा के अभिप्राय को समझ कर ऐसा उपाय करे जिससे कि अपने ऊपर कोई संकट उपस्थित न हो जाय। जो देश धान्यादि से सम्पन्न धार्मिक जनों से परिपूर्ण रोगों या उपद्रवों के भय से रहित पुष्प-फल-लतादि से रमणीय, विनीत सामन्तों से युक्त एवं सुलभ जीविका वाले देश में राजा निवास करे। राजा धनुदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग, वृक्षदुर्ग नृदुर्ग या गिरिदुर्ग के आश्रम में रह कर नगर बनावे। उक्त छःप्रकार के दुर्गों में गिरिदुर्ग अनेक गुणों के कारण श्रेष्ठ होता है, इसलिए उसी का आश्रय लें ।।६७-७१।।

तीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्ताश्रयाऽप्सराः ।
त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवङ्गमनरामराः ।।७२

यथा दुर्गाश्रितानेपान्नोपहिंसन्ति शत्रवः ।
तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥७३

एकः शतं योधयति प्रकारस्थो धनुर्धरः ।
शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते ॥७४
तस्यादायुधसंपन्नं धनधान्येन वाहनैः ।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥७५
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः ।
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥७६

उक्त छः दुर्गो में से प्रथम तीन में क्रमशः मृग, मूषक एवं मगर आदि रहते हैं और शेष तीन में क्रमशः बानर मनुष्य एवं पशु-पक्षी तथा देवगण बास करते हैं। जैसे दुर्ग-आश्रित जीवों को उनके शत्रु हिंसित नहीं कर सकते, वैसे ही दुर्गाश्रित राजा के शत्रु भी उसका कुछ नहीं कर सकते । दुर्ग में स्थित एक धनुधन सौ वीरों से सामना करने में समर्थ हो सकता हैं तथा दुर्ग की एक सौ सेना दस हजार सेना के साथ युद्ध कर सकती है, इसलिए दुर्ग अवश्च बनावे। दुर्ग को शस्त्राधन,धन धान्य, वाहन बाह्मग, शिल्पी यन्त्र, तृण तथा जल से सम्पन्न रखे। ऐसे दुर्ग के मध्य में राजा सब अगों से युक्त खाई प्राकार आदि से सुदृढ़, ॠतुफलों, पुष्पों एवं शूभ्र जल वाले कुओं से परिपूर्ण राजगृह बनवाये ॥७१- ६॥

तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।
कुले महति संभूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥७७
पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजः ।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुंर्युर्वैतानिकानि च ॥७८

यजेत राजा क्रतुभिर्विभैराप्तदक्षिःणै ।
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याभ्दोगान्धनानि च॥७९
सांवत्सरिकमाप्तेश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम् ।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु ॥८०
अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः ।
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कर्याणि कुर्वताम् ॥८१
आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत् ।
नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ॥८२

उस राजगृह में रह कर राजा उच्च कुल की सजातीया शुभ्रलक्षणा और सुन्दर गुण युक्त कन्या से विवाह करे । पुरोहित की नियक्ति और ऋत्विजों का वरण करे. जो कि राजा के शन्तिकर्म आदि कार्य गृ ःरूक्त के अनुसार करें । धर्म के उद्देश से बहु दक्षिणा वाले विविध प्रकार के यज्ञों को करता हुआ ब्राह्मण को भोग्य पदार्थ और धन प्रदान करे । शास्त्र वचन पर ध्यान देता हुआ राजा मन्त्रियों के द्वारा प्रजाओं से कर ले तथा उनमें पितृवत व्यवहार करे । विभिन्न कार्यों को देख-भाल के लिए विभिन्न कार्यदक्ष पुरुषों को अध्यक्ष वनावे । गुरुकुल से लौटे हुए ब्राह्मणों का पूजन करे, क्योंकि राजाओं का ब्राह्मणों में प्रतिष्ठित यह धन अक्षय होता हैं ॥७७-८२॥

न तं स्तेना न चामित्रा हरन्ति न च नश्यति ।
तस्माद्राज्ञा निधातव्यो ब्रह्माणेष्वक्षयो निधिः ॥८३
न स्कन्दते न व्यथते न विनश्यति कर्हिचित् ।
वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥८४

समममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।
प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ।।८५

पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्दधानतयेव च ।
अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्य फलमश्नुते ।।८६

समोत्तमाधमै राजा त्वाहूत. पालयन्प्रजाः ।
न निवर्तेत संग्रामात्क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ।।८७

संग्रामेत्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पालनम् ।
शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ।।८८

उस धन का हरण चोर या शत्रु नहीं कर सकते, वह कभी नष्ट भी नहीं हो सकता इसलिए राजा उस धन को ब्राह्मणों में अवश्य स्थापित करे। अग्नि के हवन की अपेक्षा ब्राह्मण के मुख में किया हुआ यह हवन श्रेष्ठ हैं क्योंकि यह हवि इधर-उधर बिखरती सूखती या नष्ट नहीं होती ब्राह्मणेतर को प्रदत्त दान के फल से दुगुना ब्राह्मण का कर्म न करने, किन्तु ब्राह्मण बनने वाले को देने से होता है, विज्ञ ब्राह्मण को देने से लक्षगुणा और वेदपारंगत को देने से अनन्त होता है। पात्र की विशेषता और श्रद्धा के अनुपात से दान का फल भी परलोक में कम या अधिक मिलता है। समबल, हीन बल या अधिक वल वाले राजा द्वारा युद्ध का निमन्त्रण मिलने पर प्रजापालक राजा क्षात्रधर्म का स्मरण करता हुआ संग्राम से मुख न मोड़े युद्ध में पीठ न दिखा ना प्रजाओं का पालन करना और ब्राह्मणों की सेवा करना यही राजाओं के लिए श्रेयस्कर है ।।८३-८८।।

आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो मपोक्षितः ।
युध्यमाना: परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ।।८

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून ।
न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ॥९०
न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् ।
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीतिवावादिनम् ॥९१
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम् ।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥९२
नायुधव्यसनप्राप्तं मार्तं नातिपरीक्षितम् ।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥९३
यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः ।
भर्तुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥९४

युद्ध में परस्पर की स्पर्धा करने वाले परस्पर में मारने के इच्छुक और यशाशक्ति युद्ध करने वाले राजा युद्ध में पीठ न दिखाकर सीधे स्वर्ग में गमन करते हैं। युद्ध में कूट आयुधों से कर्णिका के आकार के समान झलक वाले विष बुझे एवं अग्नि दीप्त शरों से शत्रु का हवन करे। सोते हुए, कवच और शिर स्त्राण से रहित, नग्न, निःशस्त्र हथियार डाले हुए युद्ध को दर्शक के समान देखते हुए या अन्य से लड़ते हुए को न मारे। टूटे हुए शस्त्र वाले, शोकाकुल देह में अनेक शस्त्रों से आहत, भीत युद्ध से भागते हुए शत्रु को क्षात्रधर्म का स्मरण करता हुआ नमारे। भयवश युद्ध में पराङ् मुख जो सैनिक शत्रुसेना द्वारा मारा जाता है, वह अपने स्वामी के पापों का भार अपने सिर पर ले लेता है ॥८९-९०॥

यच्चास्य सुकृतं किंचिदमुत्रार्थमुपार्जितम् ।
भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥९५

रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्स्त्रियः ।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत ॥९६
राज्ञश्च दद्यु रुद्धारन्नित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥९७
एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः सनातनः ।
अस्माद्धर्मान्न च्यवेत क्षत्रियो घ्नन्रणे रिपून् ॥९८
अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ।
रक्षितं बर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥९९
एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम् ।
अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥१००

जो सैनिक संग्राम में पीठ दिखाकर शत्रु के द्वारा मारा जाता हैं, उसका परलोक के लिए संचित फल पुण्य उसके स्वामी को मिलता हैं । रण, अश्व, हाथी, छत्र, धन, धान्य, पशु, स्त्री, तथा कुप्यादि एवं सब द्रव्यों में से जो जिस वस्तु को जीत लावे, वह उसी की होती है । सैनिकों का कर्त्तव्य है कि युद्ध में जीते हुए हाथी, अश्व रथ आदि राजा को समर्पित कर दे, यह वेद-वचन है, सब वीरों द्वारा मिल कर जीते हुए धन को राजा सैनिकों में वितरण कर दे । यह अनिंद्य सनातन वीरधर्म है, युद्ध शत्रु का वध करने वाला क्षत्रिय इस धर्म से भ्रष्ट न हो । अहर्त को प्राप्त न होने वाले भूमि रत्नादि की प्राप्ति की इच्छा न करे, जीती हुई सम्पति की यत्न सहित रक्षा करे रक्षित धन की वृद्धी का यत्न करे तथा बढ़े हुए धन को सुपात्रों में बांटे । राजा उप युक्त चार बातों को पुरुषार्थ साधन मानता हुआ सावधानी पूर्वक सदैव उनका पालन करे ॥९५-१०० ॥

अलब्धच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ।
रक्षितं वर्धयेद्वृद्धया वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेषु ॥१०१
नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ।
नित्यं संवृतसंवायो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः ॥१०२
नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्विजते जगत् ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत् ॥१०३
अमाययेत्र वर्तेत न कथंचन माया ।
बुद्धय्ेतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः ॥१०४
नास्यं छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्चिद्रं परस्य तु ।
गूहेत्कूर्म इवांगानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥१०५
वकवच्चिन्तयेदर्थान्सहवच्च पराक्रमेत् ।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥१०६

अप्राप्त की सैन्य बल से जीते, जीती हुई सम्पत्ति की देख भाल द्वारा रक्षा करें, रक्षित धन को व्यवसाय द्वारा बढ़ावे और बढ़े हुए धन को सुपात्रों में वितरित करे । सेना को तैयार रखे नित्य पुरुषार्थ दिखावे अपना मंन्त्र गोपनीय रखे और शत्रु के छिद्रों का पता लगाता रहे। जिसकी सेना सदैव उद्यत रहती है उस राजा से सब लोक भयभीत रहता है। इसलिए राजा सैन्य-बल से सब जीवों को वश में रखे। अपने मन्त्रियों से सद्भाव रखे उनसे कपट न करे स्वरक्षा-की व्यवस्थ रखे और शत्रु की माया का पता लगाता रहे ऐसा प्रयत्न करे कि शत्र तो उसके छिद्र को न जान पावे वरन् स्वयं शत्रु के छिद्रों जान ले, कछुआ द्वारा अपने अंगों को छिपाने के समान राजा भी अपने अमात्यादि अंगों को अपने वश में रखे। बगुले के समान शत्रु का धन प्राप्त करने का यत्न करे, सिंह के समान पराक्रम करे शृगाल

के समान अवसर मिलते ही शत्रु का वध कर डाले और शश के समान निकल भागे ॥१०१-१०६॥

एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः ।
तानानयेद्वशं सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः ॥१०७

यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः ।
दण्डेनैव प्रसह्यैतांश्छनकैर्वशमानयेत् ॥१०८

सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः ।
सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ॥१०९

यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति ।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥११०

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।
सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥१११

शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥११२

इस प्रकार विजयमान राजा सामादि उपायों के द्वारा अपने सब वैरियों को वश में करे। यदि शत्रु प्रथम तीन उपाय अर्थात् साम, दाम, भेद से वश में न होता दिखाई दे तो उसमें राज्य पर आक्रमण करके न्यूनाधिक दण्ड देकर वश में करे । सामादि उपायों में विज्ञजन राष्ट्र की अभिवृद्धि के निमित्त साम और दंड की ही प्रशंसा करते है । कृषक जैसे तृण को खोदकर फेंक देता है और धान्य की रक्षा करता है वैसे ही राजा राष्ट्र रक्षा एवं शत्रु-संहार में कटिबद्ध रहे । जो राजा अज्ञानवश अच्छे-बुरे का विचार न करता हुआ अपनी प्रजा को पीड़ित करता है, वह शीघ्र ही अपने राज्य और बांधवों सहित जीवन तक को खो

बैठता हैं। जैसे देह की क्षीणता से प्राणियों के प्राणों का क्षय होता हैं, वैसे ही राजाओं के प्राण प्रजा के सन्तप्त होने से नष्ट होते हैं ॥१०७-११२॥

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ।
सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते ॥११३॥
द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम् ।
तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥११४॥
ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं तथा ।
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ॥११५॥
ग्रामदोषान्समुत्पानान्ग्रामिकः शनकैः स्वयम् ।
शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिने ॥११६॥
विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ।
शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥११७॥
यानि राजदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः ।
अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ॥११८॥

राष्ट्र की रक्षा के लिए सदा यह उपाय करता रहे जो राजा अपने राष्ट्र की भले प्रकार रक्षा करता है, वह सुखी रहता है। दो, तीन पाँच या सौ ग्रामों के मध्य में राष्ट्र रक्षा के लिए रक्षकों की नियुक्ति करे। प्रत्येक ग्राम में एक-एक मुखियानियुक्त करे और उन पर भी दस, बीस, और हजार ग्रामों पर एक-एक अधिकारी नियुक्त करे। ग्राम में उत्पन्न दोष के निवारणार्थ ग्राम का मुखिया दशग्रामाधिपति से कहे वह बीस ग्राम के अधिकारी से तथा सौ गाँव के अधिकारी से तथा सौ गाँव वाला उस हजार गांव के अधिकारी से निवेदन करे। ग्रामवासियों से

नित्यप्रति जो अन्न, पान, ईंधन आदि राजा को दे, वह ग्रामाधिकारी अपनी वृत्ति के निमित्त ले ॥११३-११८॥

दशी कुलं तु भुञ्जीत विंशी पंच कुलानि च ।
ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम् ॥११९
तेषांग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि ।
राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः ॥१२०
नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ।
उच्चैःस्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् ॥१२१
स तामुनपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम् ।
तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥१२२
राज्ञो हि रक्षाधिकृता परस्वादयिनः शठाः ।
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजा ॥१२३
ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः ।
तेषां सर्वस्वमादायं राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥१२४

दशग्रामाधिकारी एक कुल को, बीस ग्रामों का अधिकारी पाँच कुल को, शतग्रामाधिकारी एक ग्राम को और सहस्रग्रामाधिकारी एक सामान्य नगर को राजाज्ञासे अपने निर्वाहार्थ ग्रहण करे। राजा प्रत्येक नगर में सब प्रयोजनों की देख-भाल वाला एक-एक उच्चाधिकारी नियुक्त करे और नक्षत्रों में शुक्रादि ग्रह के समान तेजस्वितापूर्वक रहे। नगराधिकारी को उन सब ग्रामाधिकारियों की देखभाल स्वयं करनी चाहिए तथा गुप्तचरों के द्वारा उन सबसे तथा प्रजाओं के आचरण का पता लगाता रहे। क्योंकि राजा के रक्षाधिकारी भृत्यों में प्रायः परधन हरण करने वाले होते हैं, इसलिए राजा प्रजाओं की उनसे रक्षा करे। जो

पापात्मा अधिकारी कार्याधिकारियों से घूँस लें, उनका सर्वस्व छीन कर राजा उन्हें देश से निर्वासित कर दे॥११९-१२४॥

राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ।
प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्तिं स्थानं कर्मानुरूपतः ॥१२५

पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य वेतनम् ।
षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः॥१२६

क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम् ।
योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करान् ॥१२७

यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम् ।
तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् ॥१२८

यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः ।
तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ॥१२९

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः ।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥१३०

राजा कार्यों में नियुक्त दास-दासियों का कर्मानुसार वृत्ति और पद निश्चित करे । निकृष्ट कार्य करने वाले भृत्य को एक पण और श्रेष्ठ कार्य वाले को छः पण परिश्रमिक. प्रतिमास तक द्रोण अन्न और छः मास में वस्त्र दे । कितनेमें खरीदा-बेचा, कितनी दूर से लाया, खान-पान में कितना व्यय हुआ, माल की रक्षा में कितना व्यय हुआ, इस सब पर विचार करता हुआ राजा व्यापारियों से कर वसूल करे । जिसमें राजा का और व्यापारी तथा कृषकादि का, सभी का लाभ हो, इस पर विचार करके ही देशमें कर लगावे । जैसे जोंक, वत्स और भ्रमर अपने भक्ष्य रूप आहार को स्वल्प ही लेते हैं, वैसे ही राजा भी स्वल्प ही वार्षिक

कर लगावे राजा व्यापारियों से पशु व स्वर्ण के लाभ का पचासवाँ भाग और कृषकों से अन्न का छटा, आठवाँ या बारहवाँ भाग ले ॥१२५-१३०॥

आदादीताथ षड्भागं द्रुममांसमधुसर्पिषाम् ।
गंधौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥१३१

पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वदलस्य च ।
मृन्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममस्य च ॥१३२

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम् ।
न च क्षुधास्य संसीदच्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥१३३

यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा ।
तस्य पि तत्क्षुधा राष्टमचिरेणैव सीदति ॥१३४

श्रुतवृत्ते विदित्वास्य वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ।
संरक्षेत्सर्वतश्चैनं पिता पुत्रमिवौरसम् ॥१३५

सरक्ष्यमाणो राज्ञा यं कुरुते धर्ममन्वहम् ।
तेनायुर्बर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥१३६

वृक्ष, माँस, मधु, घृत, गन्ध, औषधि, रस, पुष्प, फल, मूल, पत्र, शाक, तृण चर्म, बाँस-निर्मित पात्र, मिट्टी और पाषाण के पात्र, इन सब का षष्ठ भाग कर रूप में ले। राजा आपत्काल में भी श्रोत्रिय से कर न ले और यह भी ध्यान रखे कि उसके राज्य का निवासी श्रोत्रिय क्षुधा से पीड़ित न रहे। जिसके राज्य में श्रोत्रिय क्षुधार्त्त होता है उसका वह राज्य भी वैभवहीन होजाता है। राजा उसके शास्त्रज्ञान और अनुष्ठान को जानकर उसकी धर्मवृत्ति नियत करे और पिता द्वारा औरस पुत्र की रक्षा करने के समान उसकी हर प्रकार रक्षा करे। वह श्रोत्रिय राजा द्वारा

रक्षित होकर नित्य धर्म का आचरण करता है, उससे राजा की आयु, धन और राज्य की वृद्धि होती है ॥१३१-१३६॥

यत्किंचिदपि वर्षस्य दापयेत्करसंज्ञितम् ।
व्यवहारेण जीवन्तं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥१३७

कारुकाञ्छिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविनः ।
एकैकं कारयेत्कर्म मासि मासि महीपतिः ॥१३८

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया ।
उच्छिदन्ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ॥१३९

तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्यं वीक्ष्य महीपतिः ।
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमतः ॥१४०

अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्गतम् ।
स्थापयेदासने तस्मिन्खिन्नः कार्येक्षणे नृणाम् ॥१४१

एवं सर्वं विधायेदमितिकर्तव्यमात्मनः ।
युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥१४२

राजा अपने राज्य में अल्प मूल्य के व्यापार से वृत्ति चलाने वालों से स्वल्प कर ले। कारु, शिल्पी, श्रमकादि से कर रूप में एक दिन कार्य करा ले। राजा कर न लेकर अपना और अधिक कर लेकर प्रजा का मूलोच्छेद न करे क्योंकि अपने उच्छेद से अपना और प्रजा के उच्छेद से प्रजा का क्षय होने से दुःख होता है। कार्य के अनुसार ही राजा कोमल या कठोर हो, क्योंकि कार्यानुसार ही कोमल या कठोर होना सर्वं सम्मत है। यदि राजा स्वयं कार्य न करे तो उसे धर्मज्ञ प्राज्ञ, संयतेन्द्रिय, दान्त, कुलीन और श्रेष्ठ मन्त्री को अपना कार्य-भार सौंपे। इस प्रकार राजा स्वकार्यों का प्रबन्ध करके कुशलता और सावधानी से अपनी प्रजा का भले प्रकार पालन करे ॥१३६-१४२॥

विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद्ध्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः ।
संपश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ।।१४३

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् ।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ।।१४४

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ।
हुताग्निर्ब्राह्मणश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम् ।।१४५

तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत् ।
विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ।।१४६

गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ।
अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेद विभावितः ।।१४७

यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः ।
स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः ।।१४८

जिस राजा और अमात्यवर्ग के समक्ष उसकी प्रजा चिल्लाती हुई डाकुओं से लूटी जाती है, वह राजा जीवित नहीं, मृतक के समान है। प्रजापालन क्षत्रियों का परम धर्म है, क्योंकि प्रजाओं से कर रूप फल प्राप्त करने के कारण राजा उस धर्म से बँधा है। राजा रात्रि के पिछले प्रहर जागे और शौचादि से निवृत्त हो तथा संयत चित्त से होम और ब्राह्मण पूजन करने के पश्चात् राजसभा में जाय। उस सभा में उपस्थित प्रजाजनों को दर्शन, भाषण से प्रसन्न करके विदा करने के पश्चात् राजा मन्त्रियों से सन्धि विग्रह आदि विषयों पर मंत्रणा करे। पर्वत, प्रासाद, एकान्त स्थान या वन में जहाँ मन्त्रभेद की आशङ्का न हो वहाँ बैठकर ही मंत्रणा करनी चाहिए। जिस राजा को मन्त्रणा को दूसरे लोग नहीं जान पाते, वह कोशरहित होकर भी सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करता है ।। १४३-१४८ ।।

जडमूकान्धबधिरांस्तैर्यग्योनान्वयोतिगान् ।
स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान्मन्त्रकालेऽपसारयेत् ॥१४९

भिन्दन्त्यवमता मन्त्रं तैर्यग्योनास्तथैव च ।
स्त्रियश्चैव विशेषेण तस्मात्तत्रादृतो भवेत् ॥१५०

मध्यंदिनेऽर्धरात्रं वा विश्रान्तो विगतक्लमः ।
चिन्तयेद्धर्मकामार्थान्सार्ध तैरेक एव वा ॥१५१

परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम् ।
कन्यानां संप्रदानं कुमाराणां च रक्षणम् ॥१५२

दूतसंप्रेषणं चैव कार्यशेषं तथैव च ।
अन्तःपुरप्रचारं च प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥१५३

कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः ।
अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥१५४

जड़, मूक, अंध, बधिर, मानव वाली वाला पक्षी, अति वृद्ध, स्त्री, म्लेच्छ, रोगी एवं अंगहीन को मंत्रणा के समय हटा दे। क्योंकि यह लोग अपमानित होने पर मंत्रणा को प्रकट कर देते हैं तथा शुकसारिकादि पक्षी और स्त्रियाँ भी बहकावे में आकर रहस्य खोल देते हैं। मध्यदिन या अर्द्ध रात्रि में जब चित्त शान्त तथा देह क्लेशरहित हो तब राजा एकाकी अथवा मंत्रियों के साथ धर्म अर्थ और काम का चिन्तन करे। परस्पर विरुद्ध धर्मों के सम्पादन, कन्याओं का दान और कुमारों की रक्षा का उपाय करे। परराष्ट्र में दूत की नियुक्ति, प्रारम्भ कार्य की पूर्णता, अन्तःपुर की स्त्रियों पर सतर्क दृष्टि तथा परराष्ट्र में प्रेषित, गुप्तचरों पर निगाह रखने के लिए अन्य चरों की नियुक्ति करे। आठों प्रकार के कर्म पंचवर्ग, अनुराग, विरोध और मण्डल के कार्यकलापों पर विचार करता रहे ॥१४९-१५४॥

मध्यमस्य प्रचारं विजिगीषोश्च चेष्टितम् ।
उदासीनप्रचारं च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः ॥१५५

एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्य समासतः ।
अष्टौ चान्याः समाख्याता द्वादशैव तु ताः स्मृताः ॥१५६

अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः पञ्च चापराः ।
प्रत्येकं कथिता ह्येताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥१५७

अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च ।
अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम् ॥१५८

तान्सर्वानभिसंध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः ।
व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च ॥१५९

संधिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च ।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड् गुणांश्चिन्तयेत्सदा ॥१६०

मध्यम की चाल, विजिगीषु की चेष्टा तथा उदासी और शत्रु की गति, इन सब पर यत्न पूर्वक विचार करे। वे चार प्रकृतियां राजमण्डल मूल हैं इनके अतिरिक्त आठ प्रकृतियाँ और हैं, इस प्रकार बारह प्रकृतियाँ कहीं गई हैं। प्रत्येक प्रकृति के अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, अर्थ और सेना, यह पाँच भेद हैं, बारह मूल प्रकृतियां और उनके आठ भेद, यह सब कुल बहत्तर संक्षेप में बताये हैं। विजिगीषु को अपने राज्य की सीमाओं से लगे राज्यों के राजाओं और उनके सहायकों को शत्रु प्रकृति मानना चाहिए, उनके पश्चात् के राज्यों को मित्र प्रकृति और इन दोनों के परे उदासीन समझें। उन सब राजाओं को सामादि उपायों के द्वारा वश में करे। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय पर सदैव विचार करता रहे ॥१५५-१६०॥

आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेव च ।
कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रममेव च ॥१६१

संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च ।
उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥१६२

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ।
तदात्वायतिसंयुक्तः संधिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः ॥१६३

स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा ।
मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥१६४

एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ।
संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते ॥१६५

क्षीणस्य चैव क्रमशो देवात्पर्वकृतेन वा ।
मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् ॥१६६

कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर ठीक प्रकार विचार करके ही आसन,आक्रमण. संधि विग्रह विभेद और संश्रय का प्रयोग करना चाहिए। संधि, विग्रह यान, आसन, विभेद और संश्रय को दो प्रकार का समझें। उपस्थित या भावी लाभ की आशा से अन्य राजा के साथ जो आक्रमण शत्रु पर किया जाता है, उसे समानयानसधि और दोनों एक मृत होकर पृथक् पृथक् आक्रमण करें उसे असमानयानसन्धि समझे। कार्यसिद्धि के लिए उपयुक्त या अनुपयुक्त अवसर में स्वयं ही युद्ध छेड़ना एक प्रकार का तथा अपने मित्र का अपकार करने वाले से युद्ध करना दूसरे प्रकार का विग्रह है। शत्रु को संकट में फँसा देखकर एकाकी आक्रमण एक प्रकार का और मित्र की सहायता से आक्रमण दूसरे प्रकार का यान है। पर्व कर्म के दोष से क्षीण हुआ राजा शत्रु की अपेक्षा करे,

यह एक प्रकार का और समर्थ होकर मित्रों के अनुरोध से उपेक्षा करे यह दूसरे प्रकार का आसन है ॥१६१-१६६॥

वलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ।
द्विविधं कीर्त्यते द्वधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः ॥१६७

अर्थसंपादनार्थं च पिड्यमानस्य शत्रुभिः ।
साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः १६८

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः ।
तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा संधि समाश्रयेत् ॥१६९

यदा प्रकृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम् ।
अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत निग्रहम् ॥१७०

यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् ।
परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति ॥१७१

यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च ।
तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सांत्वयन्नरीत् ॥१७२

कार्यसिद्धि के हेतु से सेनाध्यक्ष और राजा द्विविधि किया जाना द्वैध है, इसे भी छः गुणों के ज्ञाताजन दो प्रकार का कहते हैं। शत्रु द्वारा पीड़ित होने पर किसी बलवान का आश्रय लेना तथा सताये जाने की आशंका से किसी का आश्रय लेना यह दो प्रकार का संश्रय है। यह सन्धि में अपना निश्चित लाभ देखे तो कुछ कष्ट या हानि सहन करके भी सन्धि कर ले। राजा जब अपनी सम्पूर्ण प्रकृति को सन्तुष्ट समझे और स्वयं को हर प्रकार अत्यन्त बलवान जाने, तभी विग्रह करे। जब अपने प्रकृतिवर्ग और सेना का बहुत हृष्ट पुष्ट तथा शत्रु को इसके विपरीत अवस्था में देखे तभी आक्रमण करे। जब अपने पास गज, अश्व आदि

वाहन और बल की कमी हो तब शत्रु को सामादि के द्वारा शनैः शनैः शान्त करता रहे ।।१६७-१७२।।

मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् ।
तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः ।।१७३

यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत् ।
तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ।।१७४

निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽरिबलस्य च ।
उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ।।१७५

यदि तत्र पि संपश्येद्दोषं संश्रयकारितम् ।
सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ।।१७६

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवापतिः ।
यथास्याभ्याधिक न स्युर्मित्रोदासीन त्रवः ।।१७७

आयति सर्वकार्याणां तदात्व च विचारयेत् ।
अतोतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ।।१७८

जब शत्रु को अपने से अधिक बलवान समझे तब द्विधा बल के द्वारा अपना कार्य निकाले । जब यह समझे कि शत्रु के आक्रमण से नहीं बचा जा सकता, तब किसी धार्निक बलवान राजा का आश्रय ले । जिस प्रकृति बल या शत्रु बल से भय हो, उस-उसके निग्रह में समर्थ राजा का आश्रय लेकर उसकी सेवा गुरु के समान करे । यदि इस प्रकार संश्रय में अपना बचाव दिखाई न दे तो भयरहित रूप से युद्ध करे । नीतिज्ञ राजा सामादि सब उपायों से प्रयत्न करे कि शत्रु के मित्र और उदासीन आदि की संख्या वृद्धि न हो सके । उस समय भूत-भविष्य से सभी गुण-दोषों पर ध्यानपूर्वक विचार करे ।।१७३-१७८।।

आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ।
अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥१७९

यथैनं नभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ।
तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः ॥१८०

यदा तु य नमातिष्ठेदरिराष्ट्रं प्रति प्रभुः ।
तदानेन विधानेन यायादरिपुरं शनैः ॥१८१

मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः ।
फाल्गुनं वाथ चैत्रं वा मासौ प्रति यथाबलम् ॥१८२

अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद्ध्रुवं जयम् ।
तदा यायाद्विगृह्य व व्यसने चोत्थिते रिपोः ॥१८३

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि ।
उपगृह्यास्पदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च ॥१८४

संशोध्ल त्रिविधं मार्गं षड्दिध च वलं स्वकम् ।
सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥१८५

भविष्य के गुण दोषों को जानने वाला राजा उपस्थित कार्यों को निश्चय पूर्वक शीघ्र पूरा कर लेता है तथा अतीत के कार्यों को जानने वाला कभी पराजित नहीं हो पाता । राजा ऐसा यत्न करे जिससे कि मित्र, उदासीन और शत्रु उसे क्षति न पहुँचा सके, यही नीत समझें । जब शत्रु राज्य पर चढ़ाई करने की इच्छा हो तब आगे कहे अनुसार शनैः शनैः करे । शुभ मार्गशीर्ष मास में रण यात्रा करे अथवा शक्ति के अनुसार फाल्गुन या चैत्र में आक्रमण करे । शत्रु को संकटमें पड़ा देखकर और अपनी जीत का निश्चय होने पर अन्य किसी भी महीने में भी चढ़ाई कर सकता है । अपने राष्ट्र और दुर्गों के रक्षार्थ सेनापति की

अधीनता वाली सेना और सब साज-समान साथ लेकर शत्रु राष्ट्र में गुप्तचर भेज कर वन्य, आनूप और आटविक मार्गों को ठीक करे तथा छओं प्रकार के बलों को संतुष्ट रखता हुआ रण-नीति का अवलम्बन करता हुआ आक्रमणार्थं धीरे-धीरे शत्रु-नगर की ओर बढ़े ॥१७६-१८५॥

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥१८६

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा ।
वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गुरुडेन वा ॥१८७

यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद्बलम् ।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम् ॥१८८

सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु विवेशयेत् ।
यतश्च भयमाशङ्केत्प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम् ॥१८९

गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान्कृतसंज्ञान्समंततः ।
स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः ॥१९०

छिपे रूप में शत्रु की सेवा करने वाला कपटमित्र और पुनः लौटकर आया हुआ रुष्ट भृत्य कष्टवर शत्रु हो सकता है, इस लिए इनसे सावधान रहे। युद्ध के मार्ग में चले तब भी दण्डव्यूह, शकटव्यूह, वराहव्यूह, मकरव्यूह, सूचीव्यूह या गरुड़व्यूह की रचना करले। भय की आशंका वाले स्थान पर अपनी विशेष सेना रखे तथा स्वयं पद्मव्यूह रखकर उसमें ही रहे। सेनापति और सेनाओं के अध्यक्षों को सब दिशाओं में रखे तथा भय की आशंका वाली दिशा का पूर्व दिशा मान ले। व्यूह के सब ओर ऐसी सेना रखे जिन पर समर्थ अधिकारी रहें, जो संकेतों के

ज्ञाता, दृढ़ और युद्ध में दक्ष हों तथा भीरु और अविश्वासी न हों ॥१८६-१९०॥

संहतान्योधयेदल्पान्याम विस्तारयेद्बहून् ।
सूच्या वज्रेण चैवेतान्व्यूहेन व्यूह्य योधयेत् ॥१९१

स्यन्दनाश्वः समे युद्ध्येदनूपे नौद्विपस्तथा ।
वृक्षगुल्मावृते चापरसिचर्मायुधः स्थले ॥१९२

कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालाञ्शूरसेनजान् ।
दीर्घाल्लघुंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयेत् ॥१९३

प्रहर्षयेद्बलं व्यूह्य तैश्च सम्यक्परीक्षयेत् ।
चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन्योधयतामपि ॥१९४

उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्तोपपीडयेत् ।
दूषतेच्चास्य सततं वयसान्नोदकेन्धनम् ॥१९५

भिन्द्याच्चैव तड़ागानि प्रकारपरिखास्तथा ।
समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥१९६

सैन्य-संख्या कम हो तो सब सैनिकों को एकत्र करके और अधिक हो तो यथोचित रूप से फैलाकर सूची व्यूह या वज्रव्यूह द्वारा युद्ध करे। युद्ध क्षेत्र में रथी अवरोही सेना से, जल में, प्रदेश में नौका या हाथी की सेना से, वृक्ष गुल्मादि से आवृत्त स्थान में धनुषबाण से तथा थल में आयुधोंसे युद्ध करे। कुरुक्षेत्र मत्स्यदेश पांचाल और माथुर देश के सैनिक दीर्घाकार के हो या लघु आकार के, यह सबसे आगे रहें व्यूह रचकर सेना को हर्षित करके उसकी परीक्षा करे तथा शत्रु सेना से युद्ध करते में भी अपनी सेना की चेष्टा से अवगत होता रहे। शत्रु राज्य के चारों ओर घेरा डाल कर उत्पीड़न करे तथा वहाँ का तृण,

अन्न, जल और ईंधनादि नष्ट कर डाले। तड़ागादि को नष्ट करे, भित्तियों को तोड़ दे, खाइयों को मिट्टी आदि से भर दे, इस प्रकार शत्रु को निर्बल बनावे तथा रात्रि में भी उसे त्रस्त करे ।।१९१-१९६।।

उपजप्यानुपजपेद्बुध्येतैव च तत्कृतम् ।
युक्ते च दवे युध्येत जयप्रेप्सुरपेतभीः ।।१९७

साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक् ।
विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन ।।१९८

अनित्यो विजयो यस्माद्दृश्यते युध्यमानयोः ।
पराजयश्च संग्रामे तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ।।१९९

त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसंभवे ।
तथा युध्येत संपन्नो विजयेत रिपून्यथा ।।२००

जित्वा संपूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैव धार्मिकान् ।
प्रदद्यात्परिहारांश्च ख्यापयेदभयानि च ।।२०१

सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चिकीर्षितम् ।
स्थापयेत्तत्र तद्वंश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम् ।।२०२

शत्रुपक्ष के उपजाय योग्य व्यक्तियों को अपनी ओर फोड़कर उनके कार्य के विषय में जानकारी प्राप्त करे, विजिगीषु निर्भय होकर शुभ समय में युद्ध प्रारम्भ करे। यथासम्भव युद्ध से बचे और शत्रु को साम, दाम, भेद में से किसी भी उपाय से वश में करे। युद्ध में किस पक्ष की विजय और किस की पराजय होगी, यह निश्चय न रहने के कारण युद्ध न करे। किन्तु उक्त तीनों उपायों के सम्भव न होने पर वल से सम्पन्न होकर रिपु को जीतने के लिए चतुरता से युद्ध करे। शत्रु पर विजय प्राप्त करके

देव ब्राह्मणों को पूजें और उन्हें भेंट आदि अर्पण कर अभय स्थापित करे। उन सब का आशय संक्षिप्त रूप से जानकर वहाँ के राज्यपद पर उसी राजा के किसी वंशज को आसीन करके सामयिक क्रिया करे ॥१९७-२०२॥

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान्यथोदितान् ।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह ॥२०३

आदानमप्रियकरं दानं च प्रियकारकम् ।
अभीप्सितानामर्थानां काल युक्तं प्रशस्यते ॥२०४

सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यं तु मानुषे विद्यते क्रिया ॥२०५

सह वापि व्रजेद्युक्तः संधिं कृत्वा प्रयत्नतः ।
मित्रं हिरण्यं भूमिं वा सपश्यंस्त्रिविधं फलम् ॥२०६

पार्ष्णिग्राहं च संप्रेक्ष्य तथाक्रन्दं च मण्डले ।
मित्रादथाप्यमित्राद्वा यात्राफलमवाप्नुयात् ॥२०७

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते ।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ॥२०८

उस राज्य की प्रजाओंके जो धर्म हों उन्हें प्रमाण समझे और उस नवीन अभिषिक्त राजा और उसके प्रमुख पुरुषोंको रत्नादिके अर्पण से प्रसन्न करे। किसी की इच्छित वस्तु लेना अप्रियकारी और देना प्रियकारी होता है तो भी प्रसंग के अनुसार लेना-देना दोनों ही विशिष्ट समझे जाते है। संसार के सभी कार्य दैव और मानव कर्म-विधान के अधीन हैं, इनमें देव अचिन्त्य और मानव विचार योग्य है। अथवा शत्रु मित्र बने, स्वर्ण दे, और पृथिवी दे तो इस त्रिविध फल को प्राप्त करके ही सन्धि करले और वहाँ से लौट आवे। राजमण्डल में पार्ष्णिग्राह (पृष्ठवर्ती)और आक्रन्द

(लूट खसोट रोकने वाले राजा) पर दृष्टि रखकर यात्रा करे, मित्र हो चाहे शत्रु यात्रा का फल उससे लिया जाना ही उचित है। राजा स्वर्ण और पृथिवी पाकर वैसी वृद्धि नहीं पाता जैसी कि वर्तमान में दुर्बल किन्तु बढ़ते हुए ध्रुव मित्र के पाने से होता है ।।२०३-२०८।।

धर्मज्ञ च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च ।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघु मित्र प्रशस्यते ।।२०९

प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च ।
कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमाहुररि बुधाः ।।२१०

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवदिता ।
स्थौललक्ष्य च सततमुदासीनगुणोदयः ।।२११

क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृद्धिकरीमपि ।
परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन् ।।२१२

आपदर्थं धन रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ।।२१३

सह सर्वाः समुत्पन्ना प्रसमीक्ष्यापदो भृशम् ।
संयुक्ताश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान्सृजेद्बुधः ।।२१४

धर्मज्ञ, कृतज्ञ, प्रसन्न स्वभाव का, हार्दिक प्रेम वाला तथा दृढ़ता से कार्यारम्भ करने वाला मित्र लघुता युक्त हो तो भी श्रेष्ठ है। प्राज्ञ, कुलीन, वीर, चतुर, दाता, कृतज्ञ और धीरजवान शत्रु को जीतना अत्यन्त कठिन है, यह विज्ञजनों का कथन है। सज्जनता, अच्छे बुरे की पहचान, वीरता, करुणता और दान शीलता उदासीन के गुण हैं। जहाँ की जलवायु श्रेष्ठ हो, जहाँ सब प्रकार के अन्नों की उपज होती हो, जहाँ पशुओं की वृद्धि होती

हो, उस सुखद स्थान का भी आत्मरक्षार्थं त्याग कर दे । संकट से बचने के लिए धन की रक्षा करे किन्तु स्त्री की रक्षा के लिए धन को भी छोड़ दे और आत्मरक्षा के लिए धन और स्त्री दोनों को ही छोड़ दे । सब विपत्तियां भीषण रूप में एक साथ ही आ उपस्थित हों तो भी विद्वान् राजा विचलित न होकर सामादि उपायों का उन पर प्रयोग करे ॥२०९-२१४॥

उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः ।
एतत्त्रयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये ॥२१५

एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः ।
व्यायम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत् ॥२१६

तत्रात्मभूतैः कालज्ञैरहार्यैः परिचारकैः ।
सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यान्मन्त्रैर्विषापहैः ॥२१७

विषघ्नैरगदैश्चास्य सर्वद्रव्याणि योजयेत् ।
विषघ्नानि च रत्नानि नियतो धारयेत्सदा ॥२१८

परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनोदकधूपनैः ।
वेषाभरणसंशुद्धाः स्पृशेयुः सुसमाहिताः ॥२१९

एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाशने ।
स्नाने प्रसाधने चैव सर्वालंकारकेषु च ॥२२०

उपेता (उपायकर्त्ता), उपेय (उपाय का फल) एवं सर्व उपाय इन तीनों का विचार करता हुआ स्वकार्य की पूर्णता के लिए प्रयत्नशील हो। इस प्रकार पृथक्-पृथक् मंत्रियों से परामर्श करके, नित्य व्यायाम के पश्चात् मध्याह्नकालीन स्नानादि से निवृत्त होकर अन्त;पुर में भोजनार्थ गमन करे। वहाँ आत्मीय कालज्ञ और अभेद्य रसोइये के द्वारा निर्मित परखे हुए स्वादिष्ट

अन्न को विषनाशक मन्त्रों से अभिमन्त्रित करने के पश्चात् ही सेवन करे। सावधानी से सभी खाद्य वस्तुओं मे विषनाशक औषधि मिश्रित कर तथा विषनाशक रत्नों को सदैव धारण किये रहे। गुप्तचरादि के द्वारा भले प्रकार परीक्षा की हुई तथा शुद्ध वेश और आभूषण वाली परिचारिकाएं चामर, स्नान,पानादि के द्वारा राजा की सेवा करें। इसी प्रकार वाहन शय्या, आसन, भोजन स्नान, अनुलेपन, एवं सब प्रकार के अलंकारों के विषय में परीक्षा कर ले ।।२१५-२२०।।

भुक्तवान्विहरेच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह ।
विहृत्य तु यथाकाल पुनः कार्याणि चिन्तयेत् ।।२२१

अलंकृतश्च संपश्येदायुधीयं पुनर्जनम् ।
वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च ।।२२२

संध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत ।
रहस्याख्यायिनां चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम् ।।२२३

गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समनुज्ञाप्य तं जनम् ।
प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृतोऽन्तःपुरं पुनः ।।२२४

तत्र भुक्त्वा पुनः किंचित्तूर्यघोषैः प्रहर्षितः ।
संविशेत्तु यथाकालमुत्तिष्ठेच्च गतक्लमः ।।२२५

एतद्विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः ।
अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनियोजयेत् ।।२२६

राजा भोजनोपरान्त कुछ समय तक रमणियों के साथ विहार करे और तत्पश्चात् अपने राज कार्यं की पुनः चिन्ता करे। भूषण-वसन से सुसज्जित हुआ राजा सैनिकों वाहनों एवं शस्त्रास्त्रों और आभरणों का अवलोकन करे। फिर संध्योपासन

के पश्चात् अन्तर्गृह (तहखाने) में जाकर सशस्त्र रूप में बैठ कर रहस्य कहने वाले गुप्तचरों के सम्वाद सुने, फिर उन्हें वहाँ जाने की आज्ञा देकर स्वयं भी परिचारिकाओं के साथ भोजन के निमित्त अन्तःपुर में पुन जाय। वहां बाजो के मधुर शब्दों से प्रसन्न होकर और कुछ भोजन करके शयन करे तथा भले प्रकार विश्राम के पश्चात् जाग उठे। निरोगावस्था में राजा स्वयं ही उक्त सब कार्यों को करे, किन्तु अस्वस्थावस्था में जैसा जो कार्य हो वह वैसे ही सेवक को सौंप दे ॥२२१-२२६॥

॥सातवाँ अध्याय समाप्त॥

आठवां अध्याय

व्यवहारान्दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम् ॥१
तत्रासीनःस्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ।
विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥२
प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ।
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक्पृथक् ॥३

प्रजा के व्यवहारों पर विचार करने के लिए राजा ब्राह्मणों और विचारवान मंत्रियों के साथ विनीत भाव से राजसभा में जाय और वहां बैठ कर या खड़े होकर अपना दक्षिण हाथ वस्त्र से बाहर निकाल कर कार्यार्थियों के कार्यों का अवलोकन करे। अठारह मर्गों में निबद्ध इन कार्यों का देशाचर और शास्त्रदृष्टि से प्राप्त हेतुओं के अनुसार अलग अलग विचार करे ॥१-१॥

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ।
संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥४
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ।
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥५
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ।
स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥६
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च ।
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥७

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरितां नृणाम् ।
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥८

अठारह मर्गों में ऋण लेना, किसी के पास धरोहर रखना, स्वामी की अनुमति बिना वस्तु को बेच देना, साझा करना प्रदत्त वस्तु को पुनः ले लेना. वेतन न देना, की हुई व्यवस्था से मूकर जाना, क्रय—विक्रय में किसी बात का फर्क पड़ना स्वामी और पशुपालकों के मध्य विवाद गाली देना या मारपीट करना चोरी, साहसकर्म पर पुरुष से किसी नारी का सम्पर्क, पति—पत्नि के मध्य पारस्परिक धर्म-व्यवस्था पैतृकादि धन-विभाग, द्यूत एवं पशु-पक्षियों का लड़ाना, यह अठारह माग व्यवहार के हैं। इन स्थानों में विवाद करने वाले मनुष्यों के धर्म के निर्णय में शाश्वत धर्म का अवलम्बन ग्रहण करे ॥ ८॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् ।
तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥९

सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः ।
सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥१०

यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः ।
राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान्ब्रह्मणस्तां सभां विदुः ॥११

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥१२

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ।
अब्रुवन्व बन्विापि नरो भवति किल्बिषी ॥१३

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥१४

यदि राजा किसी कारण से कार्य को देख-भाल स्वयं न देख पावे तो उस पर किसी विद्वान् ब्राह्मण की नियुक्ति करे। वह ब्राह्मण तीन सभा-सदों के साथ राजसभा में बैठ कर या खड़े होकर राजकार्यों को भले प्रकार देखे। जिस सभा में तीन वेद-विज्ञ ब्राह्मण बैठते हैं। और साथ ही राजा का प्रतिनिधि विज्ञ ब्राह्मण विराजमान होता है, वह सभा ब्राह्मसभा कहलाती है। जिस सभा में अधर्म से विद्ध हुआ धर्म उपस्थित होता, है यदि वहां के सभासद अधर्म के शल्य को पृथक् न करें तो उन्हीं को उस अधर्म शल्य से बिंधना होता है। या तो सभा में प्रवेश न करे, यदि करे तो यथार्थ कहे, किन्तु कुछ न बोलने या व्यर्थ बोलने से अधर्मभागी होता है। जिस सभा में अधर्म से धर्म की और असत्य से सत्य की हिंसा होती है वहां उस अन्याय से उत्पन्न पाप के कारण सभासद ही नष्ट होते हैं ॥१६-२४॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत् ॥१५
वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥१६
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥१७
पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति ।
पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति ॥१८
राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः ।
एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥१९
जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद्ब्राह्मणब्रुवः ।
धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथंचन ॥२०

नष्ट हुआ धर्म नाश करता और रक्षित हुआ धर्म रक्षा करता है, नष्ट धर्म कहीं हमें ही नष्ट न कर दे। यह विचार करता हुआ धर्म को कभी नष्ट न होने दे। वृष (कामना वर्षक) यही भगवान धर्म है इसे नष्ट करने वाले को देवगण वृषल मानते है इसलिए धर्म को कभी लुप्त न होने द धर्म रूपी सुहृय हो मरने पर साथ जाता है, क्योंकि अन्य सब तो देह के साथ ही नष्ट हो जाते है। अधर्म का चतुर्थांश अधर्मकर्त्ता को चतुर्थांश साक्षी को चतुर्थांश सभासदों को और चतुर्थांश राजा को मिलता है। जिस सभा में निन्दनीय की निन्दा होती है, वहाँ राजा या सभासद पापभागी नहीं होते, वरन् पापकर्त्ता ही पाप के सब फल को प्राप्त करता हैं। केवल जाति के नाम पर आजीविका करने वाला या नाम मात्र को ब्राह्मण कहलाने वाला ब्राह्मण भी राजा की ओर से धर्म प्रवक्ता हो सकता है, किन्तु शुद्र नहीं हो सकता ॥१५-२०॥

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम्।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव पश्यतः ॥२१

यद्राष्ट्र शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम्।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥२२

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः।
प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत् ॥२३

अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ।
वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥२४

बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम्।
स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च ॥२५

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥२६

जिसके राज्य में न्याय करने वाला शूद्र हो उस राजा का राष्ट्र कींचड़ में धंसी गौ के समान क्लेश प्राप्त करता है। शूद्रों और नास्तिकों से परिपूर्ण देश जिसमें एक भी ब्राह्मण न रहता हो वह शीघ्र ही दुर्भिक्ष और व्याधि से पीड़ित होकर नष्ट हो जाता है। शरीर कों ढक कर न्यायासन पर आरूढ़ हो एकाग्र-चित्त से लोकपालों को नमस्कार करके कार्यावलोकन प्रारम्भ करे। अर्थ-अनर्थ और धर्म अधर्म को भले प्रकार जानकर वर्ण-क्रम से न्याय की प्रार्थना करने वालों के सब कार्यों का अवलोकन करे। स्वर, वर्ण, इंगित आकार, नेत्र और चेष्टा इन बाह्य चिन्हों से राजा उनके भीतरी भाव जानने की चेष्टा करे। आकार, इंगित, गति, चेष्टा, भाषण, और मुख के विकारों को देखकर मन को बात जान ली जाती है ॥२०-२६॥

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत् ।
यावत्स स्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः ॥२७

वशाऽपुत्रासु चैव स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु ॥२८

जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः ।
ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥२९

प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् ।
अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ॥३०

ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि ।
संवाद्य रूपसंख्यादीन्स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ॥३१

अवेदयानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः ।
वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥३२

राजा अवयस्क के पैतृक भाग तथा धन की रक्षा तब तक करे जब तक कि वह वेदाध्ययन पूर्ण करके गुरुकुल से न लोट आवे। वन्ध्या, पुत्रहीना अनाथा पतिव्रता, विधवा और रोगिणी नारी के धन की रक्षा भी राजा अवयस्क के समान ही करें। यदि जीवित स्त्रियाँ का धन उनके बान्धवादि ले लें तो धार्मिक राजा उन्हें वही दण्ड दे जो चोर को दिया जाता है। स्वामी रहित धन को राजा तीन वर्ष तक धरोहर के समान अपने पास रखे, इस अवधि में उस धन का अधिकारी आजाय तो उसे दे द अन्यथा स्वयं ले ले। जो उस धन को अपना बतावे उससे उस के विषय में सब बातें पूछे और रूप, संख्या आदि सत्य बतावे तो वह उसे ले ले। नष्ट धन कब, कहाँ कैसे खोया, इस बात को तथा धन के रंग रूप संख्यादि को न बता सके उस मिथ्यावादी को धन के बराबर ही अर्थदण्ड दे ॥२७-३२॥

आददीताथ षड्भाग प्रणष्टाधिगतान्नृपः।
दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥३३
प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठतम्।
यांस्तत्र चौरान्गृह्णीयात्तान्राजेभेन घातयेत् ॥३४
ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः।
तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा ॥३५
अनृतं तु वदन्दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम्।
तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पीयसीं कलाम् ॥३६
विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वापूर्वोपनिहितं निधिम् ॥
अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः ॥३७
यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ।
तस्माद्द्विजेभ्यो दत्वार्धमर्धं कोशं प्रवेशयेत् ॥३८

नष्ट धन मिल जाय तो सज्जनों के धर्म को याद करता हुआ राजा उसका छठा दसवां या बारहवां भाग स्वयं वसूल कर-ले। किसी का नष्ट धन राजपुरुषों के द्वारा लाया जाय तो उसे राजा सुरक्षित रखवाये और उस द्रव्य के सहित पकड़े गये चारों को हाथी के पावों से कुचलवा दे। जो मनुष्य अपना धन बता-कर ठीक प्रमाण दे दे तो राजा उस धन में से छठा या बारहवाँ भाग लेकर शेष उसे लौटा। जो उस धन को झूठमूठ ही अपना बतावे राजा उसके धन का अष्टमांश अथवा मिले हुए धन का कुछ अंश उससे अर्थ दण्ड के रूप में वसूल करे। विज्ञ ब्राह्मण किसी के पहले से रखे धन को देखकर पूरा ही ले सकता है, क्योंकि ब्राह्मण सब का स्वामी होता हैं। धरती में गढ़े धन को देख कर उसमें से आधा ब्राह्मणों को दे और आधा राजा स्वयं अपने कोष में रखे ॥३३-३८॥

निधीनां तु पुराणानां धतूनामेव च क्षितौ।
अर्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः ॥३९
दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम्।
राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्विषम् ॥४०
जातिजानपदान्धर्माञ्छ्रेणीधर्मांश्च धर्मवित्।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥४१
स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोऽपि मानवाः।
प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥४२
नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः।
न च प्रापितमन्येन ग्रसेदर्थं कथंचन ॥४३
यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम्।
नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥४४

धरती में प्राचीन धन और धातुओं की रक्षाकरने वाला एवं भूमि का स्वामी होने से राजा उसके आधे भाग का अधिकारी होता है। चारों द्वारा चुराये हुए धन को राजा चोरों से निकलवा कर सब वर्गों के प्रमुख को दे दे क्योंकि चोरी के धन का स्वयं उपभोग करने वाले राजा को चोरी का पाप लगता है। धर्मज्ञ राजा जातिधर्म, देशधर्म, श्रेणीधर्म एवं कुलधर्म की समीक्षा करके उनके अनुसार ही धर्म व्यवस्था करे। अपने-अपने नित्य कर्मों में लगे हुए व्यक्ति देश जाति और कुल के अनुसार निज-निज कर्मों को करते हुए दूर हों तो भी सब के प्रिय होते होते हैं। राजा या उसका प्रतिनिधि स्वयं कोई विवाद खड़ा न करे और न धन के लोभवश किसी विवाद को समाप्त ही करे जैसे गिरे हुए रक्त को खोज से लुब्धक मृग के स्थान तक जा पहुँचता है, वैसे ही राजा प्रत्यक्ष प्रमाण या अनुमान से धर्मतत्व तक पहुँच जाता है ॥३९-४४॥

सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः।
देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः ॥४५
सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः।
तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥४६
अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः।
दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् ॥४७
यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः।
तैस्तैरुपायैः संगृह्य दापयेदधमर्णिकम् ॥४८
धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च।
प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च ॥४९

यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात् ।
न स राज्ञाभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम् ॥५०

न्यायासन पर बैठकर राजा सत्य धन, आत्मा साक्षी देश. रूप और काल पर दृष्टि डाले । सज्जन और धार्मिक द्विजातियों के आचरण के अनुरूप देश कुल और जाति के अनुकूल धर्म की व्यवस्था करे। महाजन की प्रार्थना पप राजा उसका निश्चित धन ऋणी से उसे दिलवा दे । जिस जिस उपाय से लेनदार का धन वसूल हो सके उस-उस उपाय से ऋणी से धन का वसूल करावे। धर्म से व्यवहार से द्वार पर सैनिक बैठाकर उपद्रव कराने से और बल प्रयोग से लेनदार का धन प्राप्त करावे । जो लेनदार राजा को सूचित किये बिना अपना धन ऋणी से स्वयं वसूल करना चाहे, तो राजा उसे न रोक ॥४५-५०॥

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम् ।
दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तितः ॥५१
अपह्नवेधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसाद ।
अभियोक्तादिशेद्देश्यं करण वान्यदुद्दिशेत् ॥५२
अदेश्यं यश्चदिशति निर्दिश्यापह्नुते च य; ।
यश्चाधरोत्तरानर्थान्विगीतान्नावबुध्यते ॥५३
अपदिश्यापदेश्य च पुनर्यस्त्वपाधावति ।
सम्यक्प्रणिहितं चार्थं पृष्टः सन्नाभिनन्दति ॥५४
असंभाष्यै साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः ।
निरुच्यमानं प्रश्नं च नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत् ॥५५
ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयादुक्तं च न विभावयेत् ।
न च पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थांत्स हीयते ॥५६

यदि ऋणी अपने पर ऋण होना स्वीकार न करे और प्रमाणों द्वारा उसका ऋण लेना सिद्ध होजय तो राजा उससे लेनदार का धन दिलवाता हुआ कुछ दण्ड भी दे । न्यायालय में ऋणी ऋण का लेना स्वीकार न करे तो लेनदार साक्षियों और लेखों द्वारा प्रमाणित करे । जहाँ धन दिया गया हो, वहाँ ऋणी की अनुपस्थिति बतावे या कही हुई बात से फिर जाय या पहिले स्वयं कह कर फिर उसके विपरीत कहे या एक बार एक ढंग से और दूसरी बार उसी बात को दूसरे ढँग से कहे प्रतिज्ञा की हुई बात का भी समर्थन न करे निर्जन स्थान में साक्षियों के साथ वार्तालाप करे प्रश्नों से कतरावे, तर्क के भय से इधर-उधर घूमे या आनाकानी करे, 'कहो कहने पर भी कुछ न कहे, कहीं बातों को प्रमाण से सिद्ध न कर सके, जो पूर्वापर साधन और साध्य को न जाने वह लेनदार ऋणी से धन प्राप्त करने योग्य नहीं हैं ।।५१-५६।।

साक्षिणःसन्ति मेत्युक्त्वादिशेत्युक्तोदिशेन्न यः ।
धर्मस्थः कारणेरेतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत् ।।५७
अभियोक्ता न चेद्ब्रूयाद्बध्यो दण्डय्श्च धर्मतः ।
न चेत्त्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मं प्रति पराजित ।।५८
यो यावन्निमहुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत् ।
तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम् ।।५९
पृष्टोऽपव्ययमानस्तु कृतावस्थो धनैषिणा ।
त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्रह्मणसंधिनौ ।।६०
यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिण ।
तादृशान्संप्रवक्ष्यामि यथावाच्यमृतं च तैः।।६१

गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्‌शूद्रयोनयः ।
अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदिः ॥६२

साक्षी हैं, ऐसा कह कर भी जो साक्षी प्रस्तुत न करे उसे धर्मज्ञ राजा सब कारणों से ही न मारे जो अभियोगी अभियोग चलाकर फिर कुछ न कहे वह धर्म पूर्वक बन्धन अथवा दण्ड के योग्य है। जो अभियुक्त तीन पक्ष में भी कुछ उत्तर न दे उसे न्याय पूर्वक पराजित हुआ माने। ऋण लेकर ऋणी उतना धन लेना स्वीकार न करे अथवा लेनदार ऋणी पर अधिक धन का वाद प्रस्तुत कर तो राजा उन पर दुगना अर्थदण्ड करे। धनी द्वारा बुलाये या पूछे जाने पर ऋणी न्यायालय में कहे कि मैंने ऋण नहीं लिया हैं तो लेनदार राजनियुक्ति ब्राह्मण न्यायाधीश के समक्ष तीन साक्षियों से कहलावे। लेने देने के व्यवहार से धनिक को जैसे साक्षी करने चाहिए और उन साक्षियों से जैसी सत्य वात निकलवानी चाहिए वह बताता हूँ। गृहस्थ पुत्रवान, पड़ौसी क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वादी द्वारा साक्षी रूप में प्रस्तुत किये जा सकते है, निरापद काल इस-उस की साक्षी नहीं मानी जा सकती ॥५७-६२॥

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः ।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥६३
नार्थसम्बन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः
न दृष्टदोषाःकर्तव्यां न व्याध्यार्ता न दूषिताः ॥६४
न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ ।
न श्रोत्रियो नलिङ्गस्थो न सङ्गेभ्योविनिर्गतः ॥६५
नाध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्नकृत् ।
न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रिय ॥६६

नार्तो न मत्तो नोन्मतो न क्षुतृषोप पीडितः ।
न श्रमार्तो न कामार्तो न क्रुद्धौ नापितस्करः ।६७
स्त्रीणांसाक्ष्यं स्त्रियःकुर्यु द्विजानां सदृशा द्विजाः ।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ।।६८

सब वर्णों में यथार्थ वक्ता धर्मविज्ञ और निर्लोभ ही साक्षी होने के योग्य और इससे विपरीत गुण वाले अयोग्य है । उस धन के साथ प्रयोजन वाले, वादी धनिक के ऋणी या इष्ट-मित्र-सहायक वैरी या पहले से दूषित अथवा रोगाग्रस्त और पापी साथी बनने के योग्य नहीं होते । राजा, कारु, कुशीलव श्रोत्रिय या संन्यासी भी साक्षी नही हो सकते । दास कर्म त्याग के कारण निन्द्य, क्रूर, अकर्मी, वृद्ध, शिशु, अन्त्यज और विकलेन्द्रिय भी साक्षी से योग्य नहीं होते । शोकार्त्त मत्त, उन्मत्त क्षुधा पिपासा से पीड़ित, श्रम से थकित, कामार्त्त, क्रुद्ध और तस्कर को भी गवाह नहीं बनाया जा सकता । स्त्रियों के विवाद में स्त्रियाँ, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य के विवाद में उनके सजातीय, शूद्रों के विवाद में शूद्र आदि को गवाह बनावे ।।६३-६९।।

अनुभावी तु यःकश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् ।
अन्तर्वेश्मन्यरण्यं वा शरीरस्यापि चात्यये ।।६९
स्त्रियाप्यसंभवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा ।
शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भृतकेन वा ।।७०
बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वादतां मृषा ।
जानायादस्थिरां वाचमुत्सिक्तमनसां तथा ।।७१
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च ।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ।।७२

बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वधे नराधिपः ।
समेषु तु गुणोत्कृष्टात्गुण्द्वि धे द्विजोत्तमात् ।।७३
समक्षादर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति ।
तत सत्यं ब्रुवन्साक्षीं धर्मार्थाभ्यां न हीयते ।।७४

घर या वन में दस्युओं का उपद्रव या किसी पर प्रहार होने पर वहां जो कोई उपस्थित हो वही गवाह हो सकता हैं । पूर्वोक्त गवाह के अभाव में स्त्री बाल वृद्ध, शिष्य भाई दास एवं भृतकानि से कार्य चल सकता हैं । अस्थिर चित्तता के कारण बाल, वृद्ध रोगी साक्षी कुछ मिथ्या कहें तो राजा अनुमान के द्वारा ही उनके कथन में सत्यासत्य के अंश को जान ले साहसिक कार्य, चोरी स्त्री के संग्रहण तथा वचन और दण्ड की कठोरता में गवाह की परीक्षा आवश्यक नहीं है । साक्षियों के कथन मैं परस्पर विरोध हो तो बात अधिक गवाहों ने कहीं हो, उसे ठीक माने यदि दो कथन वालों की संख्या में समानता हो तो अधिक गुणवान का और गुणवान भी समान सख्या में हों तो क्रियावान ब्राह्मण का कथन विश्वनीय समझो । नेत्रों से देखी और कानों से सुनी बात ही साक्ष्य में ठीक मानी जाती हैं यथा ज्ञात यथार्थ कहने वाला गवाह धर्म और अर्थ से भ्रष्ट नहीं होता ।।६९-७०।।

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्वसंसदि ।
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ।।७५
यत्रानिबद्धोऽपीक्षेत शृणुयापि किंचन ।
दृष्टस्तत्रापि तद्ब्रूयाद्यथादृष्टं यथाश्रुतम् ।।७६
एकोऽलुब्धातु साक्षी स्याद् बह्वयःशुच्योऽपि न स्त्रियः
स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चाश्येऽपि ये वृताः ।।७७

स्वभावेनैव यद् ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम् ।
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥७८

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसंनिधौ ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिनातेन सान्त्वयन् ॥७९

यद्द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिश्चेष्टितं मिथः ।
तद्ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥८०

यदि साधु सभा में कोई गवाह देखी सुनी बात के विरुद्ध कहे तो वह स्वर्ग से वंचित होकर तथा अधोमुख होकर नरक में गिरता है। गवाह न बनाया गया व्यक्ति भी, यदि उसने कुछ देखा सुना है तो पूछने पर सब सत्य-सत्य बता दे। कोई भी लोभ-रहित पुरुष गवाह हो सकता है, किन्तु पवित्र स्त्रियाँ भी चपल बुद्धि के कारण तथा अन्य दोषी मनुष्य गवाह नहीं हो सकते। निर्भय और स्वाभाविक रूप से गवाह जो कुछ कहें वह मानने योग्य है, किन्तु इसके विपरीत गुण से कहा जाय वह अमान्य होता है। न्यायाधीश वादी-प्रतिवादी के समक्ष साक्षियों से सद्व्यवहार पूर्वक पूछे कि इन वादी-प्रतिवादी के मध्य हुए व्यवहार को तुम जानते हो तो सब बात यथार्थ कहो ॥७९-८०॥

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् ।
इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥८१

साक्ष्येऽनृतं वदन्पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम् ।
विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् ॥८२

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥८३

आत्मैव ह्यात्मनःसाक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ।
मावसंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥८४

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यरीति नः ।
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वत्यवान्तरपूरुषः ॥८५

द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः ।
रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥८६

साक्षी सत्य बोलकर श्रेष्ठ लोकों को तथा इस लोक में उत्तम यश को पता है, क्योंकि सत्यवाणी ब्रह्मा द्वारा भी प्रशंसित है। किन्तु साक्षी में झूठ बोलने वाला वरुणापाश में बँध कर सौ जन्म तक दुःख भोगता है, इसलिए सत्य ही बोले। सत्य कथन से पवित्रता और धर्म की वृद्धि होती है, इसलिए सभी वण के गवाह सत्य बोलें। आत्मा ही कर्मों की साक्षी और गति है, इसलिए श्रेष्ठ साक्षी मिथ्या बोलकर आत्मा का अपमान न करे। पापकर्मी सोचता है कि हमारे पापों को कोई नहीं देखता, किन्तु देवता और अन्तरात्मा पापों को अवश्य देखते रहते हैं। आकाश पृथिवी, जल, हृदय, चन्द्र सूर्य, अग्नि, यम, वायु, रात्रि, सध्याएं तथा धर्म सभी जीवों के कर्मों को जाते हैं ॥८१-८६॥

देवब्राह्मणसांनिध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् ।
उदङ्मुखान्प्रङ्मुखान्वापूर्वाह्ने वैशुचिःशुचीन् ॥८७

ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम् ।
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥८८

ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः ।
मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा ॥८९

जामभृवि यत्किंचित्पुण्ये भद्र त्वया कृतम् ।
तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ॥९०

एकोऽहमस्मीत्यात्मान यत्त्वं कल्याण मन्यसे ।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥९१

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितिः ।
तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून्गमः ॥९२

न्यायाधीश पूर्वाह्न में पवित्र होकर देवता और ब्राह्मणों के निकट उत्तर या पूर्व की ओर मुख किये हुए द्विजों से सत्य साक्ष्य के लिये कहे। ब्राह्मण से कहे कि 'कहो' क्षत्रिय से कहे कि 'सत्य कहो' वैश्य से गौ, बीज और स्वर्ण चोरों के पाप की शपथ करा कर पूछे और शूद्र से सब प्रकार ने पापों को शपथ लेकर गवाही देने को कहे। ब्राह्मण स्त्री और बालक के हत्यारे, मित्रद्रोही, एवं कृतघ्न को जिन-जिन लोकों की प्राप्ति होती है, वे सब मिथ्या साक्षी प्राप्त होते हैं। हे भद्र ! यदि तुम अन्यथा कहोगे तो जन्म से अब तक किया हुआ तुम्हारा धर्म श्वानों को प्राप्त हो जायगा। तुम जो स्वयं को अकेला समझते हो यह ठीक नहीं है, क्योंकि पाप-पुण्य का दर्शक यह मुनि (ईश्वर) तुम्हारे हृदय में सदा विद्यमान रहता है। तुम्हारे हृदय में अवस्थित यम, वैवस्वत औन देव के साथ यदि तुम्हारा विवाद नहीं है तो गंगा या कुरुक्षेत्र की यात्रा मत करो ॥८७-९२॥

नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः ।
अन्धः शत्रुकुलं गच्छेद्यः साक्ष्यमनृत वदेत् ॥९३

अवाक् शरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरकं ब्रजेत् ।
यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्टः सन्धर्मनिश्चये ॥९४

अन्धो मत्स्यानिवाश्नाति स नराकण्टकैः सह ।
यो भाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्षं सभां गतः ॥९५

यस्य विद्वान्हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते ।
तस्मान्न देवाःश्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः ॥९६

यावतो बान्धवान्यस्मिन्हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ।
तावतः संख्यया तस्मिञ्छृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥९७

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥९८

मिथ्या गवाही देने वाला जन्मान्तर में अन्ध, नग्न, क्षुधात एवं प्यासा रह कर हाथ में खप्पर लिये हुए भिक्षार्थ क्षत्रु के यहाँ पहुँचता है। पूछने पर धर्म के निर्णय में मिथ्या बोलने वाला पापी अधोमुख होकर घोर नरक में पड़ता है। सभा में पहुंचकर ज्ञात बात को छिपाता और आँखों देखी नही कहते, वह अन्धे के समान काँटों से युक्त मछलियाँ भक्षण करता है। जिस विज्ञ के बोलने में उसका अन्तरात्मा शंका न करे, देवगण उससे अधिक श्रेष्ठ अन्य किसी को नहीं जानते। हे सौम्य ! मिथ्या गवाही देने वाला किस व्यवहार में कितने बान्धवों का हनन करता है, उसे क्रम से गिनते हुए सुनो। पशुओं के प्रति मिथ्या बोलने में पाँच बाँधवों का, गौ के विषय में दस का, अश्व के विषय में सौ का और मनुष्य के विषय में झूंठ बोलने में सहस्र बान्धवों का हनन-दोष मिलता हैं ॥९३-९८॥

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेनृत वदन् ।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः ॥९९

अप्सु भूमिवदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने ।
अब्जेषु चैव रत्नेयु सर्वेष्वश्ममयेषु च ॥१००

एतान्दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे ।
यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसावद ॥१०१

गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान् ।
प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्राञ्शूद्रवदाचरेत् ॥१०२

तद्वदन्धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः ।
न स्वर्गाच्च्यवते लोकाद्दैवीं वाचं वदन्ति ताम् ॥१०३

शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रर्तोक्तौ भवेद्वधः ।
तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते ॥१०४

स्वर्ण के लिए मिथ्या बोले तो उत्पन्न अनुत्पन्न सन्तान का हत्या का और पृथिवी के लिए झूँठ बोले तो सब जीवोंकी हत्या का पाप-चढ़ता है, इसलिए पृथिवी विषयक झूठ तो कभी न बोले। कूपवापी के जल के विषय में, स्त्री-भोग या मैथुन के विषय में और रत्नादि के विषयमें झूठ बोलने से पृथिवी विषयक झूठ के पाप का ही भागी होना होता है। मिथ्या भाषण के पूर्वोक्त दोषों को भले प्रकार जानकर अपने द्वारा देखे-सुने के अनुसार सत्य-सत्य ही कहो। गोपालक, वाणिज्य करने वाले कारु, कुशीलव, सेनावृत्ति वाले और व्याज से जीविका चलाने वाले ब्राह्मण की गवाही लेते समय उससे शूद्रवत व्यवहार करे। सत्य बात को जानकर भी धर्म के निमित्त मिथ्या बोलने वाला स्वर्ग से वंचित नहीं होता, क्योंकि वह वाणी दिव्य कही जाती है। शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण की यदि सत्य बोलने से हत्या होती हो तो असत्य ही बोले क्योंकि ऐसे सत्य से असत्य ही उत्तम है ॥९९-१०४॥

वाग्दैवत्यैश्च चरुभिर्यजेरस्ते सरस्वतीम् ।
अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥१०५

कूष्माण्डैर्वापि जुहुयाद्घृतमानो यथाविधि ।
उदित्यृचा वा वारुण्या तृचेनाब्दैवतेन वा ॥१०६

त्रिपक्षाद ब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः ।
तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं दशबन्धं च सर्वतः ॥१०७

यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः ।
रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः ।१०८

असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः ।
अविन्दस्तत्वतः सत्यं शपथेनापि लम्भयेत् ॥१०९

महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः कृताः ।
वसिष्ठश्चापि शपथं शेपे पैजवने नृपे ॥११०

उक्त प्रकार असत्य बोलने वाले) अपने असत्यजनित पाप से बचने के लिए दिव्यवाणी वाले मन्त्रों से सरस्वती का यजन करें। अथवा कूष्माण्ड मंत्रों से (यद्देवा देवहेडनम्० इत्यादि) घृत की आहुति दें अथवा, वरुणदैवत मन्त्र (उदुत्तम वरुणपाशम्) से या 'आपोहिष्ठाः' आदि तीन ऋचाओं से हवन करे। यदि रोगरहित गवाह ऋणादि के विषय में तीन पक्ष में भी गवाही न दे तो सम्पूर्ण ऋणराशि उसी से लेनदान को दिलाई जाय तथा सम्पूर्ण ऋण का दशांश राजा को भी उससे मिले। ऐसे जिस गवाह को गवाही देने के एक सप्ताह में कोई रोग हो जाय उसका घर भस्म हो जाय या उसके किसी परिवारी की मृत्यु हो जाय तो भी लेनदार का ऋण और राजादण्ड उसे देना होगा। वादी-प्रतिवादी के मध्य साक्षी न हो और सत्य बात ज्ञात न हो सके तो राजा उनसे शपथ लेकर सत्य की खोज करे। महर्षियों और देवताओं ने संदेहास्पद कार्य के निर्णय के लिये शपथ ली थी, मिथ्या दोष लगने पर वसिष्ठ ने भी अपनी शुद्धि के लिए पैजवान राजा के समक्ष शपथ उठाई थी ॥१०५-११०॥

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः ।
वृथा हि शपथं कुर्वन्प्रेत्य चेह च नश्यति ॥१११

कामिनीषु विवहेषु गवा भक्ष्ये तथेन्धने ।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् ॥११२

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ।
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्त पातकैः ॥११३

अग्नि वाहारयेदेनमप्सु चैन निमज्जयेत् ।
पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक् ॥११४

यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ।
न चार्तिमृच्छति छिप्रं स ज्ञेयः शपथे शूचिः ॥११५

वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य पुरा भ्राता यवीयसा ।
नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतः स्पृशः ॥११६

विद्वान् मनुष्य सामान्य वात पर वृथा शपथ नहीं उठाता, क्योंकि वृथा शपथ उठाने वाले के दोनों लोक बिगड़ जाते हैं। स्त्रियों से रहस्य वार्ता में विवाह वार्त्ता में, गौओं के लिए चारा लेने में, हवन के लिए समिधा लाने और ब्राह्मणों पर संकट पड़ने पर शपथ ले तो उसका पाप नहीं लगता। ब्राह्मण से सत्य की क्षत्रिय से शस्त्र और वाहन की वैश्य से गौ, अन्न और धन की तथा शूद्र से सम्पूर्ण पाप लगने की शपथ उठवाये अथवा उससे लौहे का अग्नि से तपाया हुआ गोला विधिवत्त उठवाये या जल में गोता लगवाये अथवा पुत्र और स्त्री के सिर पर पृथक्-पृथक् हाथ रखवाये। जिन धधकती हुई अग्नि न जलावे, जल ऊपर न उठावे और जिले कोई भारी पीड़ा न हो उसे शपथ में पवित्र जाने। प्राचीन काल में विमाता के छोटे पुत्र द्वारा यह कहा जाने पर कि तुम ब्राह्मण नहीं शूद्रजन्य हो. वत्स ऋषि अग्नि में प्रविष्ट

हुए और शुभाशुभ कर्म के परिक्षक अग्नि ने सत्य के कारण उसका एक रोम भी भस्म नहीं किया ॥११४-११६॥

यस्मिन्यस्मिन्विवादे कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् ।
तत्तत्कार्यं निवर्तेत कृतं चाप्यकृतं भवेत् ॥११७

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च ।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥११८

एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ।
तस्य दण्डविशेषास्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥११९

लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम् ।
भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥१२०

कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् ।
अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु ॥१२१

एतानाहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डान्मनीषिभिः ।
धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च ॥१२२

जिस-जिस व्यवहार में गवाहों द्वारा मिथ्या गवाही दी जाने का निश्चय हो, उस उस में पुनर्विचार करे, क्योंकि वह पूर्व विचार निरर्थक है। लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और भोलापन से दी गई गवाही मिथ्या मानी जाती है। उक्त कारणों में से किसी कारण से मिथ्या गवाही देने वाले को किस दशा में क्या दण्ड दिया जाय, यह क्रम से बताते हैं। लोभ-वश झूठी गवाही देने पर एक सहस्र पथ मोह मिथ्या से भाषण करने पर प्रथम साहस, भयवश मिथ्या बोलने पर दो मध्यम साहस और मित्रता वश झूंठी गवाही देने पर प्रथम साहस का चतुर्गुण दण्ड चाहिए। कामवश मिथ्या साक्ष्य देने पर प्रथम साहस का दस गुना, क्रोधवश मिथ्या भाषण करने पर मध्यम

साहस का तीन गुना, अज्ञान से झूँठ बोलने पर दो सौ पण तथा मूर्खता से झूँठ कहने पर सौ पण का दण्ड दे। धर्म-रक्षा और अधर्म के नियंत्रणार्थं झूँठी गवाही में ये पहले के मुनियों द्वारा निर्दशित दण्ड कहे ॥११७-१२२॥

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः।
प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥१२३

दश स्थानानि दण्डष्य मनुःस्वायंभुवोऽब्रवीत्।
त्रिषु वर्णेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो ब्रजेत् ॥१२४

उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चसमम्।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ॥१२५

अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः।
सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत् ॥१२६

अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनम्।
अस्वर्ग्यं च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥१२७

अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अशयो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥१२८

मिथ्या साक्ष्य वाले क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को दण्ड देकर देश से निर्वासित करे तथा ब्राह्मण को केवल देशसे ही निकाले। स्वायंभुव मनु द्वारा वर्णित दण्ड के दस स्थान तीन वर्णों के लिए हैं, ब्राह्मणों के लिए नहीं, उसे तो केवल देश से ही निर्वासित करे। उपस्थ, उदर, जीभ, हाथ, पाँव, नेत्र नाक, कान, देह और धन से दस स्थान दण्ड के कहे हैं। अपराधी द्वारा इच्छानुसार बार-बार अपराध किया जाना, अपराध का दश और काल तथा उसकी शारीरिक, वैत्तिक, सामर्थ्य, अपराध की गुरुता, लघुता

आदि का भले प्रकार विवेचन करके ही दण्ड व्यवस्था करे। क्योंकि अधर्म पूर्वक दिये जाने वाले दण्ड से संसार में यश-कीर्ति का नाश तथा मरणोपरान्त स्वर्ग की अप्राप्ति होती है, इसलिए वैसा न करे। अदण्डनीयों को दण्ड देना और दण्डनीयों को दण्ड न देना राजा के लिए अपयश और नरक प्राप्त कराने वाला है ॥१२३-१२८॥

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम् ।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम् ॥१२९
वधेनापि यदा त्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात् ।
तदैषु सर्वमप्येतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम् ॥१३०
लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञा प्रथिता भुवि ।
ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥१३१
जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥१३२
त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षेमा परिमाणतः ।
ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥१३३
सर्षपाः षट् यवो मध्यस्त्रियवं त्वेककृष्णलम् ।
पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥१३४

राजा अपराधी को सर्व प्रथम वाग्दण्ड अर्थात् लताड दे, फिर धिक्कार दे और फिर अर्थ दण्ड दे, इसके अनन्तर शारीरिक दण्ड देना चाहिए। अंगछेदन आदि का दण्ड देने पर भी उन अपराधियों का दमन न हो तो पूर्वोक्त चारों दण्डों का प्रयोग करना चाहिए। ताँबा, चाँदी, सोना और इनकी संज्ञाएँ व्यवहार में प्रख्यात हैं उन्हें निःशेष रूप से कहता हूँ। झरोखे के अन्दर

आने वाली सूर्य रश्मियों में को सूक्ष्म धूलिकण देखे जाते हैं, वह एक धूलिकण मान-परिमाण में प्रथम एवं त्रसरेणु कहा जाता है। ऐसे आठ त्रसरेणुओं की एक लिक्षा, तीन लक्षाओं का एक राजसर्षप और तीन राजसषपों का एक गौरसषप तथा छः सर्षपों का एक रत्ती, पाँच रत्तियों का एक माशा और सोलह माशे का सुवर्ण अर्थात् तोला होता॥ २१-१३४।

पल सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश।
द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥१३५

ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः।
कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिक- पणः ॥१३६

धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः।
चतुः सौर्वणिका निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥१३७

पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः।
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः ॥१३८

ऋणे देये प्रतिज्ञाते पञ्चकं शतमर्हति।
अपह्नवे तद्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् ॥१३९

वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद्वित्तविवर्धिनीम्।
अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते ॥१४०

चार सुवर्ण का एक पल, दस का एक धरण और भार में दो रत्ती चाँदी का एक रौप्य माषक समझ। सोलह रौप्य माषको का एक धारण अर्थात् रौप्य पुराण तथा एक कष ताम्र को कार्षापण अथवा पण कहते हैं। एक रौप्य धरण का एक रजत शतमान, चार सुवर्ण का एक निष्क, ढाई सौ पण का एक प्रथम साहस, पाँच सौ पण का मध्यम साहस तथा हजार पण का

उत्तम साहस होता है, ऋण देना स्वीकार करने पर राजा उस ऋण पर पाँच पणं प्रतिशत का दण्ड और स्वोकार न करने पर दस पण प्रतिशत का दण्ड करे। धन की वृद्धि के लिए वसिष्ठ ने जितना व्याज लेना बताया है उतना अर्थात सौ में अस्सीवाँ भाग यानी सवा प्रतिशत प्रतिमास का ब्याज ले ॥१३५-१४०॥

द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन् ।
द्विकं शतं हि गृह्णानो न भवत्यर्थकिल्विषी ॥१४१

द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च शतं समम् ।
मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥१४२

न त्वेवाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात् ।
न चाधेः कालसंरोधान्निसर्गोऽस्ति न विक्रयः ॥१४३

न भोक्तव्यो बलादाधिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत् ।
मूल्येन तोषयेच्चैनमाधिस्तेनोऽन्यथा भवेत् ॥१४४

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः ।
अवहार्यौ भवेतां तौ दीर्घकालमवस्थितौ ॥१४५

संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन ।
धनुरुष्ट्रो वहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥१४६

अथवा सज्जनों के धर्म का स्मरण रखने वाला पुरुष दो पण प्रतिशत मासिक ब्याज ले सकता है, क्योंकि इतना ब्याज लेने वाला पाप का भागी नहीं होता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र में क्रमशः दो तीन चार और पाँच पण प्रतिशत मासिक व्याज वैध है। यदि कोई खेत आदि बन्धक रख कर ऋण ले तो लेनदार पृथक् कोई व्याज न लेता हुआ खेत की उपज ही ब्याज में लेगा, धरोहर रखी वस्तु बहुत काल व्यतीत होने पर न किसी को दे

और न बेचे। धरोहर रखे आभूषण आदि का उपभोग धनिक न करे, यदि करे तो ब्याज न ले, धरोहर की वस्तु खराब हो जाय तो उसके स्वामी को उचित मूल्य देकर सन्तुष्ट करे अन्यथा वह चोर माना जायेगा। गिरवी और उधार की वस्तु बहुत समय व्यतीत होने पर भी छुड़ाने वाला जब माँगे तभी लेने का अधिकारी होता है। गौ, ऊँट, अश्व और हल जोतने के बैल आदि पशु स्वामी की इच्छा से किसी के द्वारा उपभोग किये जाने पर भी उन पर स्वामी का सदा अधिकार रहता है ॥१४१-१४६॥

यत्किंचिद्दश वर्षाणि सन्निधौ प्रेक्ष्यते धनी।
भुज्यमानं परैस्तूष्णीं न स तल्लब्धुमर्हति ॥१४७

अजडश्चेदपौगण्डो विषये चास्य भुज्यते।
भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्द्रव्यमर्हति ॥१४८

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः।
राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति ॥१४९

यःस्वामिनाननुज्ञातमाधिं भङ्क्तेऽविचक्षणः।
तेनार्धवृद्धिर्मोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः ॥१५०

कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहृता।
धान्ये सदे लवे वाह्ये नातिक्रामति पञ्चताम् ॥१५१

कृतानुसारादधिका व्यतिरिक्ता न सिद्ध्यति।
कुसीदपथमाहुस्तं पञ्चकं शतमर्हति ॥१५२

यदि वस्तु का स्वामी अपनी वस्तु का उपभोग किसी अन्य द्वारा दस वर्ष से किया जाता देखे और लेने का प्रयत्न न करे तो फिर उस वस्तु पर उसका स्वत्व नहीं रहता। अजड़ या सोलह वर्ष से अधिक आयु के वयस्क पुरुष के समक्ष उसके धन

का उपभोग अन्य पुरुष बेरोकटोक करे तो भोगने वाला ही उसका अधिकारी होता है, स्वामी नहीं। धरोहर, ग्रामसीमा या बालक का धन, उपनिधि (गुप्त धन), दासी, राजस्व और श्रोत्रिय का धन कोई अन्य भोगे तो भी धनी का अधिकार नष्ट नहीं होता। जो धनिक स्वामी की अनुमति के बिना उसकी बन्धक वस्तु का उपभोग कर, वह उससे ब्याज न लें। मूल और ब्याज एक साथ लेनेसे ब्याज और मूलधन दुगने से अधिक नहीं हो सकता, अनाज फल, ऊन बैल एवं अश्वादि उधार लेने पर उनके मूल्य से पाँच गुने से अधिक ब्याज लेना अवैध है। जिस दर से ब्याज लेना उचित है, उससे अधिक न ले. अधिक ब्याज कुसोद कहलाती हैं, पांच प्रतिशत से अधिक ब्याज कभी न लें ।।४७-१५२।।

नातिसांवत्सरीं बुद्धि न चादृष्टां पुनर्हरेत् ।
चक्रवृद्धिःकालवृद्धिःकारिता कायिका च या ।।१५३

ऋणं दातुमशक्तो यः कर्तुमिच्छेत्पुनः क्रियान् ।
स दत्वा निर्जितां वृद्धि करण परिवर्तयेत् ।।१५४

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत् ।
यावती संभवेद्वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति ।।१५५

चक्रवृद्धि समारूढो देशकालव्यवस्थितः ।
अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् ।।१५६

समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः ।
स्थापयन्ति तु यां वृद्धि सा तत्राधिगम प्रति ।।१५७

यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह मानवः ।
अदर्शयन्स वं तस्य प्रयच्छेत्स्वधनादृणम् ।।१५८

वर्ष से अधिक बीतने पर ब्याज न ले (अर्थात् वर्ष के भीतर ही ब्याज का हिसाब कर ले), पहिले से न देखा ब्याज, ब्याज

पर ब्याज समय बढ़ा कर ब्याज तथा शारीरिक श्रम के रूप में या कष्ट देकर बढ़ाया हुआ ब्याज न ले। ऋण चुकाने में असमर्थ हो और पुनः लिखित देने का इच्छुक हो तो पूर्व का सब ब्याज ऋणदाता को देकर लेख का परिवर्तन करे। यदि उस समय ब्याज का धन भी न दे सके तो मूल धन में ब्याज जोड कर कागज परिवर्तित कर दे। गाड़ी वाला निश्चित स्थान पर पहुँचाने की बात तय करके न पहुँचावे या किसी को निश्चित अवधि के लिए गाड़ी देकर, बीच में ही कार्य को रोक दे तो वह गाड़ी वाला भाड़ा लेने का अधिकारी नहीं होता। दूसरी ओर समय के अनुसार कितना भाड़ा मिले, तो इस विषय के कुशल व्यक्तियों द्वारा नियत भाड़ा ही ठीक समझा जायगा। जो जिस किसी का प्रतिभू और ऋणी को न्यायालय में उपस्थित न कर सके तो वह धनी का ऋण स्वयं चुरायेगा ।।१३५-१५३।।

प्रातिभाव्यं वृथादानसाक्षिकं सौरिकं च यत् ।
दण्डशुल्कावशेषं च न पुत्रो दातुमर्हति ।।१५९

दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधि स्यात्पूर्वचोदितः ।
दानप्रतिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत् ।।१६०

आदातरि पुनर्दाता विज्ञानप्रकृतावृणम् ।
पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते परीप्सेत्केन हेतुना ।।१६१

निरादिष्टधनश्चेतु प्रतिभूः स्यादलंधनः ।
स्वधनादेव तद्दद्यान्निरादिष्ट इति स्थितिः ।।१६२

मत्तोन्मद्यार्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा ।
अरंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिद्धय त ।।१६३

सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता ।
बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्व्यावहारिकात् ।।१६४

प्रातिभाव्य, वृथादान, आक्षिक (द्यूत विषयक), सौरिक मद्य विषयक), दण्डशुल्क और कर का अवशेष, इन ऋणों का देनदार पुत्र नहीं होता। ऋणी को सभामें उपस्थित करने वाले जमानती (दर्शनप्रतिभू) के विषय में यह नियम है. किन्तु ऋण दिलाने के जमानती (दानप्रतिभू) के मरने पर उस ऋण का देनदार उसका पुत्र होगा। दानप्रतिभू न होते हुए भी, जिसने मूल ऋण के बराबर धन लेकर जमानत दी है, यह जान कर दिये हुए ऋण की जमानती के मरने पर कैसे वसूल किया जाय? यदि ऋणी से जमानती को ऋण शोधन योग्य धन प्राप्त हुआ हो तो जमानती के मरने पर उसका पुत्र ऋण का शोधन करे। मत्त, उन्मत्त, आत, रोगी, बालक और वृद्ध के साथ जो व्यवहार उनके घर के लोगों की सम्मति के बिना होता है, वह सिद्ध नहीं होता। निश्चित हुई बात भी धर्मशास्त्र और व्यवहार के विरुद्ध होने पर सत्य नहीं माना जा सकता ॥१५९-१६४॥

योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ।
यत्र वाप्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत् ॥१६५

ग्रहीता यदि नष्टः स्वात्कुटुम्बार्थे कृतो व्ययः ।
दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः ॥१६६

कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपि व्यवहारं यमाचरेत् ।
स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न विचालयेत् ॥१६७

बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम् ।
सर्वान्बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् ॥१६८

त्रयःपरार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणःप्रतिभूःकुलम् ।
चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आढ्यो वणिङ् नृपः ॥१६९

अनादेयं नाददीत परिक्षीणोऽपि पार्थिवः ।
न चादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत् ।।१७०

छल से कोई वस्तु बन्धक न रखे न बेचे न दान दे न ले अथवा छल से कोई व्यवहार हुआ हो तो राजा उसे रद्द कर दे। सम्मिलित कुटुम्ब के व्यय के निमित्त ऋण लेने वाले का मृत्यु हो जाय तो बँटे हुए बांधव अपने-अपने धन से ऋण चुका दे। यदि अधीन पुरुष भी अपने स्वामी के परिवार के निमित्त धन ले तो उसका स्वामी देश विदेश में कहीं भी हो उस ऋण का देनदार स्वयं को समझो। मनुजी के कथनानुसार बल पूर्वक दिया भोगा लिखाया और अन्यान्य कार्य किया जाय उसे न करने के समान अर्थात् अमान्य समझो। साक्षी प्रतिभू और कुल यह तीनों पदार्थ से क्लेश तथा ब्राह्मण धनिक वणिक और राजा यह चारों परार्थ से वृद्धि प्राप्त करते हैं। धनाभाव में भी राजा न लेने योग्य वस्तु का ग्रहण करे और समृद्ध होने पर भी लेने योग्य सूक्ष्म वस्तु को भी न छोड़े ।।१६५-१७०।।

अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् ।
दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति ।।१७१
स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्त्वबलानां च रक्षणात् ।
बलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्धते ।।१७२
तस्माद्यम इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये ।
वर्तेत याम्यया वृत्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।।१७३
यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः ।
अचिरात्तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः ।।१७४
कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान्धर्मेण पश्यति ।
प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ।।१७५

यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं नृपः ।
स राज्ञा चच्चतुर्भाग दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ।।१७७

न लेने योग्य वस्तु के ग्रहण करने और लेने योग्य वस्तु के न लेने से जिस राजा का दौबल्प प्रकट होता हैं उसके लोक परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते । न्यायपूर्वक धन का ग्रहण और स्वजातियों से सम्बन्ध रखते तथा निर्बलों की रक्षा करने से सजा कीं बलवृद्धि होती और दोनों लोग सुधार जाते है । इसलिए यम के समान राजा अपने प्रिय-अप्रिय को छोड़कर क्रोध और इन्द्रियों को जीतता हुआ यम की वृत्ति से रहे। मोहवश अधर्म कार्य करने वाले दुरात्मा राजा को शत्रु शीघ्र ही अपने रधीन कर लेते है । काम क्रोध को जीत कर सब कार्यो का धर्म पूर्वक देखते हुए राजा के पीछे प्रजा भी नदियों के समुद्र के पोछे चलने के समान चलती है । जो ऋणी राजा से धनिक की अनुचित रूप चौथा भाग दण्ड करे और उससे धनिक का धन भी दिलावे ।।१७१-१७६।।

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः ।
समोऽवकुष्टजाति दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः ।।१७७
अनेन निधिना राजा मिथोविवदतां नृणाम् ।
साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समता नयेत् ।।१७८
कुलज वृत्तसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ।
महापक्षे धनिन्यार्ये निक्षेपं निक्षिपेद्‌बुधः ।।१७९
यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः ।
स तथैव गृहीतव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ।।१८०

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति।
स याच्यः प्राङ्विवाकेन तन्निक्षेप्तुरसंनिधो ।१८१
साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितैः ।
अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य वत्वतः ॥१८२

यदि ऋणी धनिक का सजातीय या नीच जाति का हो तो वह कार्य करके भी ऋण चुका सकता हैं। यदि ऋणी श्रेष्ठ जाति का हो तो वह हीन जाति के धनिक की सेवा न करे व.न् थोड़ा थोड़ा करके चूका दे। परस्पर विवाद करते हुए व्यक्तियों के व्यवहार का हरण राजा साक्ष्य और प्रमाण के आधार पर करे कुलीन चरित्रवान धर्मज्ञ सत्यवादी, अतिकुटुम्बा, धनी और सरल बुद्धि वाले के पास ही विद्वान् पुरुष अपना धन जमा करे। जो जैसे जिसके हाथ में धन दे वह वैसे ही उसी से धन ले क्योंकि जैसे दे वैसे हो ले यह नीतिसम्मत ।है धरोहर रखने वाले द्वारा माँगने पर भी न दे पर न्यायाधीश धराहर रखने वाले के परोक्ष में जिसके पास रखी है उससे धरोहर मांगे। प्रथमबार को धरोहर में साक्षी न हो तो न्यायाधीश अपने सुन्दर युवक गुप्तचरों द्वारा उनके पास हिरण्य रखवाये आर उन्हीं से वह वापस मँगवाले ॥१७९ १ २॥

स यदि प्रतिपद्येत यथान्यस्तं यथाकृतम् ।
न तत्र बिद्यते किंचिद्यत्परैरभियुज्यते ॥१८३
तेषां न दद्याद्यति तु तद्धिरण्य यथांविधि।
उभौ निगृह्य दाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा॥१८४
निक्षेपोपनिधी नित्यं न देना प्रत्यनन्तरे।
नश्यतो विनिपाते तावनिपाते त्वनाशिनौ ॥१८५

स्वमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्यनन्तरे ।
न स राज्ञा नियोक्तव्यो न निक्षेप्तुश्च बन्धुभिः ॥१८६
अच्छलेनैव चान्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम् ।
विचार्य तस्य वा वृत्तं साम्नैव परिसाधयेत् ॥१८७
निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परिसाधने ।
समुद्रे नाप्नुयात्किंचिद्यदि तस्मान्न संहरेत् ॥१८८

यदि धनी उस धरोहर की वस्तु को ज्यों की त्यों लौटा दे तो न्यायाधीश समझले कि धरोहर रखने वाले ने जो वाद प्रस्तुत किया है वह झूठा है। यदि गुप्तचारों द्वारा रखो हिरण्य-धरोहर को वह धनी न लौठावे तो न्यायाधीश उससे दोनों धरोहरों को वापस दिलावे यही धर्मसंगत हैं। धरोहर का प्रकट या गुप्तधन जिसने रखा हो उसी को दे उसके रहते हुए उसके उत्तराधिकारी कों भी न दे क्योंकि धरोहर रखने वाले का अधिकार उसके जीवनपर्यन्त रहता है मरने पर नहीं रहता। यदि धरोहर रखने वाले के मरने पर धनी उसके उत्तराधिकारी कों स्वयं ही धरोहर दे दे तो उस पर उसके बन्धु या राजा व्यर्थ अभियोग न लगावे छलरहित भाव से उस धन का निश्चय कर अथवा धरोहर रखने वाले के वृत्त को जानकर सत्य का निर्णय करे। यह विधि सभी धरोहर को प्रमाणित करने के विषय में बताई गई, है किन्तु मुद्रांकित धरोहर में से कुछ न लेने पर कोई दोष नहीं बनता ॥१८३-१८८॥

चोरेर्हृतं जलेनोढमग्निना दग्धमेव वा ।
न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरति किंचन ॥१८९
निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेप्तारमेव च ।
सर्वेरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः ॥१९०

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते ।
तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम् ॥१९१
निक्षेपस्यापहर्तारं तत्समं दापयेद्दमम् ।
तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः ॥१९२
उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः ।
ससहायः स हन्तव्यः प्रकाश विविधैर्वधैः ॥१९३
निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलसंनिधौ ।
तावानेव स विज्ञेयो विब्रुवन्दण्डमर्हति ॥१९४

यदि धनी ने धरोहर में से स्वयं कुछ नहीं लिया है तो उसके चुराये जाने बाढ़ में बहने या अग्नि में जलने पर देने का उत्तर दायित्व नहीं रहता। धरोहर को हड़पने वाले या धरोहर न रख कर झूठमूठ माँगने वाले की वैदिक शपथ आदि सब उपायों से परीक्षा करके सत्य असत्य का निर्णय ले। जो धरोहर रखकर न लौटावे और जो धरोहर न रखकर मिथ्या रूप से माँगे वे दोनों ही चोर के समान दण्डनीय हैं अथवा राजा इनसे धरोहर के मूल्य का ही अर्थदण्ड वसूल करे। धरोहर हड़पने वाले को धरोहर धन के समान तथा उपनिधि हड़पने वाले को भी उतना ही दण्ड दे। जो छलपूर्वक पराधन का हरण करे उसे तथा उसके सहायकों को राजा सबके सामने अनेक प्रकार की शारीरिक यन्त्रणा देकर हनन कर दे। जिसने जितना धन साक्षी के समक्ष धरोहर रखा हो उसे उतना ही धन साक्षी के कहने पर मिले अधिक माँगने वाला दण्ड का भागी होगा ॥१८८-१९४॥

मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथ एव वा ।
मिथ एव प्रदातव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥१९५

निक्षिप्तस्य धनस्यैवं प्रीत्योपनिहितश्च च।
राजा विनिर्णयं कुर्यादक्षिण्वन्न्यासधारिणम् ॥१९६

विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसंमतः।
न तं नयेत साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम् ॥१९७
अवहार्यो भवेच्चैव सान्वयः षट्शतं दमम्।
निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तःस्याच्चौरकिल्बिषम् ॥१९८

अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा।
अकृतः स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः ॥१९९

संभोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित्।
आगमैः कारणं तत्रन संभोग इति स्थितिः ॥२००

जिसमें धन एकान्त में दिया और लिया हो वह एकान्त में ही देने लेने के योग्य है क्योकि जैसे ले वैसे ही दे। अपनी इच्छा से उपभोगार्थं दी गई धरोहर के विषय में राजा इस प्रकार से निर्णय दे जिसमें लेने और देने वालो में से किसी को भी कष्ट न हो। जो स्वामी की अनुमति के बिना उसका माल बेचे वह स्वयं कों चोर न समझे तो भी चोर है, वह किसी व्यवहार में साक्षी न बने। परधन का विक्रेता यदि स्वामी का सम्बन्धी हो तो छः सौ पण से दंडित किया जाय यदि वह स्वामी से सम्बन्धित न हो और उस धन से उसका कुछ लगाभी न हो तो उसे चोर के समान अपराधी समझे। जो जिस धन का स्वामी नही, उनके द्वारा दिया या वेचा धन व्यवहार की मर्यादा के विपरीत होने के कारण न देन और न बेचने के ही समान है। जहां किसी वस्तु का भोग तो देखा जाय किन्तु उसके आगम का कोई प्रमाण न मिले तो उसमें आगम ही कारण होगा, भोग नहीं ॥१९५-२००॥

विक्रयाद्यो धनं किंचिद्गृह्णीयात्कुलसंनिधौ ।
क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम् ॥२०१

अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः ।
अदण्ड्यो मुच्यते राज्ञा नाष्टिको लभते धनम् ॥२०२

नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रयमर्हति ।
न चासारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् ॥२०३

अन्यां चेद्दर्शयित्वान्या वोढुः कन्या प्रदीयते ।
उभे त एकशुल्केन वहेदित्यब्रवीन्मनुः ॥२०४

नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या न च या स्पृष्टमैथुना ।
पूर्वं दोषानभिख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ॥२०५

ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म परिहापयेत् ।
तस्य कर्मानुरूपेण देयोऽशः सह कर्तृभिः ॥२०६

व्यापारियों के समक्ष मूल्य देकर जो वस्तु क्रय की जाय, वह न्यायपूर्वक प्राप्त करने के कारण विशुद्ध होती है। विक्रेता का पता न लगने पर भी क्रेता का बाजार में मूल्य देकर माल क्रय करना सिद्ध हो तो क्रेता दण्ड भागी नहीं होता, इसलिए बिना दण्ड के ही उसे छोड़ दे तथा जिसका माल हो उसी को दे दे। कोई विक्रेता मिलावटी श्रेष्ठ के स्थान पर निकृष्ट असली के छल में नकली अथवा तोल नाप में कम वस्तु नहीं बेच सकता उत्तम कन्या दिखाकर अन्य कन्या से विवाह करा दिया जाने पर वर एक शुल्क से ही दोनों कन्याओं को विवाह ले यह मनु का कथन है। उन्मता कुष्ठिनी या भोगी हुई कन्या के दोष कह कर जो कन्या का दान करे, वह दण्ड भोगी नहीं होता। यज्ञ में वरण किया हुआ ऋत्विज रोगग्रस्त होने के कारण अपना कर्म

न कर सके तो उसे अन्य ऋत्विजों के साथ क्रम के अनुरूप दक्षिण का एक अंश दिया जाय ॥२०१-२०६॥

दक्षीणाषु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन् ।
कृत्स्नमेव लभेतांशमन्येनैव च कारयेत् ॥२०७

यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युरुक्ताःप्रत्यङ्गदक्षिणाः ।
स एव ता आददीत भजेरन्सर्व एव वा ॥२०८

रथं हरेत चाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम् ।
होता वापिहरेदश्वमुगाता चाप्यनः क्रये ॥२०९

सर्वेषामर्द्धिनो मुख्यास्तदर्धेनार्थिनोऽपरे ।
तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्णाशाश्च पादिनः ।२११०

संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरह मानवः ।
अनेन विधियोगेन कर्तव्यांशप्रकल्पना ॥२११

धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम् ।
पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देय तस्यतत्भवेत् ॥२१२

पूरी दक्षिणा प्राप्त करके ऋत्विज् यदि अपना कर्म पूरा न कर सके तो दक्षिणा का पूरा अंश रख कर अवशिष्ट कर्म किसी अन्य से पूरा करा दे । जिस अग को जो दक्षिणा बताई हैं, उसे ऋत्विज् स्वयं ले अथवा सब मिल कर बांठ ले । किसी आधान में अध्वर्यु रथ ब्रह्मा और होता अश्व तथा उद्गाता शकट और क्रय ले ' सोलह में चार प्रमुख ऋत्विज् आधी दक्षिणा, दूसरी श्रेणी के चार उससे आधो तीसरी श्रेणी के चार उससे तिहाई तथा चौथी श्रेणी के चार उससे चौथाई दक्षिणा प्राप्त करे। एक साथ मिलकर गृह आदि बनाने वाले लोग भी इसी नियम से अपना अंश निश्चित करे जिस याचक की याचना पर जो दाता

धर्म कार्य के लिए धन प्रदान करे और याचक उसे धर्म कार्य में न लगावे तो वह धन दाता का ही होता है ।।२०७-२१२।।

यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः ।
राज्ञा दाप्यःसुवर्णस्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः ।।२१३
दत्तस्यैषोदितो धर्म्या यथावदनपक्रिया ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् ।।२१४
भृतो नार्तो न कुर्याद्यो दर्पात् कर्म यथोदितम् ।
स दण्ड्यःकृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् ।।२१५
आर्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्यथाभाषितमादितः ।
स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम् ।।२१६
यथोक्तमार्तः सुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेद् ।
न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्मणः ।।२१७
एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादानकर्मणः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम् ।।२१८

यदि याचक दर्प या लोभ के वश में वह धन न लौटावे तो राजा उसे चोरी के दोष से बचाने के लिए एक सुवर्ण का दण्ड दे। यह प्रदत्त वस्तुओं को धर्मपूर्वक न लौटाने के विषय में कहा गया अब वेतन न देने के विषय में कहेंगे। स्वस्थ होकर भी जो भृत्य अहंकारवश कार्य न करे उसे राजा आठ कृष्णल से दण्डित करता वेतन भी न दे रोगी व्यक्ति स्वस्थ होने पर पूर्ववत कार्य करे तो अपना बहुत समय का शेष वेतन भी प्राप्त कर सकेगा। पीड़ितावस्था में यथोत कार्य किसी अन्य से न करावे या स्वस्थ होकर भी उस कार्य को सम्पन्न न करे तो शेष रहे कार्य का वेतन उसे न दे वेतन के देने लेने के विषक में यह व्यवस्था हुई अब प्रतिज्ञाभांग करने के सम्बन्ध में कहता हूँ ।।२१३-२१८।।

यो ग्रामदेशसंधानां कृत्वा सत्येन संविदम् ।
विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥२१६
निगृह्य दापयेच्चैतं समयव्यभिचारिणम् ।
चतुः सुवर्णान्षण्निकांश्छतमानं च राजतम् ॥२२०
एतद्दण्डविधिं कुर्याद्धार्मिकः पृथिवीपतिः ।
ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणाम् ॥२२१
क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत् ।
सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत वा ॥२२२
परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत् ।
आददानो ददच्चैव राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥२२३
यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ॥२२४

ग्राम देश और संघ का जो व्यक्ति सत्य शपथ पूर्वक कार्य की प्रतिज्ञा ले फिर उस कार्य को न करे तो राजा उसे राज्य से निर्वासित करदे। प्रतिज्ञा करके तथा समय कार्य न करने वाले को बन्दी बनाकर चार सुवर्ण, छः निष्क या तीन सौ बीस रत्ती चांदी का दण्ड दे, अपराध की लघुता-गुता के अनुसार तीनों ही वसूल करे या कम। धर्मज्ञ राजा ग्रामवासी ब्राह्मण जाति में से जो प्रतिज्ञा भंग करे उसे यह दण्ड दे। किसी वस्तु को खरीद या बेच कर पछतावे तो वह वस्तु दस दिन में लौटाई जा सकती हैं। किन्तु दस दिन के पश्चात् नही लौटाई जा सकती इस स्थिति के पश्चात् क्रेता या विक्रेता कोई बल प्रयोग करें तो राजा उस पर ६०० पण दण्ड करे। यदि कोई दूषित कन्या के दोष बताये विना ही दान करदे। तो उसे राजा छियानवे पण से दण्डित करे ॥२१६-२२४॥

अकन्येति तु यःकन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः ।
स शतं प्राप्नुयाद्दण्ड तस्या दोषमदर्शयन् ॥२२५
पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः
नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ॥२२६
पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियते दारलक्षणम् ।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेय विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥२२७
यस्मिन्यस्मिन्ते कार्येयस्येहानुशयो भवेत् ।
तमनेन विधानेन धर्मं पथि निवेशयेत् ॥२२८
पशुषु स्वामिनां चैव पालानं च व्यतिक्रमे ।
विवादं संप्रवक्ष्यामि यथावद्धमतत्वतः ॥२२९
दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे ।
योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वक्तव्यतामियात् ॥२३०

यदि कोई द्वेशवश कन्या को अकन्या कह कर झूँठ दोष लगावे उस पर राजा कन्या के दोष पर विचार किये बिना ही सौ पण दंड करे। विवाह के सभी मन्त्र कन्याओं के लिए ही है जिसका कौमार्य नष्ट हो चुका है उसके लिए नहीं क्योंकि उनका धम तो पहिले ही नष्ट हो चुका। विवाह-मन्त्र पाणिग्रहण के निमित्त तथा पत्नीत्व के ही कारण हैं, उन मन्त्रों की निष्ठा विज्ञ जन सप्तम पद में जानें। क्रय-विक्रय के अतिरिक्त अन्य व्यवहारों में भी जो अपनी भूल पर पछताये उसे राजा पूर्वोक्त नियम के अनुसार दस दिन में ही भूल सुधार का अवसर देकर धर्म मार्ग पर चलावे। अब गवादि पशुओं के पालकों और उनके स्वामियों में विवाद उपस्थित होने के विषय में कहते हैं। चराने वाले को सौंपे हुए पशुओं के द्वारा दिन या रात्रि मे कोई गड़बड़ी की जाय

तो इसका उतरदायित्व चुराने वाले पर और रात्रि में स्वामीं का सौंपने के पश्चात् गड़बड़ी करे तो उसका उत्तरदायित्व स्वामी पर होता है ॥२२५-२३०॥

गोपः क्षीरभृतो यस्तु दुह्याद्दशतो वराम् ।
गोस्वाम्यनुमते भृत्यःसास्यात्पालेऽभृते भृति ॥२३१

नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहनं विषमे मृतम् ।
हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ॥२३२

विघुष्य तु हृयं चौरेर्न पालो दातुमर्हति ।
यदि देशे च काले च स्वामिनःस्वस्य शंसति ॥२३३

कर्णौ चर्मंचवालांश्च बस्ति स्नायुंचरोचनाम् ।
पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्गानि दशयेत् ॥२३४

अजाविके तु संरुद्धं वृकैः पाले त्वनायति ।
यां प्रसह्य वृको हन्यात्पाले तत्किल्बिष भवेत् ॥२३५

तासां चेदवरुद्धानां चरन्तीतांमिथो वने ।
यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किल्बिषी ॥२३६

वेतन में दूध लेने का इच्छुक गोपालक सर्वश्रेष्ठ गौ का दूध स्वामी कीं अनुमति से ले सकता है। पालक की उपेक्षा से पशु के खोने कृमियों द्वारा काटने कुत्तों द्वारा आहत होने ऊँचे स्थान से गिर कर मरने कहीं बिछुड़ जाने या चले जाने पर राजा द्वारा निर्धारित मूल्य पालक को देना होगा। चोर द्वारा पशु को चराते समय पालक शोर करके स्वामी को सूचित कर दे तो वह उस पशु का मूल्य नही देगा। पशु के मरने पर पालक उसके कान चर्म ऊन बस्ति स्नायु और रोचन स्वामी को दे तथा सींग खुर आदि दखावे। शृंगाल द्वारा पशु के घिरने

पर पालक उसे बचाने को न दौड़ तो पशु के मरने का दोष पालक पर होगा पालक के चराते समय यदि शृगाल झपट कर किसी को मार दे तो पालक दोषी नहीं होगा ॥ १-२३६॥

धनुःशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ।
शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥२३७
तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि ।
न तत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥२३८
वृतिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत् ।
छिद्रं च वारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ॥२३९
पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः।
स पालःशतदण्डार्हो विपालान्वारयेत्पशून् ॥२४०
क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पणमर्हति ।
सर्वत्र तु सदो देयः क्षेत्रिकस्येति धारण ॥२४१
अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवपशूंस्तथा ।
सपालान्वा विपालान्वा न दण्ड्यान्मनुरब्रवीत ॥२४२

ग्राम के चारों ओर सौ धनुष अथवा तीन बार लाठी फेंकने पर जितनी दूरी रहे, उतना स्थान गोचरभूमि के लिए रखे तथा नगर के निकट तिगुनी भूमि रखे। कोई पशु यदि मेंड़ रहित खेत का धान नष्ट कर दे तो राजा उसके पालक को दण्डित न करे। वहां के निकटवर्ती खेत की मेंड़ इतनी ऊँची हो कि ऊँट भीतरी के धान को न देख पावे तथा उसमें ऐसे छेद भी न रखे, जिनमें श्वान या शूकर का मुख प्रविष्ट हो सके। मार्ग में या ग्राम के समीप मेंड़ युक्त खेत में घुस कर पशु धान को नष्ट करे और पालक साथ रह कर भी उसे न रोके तो राजा उस पालक पर

सौ पण दण्ड करे,यदि पालक साथ न हो तो खेत वाला पशुओं को खेत में न आने दे। पशु द्वारा अन्य खेतों का धान नष्ट होने पर पशु-स्वामी पर सवा पण दण्ड तथा सम्पूर्ण खेत नष्ट होने पर पर्ण क्षति आ पूर्ति पशु-स्वामी को करनी होगी। मनु के कथनानुसार दस दिन क भीतर की विवाही हुई गौ चक्रशूल से अंकित सांड और दवनिमित्त सुरक्षित पशु चाहे पालक सहित हों या पालक-रहित खेत को चर लें तो दण्डनीय नहीं हो सकते ॥२३७-२४२॥

क्षत्रियस्यात्यते दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत।
ततोऽर्धदण्डो भृत्यानामयानात्क्षेत्रिकस्य तु। २४३

एतद्विधानमातिष्ठेद्धार्मिकः पृथिवीपतिः।
स्वामिनां च पशूना च पालानां च व्यतिक्रमे ॥२४४

सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः।
ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु ॥२४५
सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकाम्।
शाल्मलीन्सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान्॥२४६
गुल्मान्वेणूश्च विविधाञ्छमीवल्लीस्थलानि च।
शरान्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति ॥२४७
तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च।
सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥२४८

कृषक की भूल से फसल नष्ट होने पर राजा अपने अंश का दस गुना धन कृषक से बसूल करे, यदि कृषक के अनजाने में भृत्यों की उपेक्षा से खेती नष्ट हो जाय तो कृषक से पाँच गुना

दण्ड लेना चाहिए। स्वामी, पशु एवं पालकों के दोष में धार्मिक राजा उपर्युक्त नियम पाले। दो ग्रामों में सीमा विषयक विवाद उत्पन्न हो तो ज्येष्ठ माँस में सीमा के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देने पर निर्णय करे। वट पीपल, पलाश सेमर साल, ताल और क्षीर वृक्ष चिन्ह के लिए सीमा पर लगावे। गूलर, बांस शमीवृक्ष लताएँ टीले, सरकडे या टेढ़ वृक्ष लगाने से सीमा नष्ट नहीं होती। सीमा मिलने के स्थान पर पोखर, कुआ बावड़ी नहर और देव मन्दिर निर्माण करावे ॥२४३-२४८॥

उपच्छन्नानिचान्यानिसीमालिङ्गानिकारयेत् ।
सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम् ॥२४९
अश्मनोऽस्थीनिगोवालांस्तुषान्स्मकपातिकाः ।
करीषमिष्टकाङ्गारांश्छर्करा वालुकास्तथा ॥२५०
यानि चैवंप्रकाराणि कालाभ्द मिर्न भक्षयेत् ।
तानि संधिषु सीमायामप्रका तानि कारयेत् ॥२५१
एतर्लिङ्गैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः ।
पूर्वभुक्तया च सततमुदकस्यागमेन च ॥२५२
यदि संशय एव स्याल्लिङ्गानमपि दर्शने ।
साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णयः ॥२५३
ग्रामीयककुलानां च समक्षं साम्नि साक्षिणः ।
प्रष्टव्याः सीमलिङ्गानि तयोश्चैव विवादिनोः ॥२५४

सीमा के विषय में भूल होती देख कर राजा सीमा के और भी गुप्त चिन्ह करावे। पाषाण खण्ड अस्ति चमर, भुसी, भस्म, खोपड़ी, शुष्क कंडे ईंट कोयला, कंकड़, और रेत तथा वैसे ही अन्य पदार्थ, जो पृथिवी के रूप में न मिल सके उन्हें सीमा मिलने के स्थान पर गुप्त रीति से गड़वा दे उपर्युक्त चिन्ह

पूर्व का अधिकार और जल का प्रवाह देखकर दो ग्रामों की विवादग्रस्त सीमा का निर्णय करे चिन्हों को देखने के पश्चात भी शंका रहे तो साक्षियों से प्रमाण लेकर सीमा विवाद को निपटावे। ग्रामवासियों के समक्ष राजा साक्षियों से उन विवादग्रस्त ग्रामों की सीमा के लक्षण पूछे ॥२०१-२५ ॥

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुःसमस्ताःसीम्नि निश्चयम् ।
निबध्नीयात्त सीमां सर्वास्तांश्चैव नामतः ॥२५५
शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वी स्रग्विणो रक्तवाससः ।
सुकृतैः शापिताः स्वैःस्वैर्नयुस्ते समञ्जसम् ॥२६६
यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः ।
विपरीतं नयन्तस्तु दाप्याः स्युर्द्विशतं दमम् ॥२५७
साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाःसामन्तवासिनः ।
सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ ॥२५८
सामन्तानामभावेतु मौलानसीम्नि साक्षिणाम् ।
इमानप्यनुयुञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान् ॥२५९
व्याधाञ्छाकुनिकान्गोपान्कैवर्तान्मूलखानकान् ।
व्यालग्राहानुञ्छवृत्तानन्यांश्च वनचारिणः ॥२६०

प्रश्न करने पर वे साक्षीगण सीमा विषयक जो बात कहें उसी प्रकार सीमा के चिन्ह और साक्षियों के नाम याददाश्त के लिए लिख ले साक्षी देह पर लाल वसन कंठ में माला सिर पर मिट्टी धारण कर अपने अपने पुण्यों की शपथ लेकर सीमा का यथार्थ निर्णय करे। सत्य सीमा बतलाने वाले गवाह दोष रहित होते हैं किन्तु जो गवाह सीमा विषयक मिथ्या भाषण करें उन्हें दो सौ पण से दण्डित करे। साक्षी न होने पर निकटवर्ती चार

ग्रामों के प्रमुख व्यक्ति राजा के समक्ष पहुँच कर सीमा का निर्णय करें। यदि ग्रामों के प्रमुख व्यक्ति भी न मिलें तो राजा आगे कहे जाने वाले वनचर एवं सीमा के जानने वाले पुरुषों से पूछे—व्याध, बहेलिया, गोपालक, नाविक, जड़ी-भूटी की खोज करने वाले, सँपेरे तथा उच्छवृत्ति से जीवन-यापन करने वाले से सीमा विषयक प्रश्न करे॥२५५- ६०॥

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणम् ।
तत्तथा स्थापयेद्राजा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः ॥२६१
क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च ।
सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥२६२
सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम् ।
सर्वे पृथक्पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥२६३
गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यःस्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः ।२६४
सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित् ।
प्रदिशेद्भूमिमेतेषामुपकारादिति स्थितिः ॥२६५
एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमाविनिर्णये ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥२६६

प्रश्न करने पर वे सीमा विषयक जो चिन्ह बतावें राजा उसी के अनुसार दो ग्रामों की, धर्मयुक्त सीमा निर्धारित करे। खेत, कूप, तड़ाग और घर आदि की सीमा का विवाद होने पर राजा ग्राम वासियों से पूछ कर निर्णय करे। यदि ग्रामवासी गवाह मिथ्या भाषण करते प्रतीत हों तो राजा उनमें से प्रत्येक को पृथक्-पृथक् मध्यम साहस दण्ड दे। भय दिखाकर जो कोई

किसी का गृह, तड़ाग, उद्यान और खेत छीन ले तो राजा उसे पाँच सौ पण से तथा अनजान में ले ले तो दो सौ पण से दण्डित करे। साक्षी और चिन्हों का अभाव हो तो धर्मज्ञाता राजा उन दो ग्रामों को विवादग्रस्त भूमि स्वयं इन्हें प्रदान कर दे, जिन्हें करने से उपकार सिद्ध हो। सीमा निर्णय विषयक यह सम्पूर्ण धर्म तुम्हारे प्रति कहा गया अब कठोर भाषण के लिए दण्ड-व्यवस्था कहेंगे ॥२६१-२६६॥

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ।
वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति ॥२६७

पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने ।
वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥२६८

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ।
वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥२६९

एकजातिर्द्विजातीस्तु वाचा दारुणया क्षिपन् ।
जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः ॥२७०

नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ।
निक्षेप्योऽयोमयःशङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः ॥२७१

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥२७२

ब्राह्मण के प्रति कठोर वचन कहने वाले क्षत्रिय को सौ पण, वैश्य को डेढ़ सौ से दो सौ पण तथा शूद्र को देह से दण्डित करे। यदि ब्राह्मण क्षत्रिय के प्रति वैसे कठोर वचन कहे तो पचास पण वैश्य के प्रति कहे तो पच्चीस पण और शूद्र के प्रति कहे तो बारह पण से दण्डित हो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य स्पर सजातीयों

में कटु वचन कहें तो बारह पण और न कहने योग्य वचन कहें तो दससे दुगुना दण्ड दें। शूद्र यदि द्विजाति को पापी आदि को उत्पन्न होती है। शूद्र यदि द्रोहवश द्विजाति वालों के नाम और जाति लेकर गाली दे तो उसके मुख में दस अंगुल की धधकती हुई लौहशलाका डलवा दे। यदि शूद्र अहंकार वश ब्राह्मणों को धर्मोंपदेश करे तो राजा उसके मुख और कान में तप्त तैल डलवा दे ।२६ -२७२।।

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शरीरमेव च ।
वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद्द्विशतं दमम् ।।२७३
काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम् ।
तथ्येनापिब्रूवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ।।२७४
मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ।
आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद्गुरोः ।।२७५
ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता ।
ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेत मध्यमः ।।२७६
विट्शूद्रयोरेवेमव स्वजातिं प्रति तत्वतः ।
छेदवर्जं प्रणयन दण्डस्येति विनिश्चय ।।२७७
एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्वतः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ।।२७८

जो अहंकारवश किसी की विद्या देश, जाति और कार्य को कहे तो उसे दो सौ पण से दण्डित करे। काने, लंगड़े अथवा किसी अन्य अंग-भंग वाले को काना आदि कहकर चिढ़ाने वाले पर एक कार्षापण दण्ड करे। माता, पिता भार्या, पुत्र और गुरु

को पापी आदि कह कर गाली दे अथवा गुरु को आते हुए देख कर माग न दे तो उसे सौ पण से तथा ब्राह्मण-क्षत्रिय परस्पर में गाली गलौज करें तो ब्राह्मण को प्रथम साहस से और क्षत्रिय को मध्यम साहस से दण्डित करे। यदि वैश्य और शूद्र भी ऐसे ही परस्पर कुवचन कहें तो क्रमशः यही दण्ड होगा, इसमें शूद्र की जीभ न काटे। यह कठोर वचन की दण्ड विधि कही गई अब ताड़नादि दण्डपारुष्य का निर्णय करेंगे ॥२७३-२७८॥

येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ॥२७९

पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति।
पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति ॥२८०

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः।
कट्यांकृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्तयेत् ॥२८१

अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः।
अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ॥२८२

केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन्।
पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥२८३

त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः।
मांसभेत्ता तु षण्णिष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः॥२८४

मनु के अनुसार अन्त्यज अपने जिस अङ्ग से द्विज पर प्रहार करे, उसके सभी अङ्ग काट डाले। यदि हाथ उठाया हो तो हाथ और लात मारी हो तो पांव काट दे। निम्न वर्ण का जो व्यक्ति उच्च वर्ण वाले के साथ एक आसन पर बैठे तो राजा उसके नितम्ब का माँस कटवा कर और कमर को दगवा कर

देश से निर्वासित कर दे। ब्राह्मण पर अहंकारवश थूक देने वाले शूद्र के दोनों ओष्ठ मूत्र करने वाले का उपस्थ और अधोवायु करने वाले की गुदा कटवा दे। अथवा अहंकार वश जो शूद्र ब्राह्मण के केश पांव, दाढ़ी, कंठ या अण्डकोश आदि पकड़े उसके दोनों हाथ कटवा दिये जाँय। जो द्विजाति वाला अपने सजातीय का चर्म छील कर रक्त, निकाल दे, उसे सौ पर्ण, माँस काटे उसे छः निष्क और अस्थि तोड़े उसे निर्वासन का दंड दे।२७६-२८४।

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा ।
तथातथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ॥२८५

मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति ।
यथायथा महद्दुःखं कुर्यात्तथातथा ॥२८६

अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ।
समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा ॥२८७

द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्यज्ञानतोऽज्ञानतोऽपिवा ।
स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञे दद्याच्च तत्समम् ॥२८८

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्ठमयेषु च ।
मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥२८९

यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च ।
दशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥२९०

वृक्षों के फल-पुष्प, पुत्र आदि नष्ट करने पर उसके उपभोग मूल्य के अनुसार ही दण्ड देना चाहिए। मनुष्य और पशु पर प्रहार कर पीड़ित करने पर जैसी पीड़ा हो, वैसा ही दण्ड दे। अङ्गों में चोट लगने और खून वहने पर राजा प्रहारकर्त्ता से चिकित्सा व्यय भी दिलवाये, यदि वह न दे तों उसे सर्व दण्ड दे।

जाने अनजाने में जिसकी जो वस्तु नष्ट करदे, उसे वैसी वस्तु देकर सन्तुष्ट करे और उस वस्तु के मूल्य के बराबर दण्ड राजा को भी दे। चर्म, चर्मपात्र, काष्ठ और मृतिकामय पात्र, पुष्प मूल और फल नष्ट करने पर राजा को उनके पंचगुने मूल्य का दण्ड दे। रथ, सारथी, और रथ स्वामी के दस अपराधों के अतिरिक्त अन्य अपराधों में दण्ड-विधान हुआ है ॥२८५-२९०॥

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ।
अक्षभङ्गे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च ॥२९१

छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च ।
आक्रन्दे चाप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ॥२९२

यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ।
तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम् ॥२९३

प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ।
युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याःशतंशतम् ॥२९४

स चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ।
प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः ॥२९५

मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषं भवेत् ।
प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥२९६

नाथ कटने, जुआ टूटने, गाड़ी के मार्ग से हटने, धुरी या चक्र टूटने, चर्म-बन्धन, कण्ठ की रस्सी या रास टूटने पर सारथी द्वारा हटो हटो चिल्लाने पर भी कुछ अनिष्ट हो जाय तो सारथी को दण्ड नहीं दिया जाय। किन्तु सारथी के दोष से गाड़ी के मार्ग से हट जाने पर कुछ अनिष्ट हो जाय तो उसके स्वामी पर दो सौ पण दण्ड करे। यदि गाड़ीवान चतुर हो तो वही दो सौ पण का

दण्ड भोगे, किन्तु गाड़ीवान की अकुशलता के कारण घटना हो जाय तो गाड़ी की सब सवारियाँ सौ-सौ पण का दण्ड भुगतेंगी। यदि गाड़ीवान गवादि पशुओं से या किसी अन्य प्रकार अवरुद्ध हुए मार्ग पर अपनी गाड़ी को न रोके जिससे किसी की हिंसा हो जाय तो उसे बिना बिचारे ही दंड दिया जाना चाहिए। गाड़ीवान की उपेक्षा से यदि कोई व्यक्ति गाड़ी के नीचे दब कर मर जाय तो वह चोर के समान दण्ड का भागी होता है। गौ, गज, ऊँठ, अश्व आदि बड़े जीवों के मरने पर आधा दण्ड होगा ॥२९१-२९६॥

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः ।
पंञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ॥२९७

गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पञ्चमाषिकः ।
माषिकस्तु भवेद्दन्डः श्वसूकरनिपातने ॥२९८

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेश्यो भ्राता च सोदरः ।
प्राप्तापराध स्तडयाःस्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥२९९

पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमांगे कथंचन ।
अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥३००

एषोऽखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः ।
स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥३०१

परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः ।
स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वधते ॥३०२

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ।
सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयद क्षणम् ॥३०३

सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः ।
अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥३०४

लघु जीवों की हिंसा पर गाड़ीवान को दो सौ पण और मृग तोता मैंना आदि पक्षियों की हिंसा पर पचास पण दण्ड दे । गर्दभ, बकरा, भेड़ आदि के मरने पर गाड़ीवान पाँच माशे चाँदी तथा श्वास-शूकर की हिंसा पर एक माशा चाँदी का दण्ड दे । भार्या, पुत्र, दास, दूत और सहोदर भाई अपराध करे तो वे रस्सी अथवा बाँस की छड़ी से ताड़न के योग्य होते हैं । ताड़न पीठ पर करे, सिर पर नहीं, जो नियम विरुद्ध प्रहार करे वह चोर के समान अपराधी हैं । यह दण्डपारुष्य के विषय में कहा गया, अब चोर का दण्ड-विधान कहेंगे । राजा चोरों को वन्धन में डालने में अत्यन्त प्रयत्नशील रहे, क्योंकि चोरों के निग्रह से राज्य और यश की वृद्धि होती है । प्रजा को अभय देने वाला राजा सदा पूजा जाता है, क्योंकि यह प्रज पालन रूपी यज्ञ अभय रूपी दक्षिणा से सदैव बढ़ता है । प्रजा के प्राण, धन और धर्म का रक्षक राजा को नर्क धर्म का छठा अंश मिलता है, किन्तु रक्षा न करने वाला राजा अधर्म का षष्ठांश पाता है।२९८-३०४।

यदधीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति ।
तस्य षड्भागभाग्राजा सम्यग्भवति रक्षणात् ॥३०५

रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् ।
यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥३०६

योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ।
प्रतिभागं च दण्डे च स सद्यो नरकं व्रजेत ॥३०७

अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम् ।
तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥३०८

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम् ।
अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम् ॥३०९

अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः ।
निरोधनेन बन्धेन विविधेन वधेन च ॥३१०

भले प्रकार प्रजाओं की रक्षा करने वाला राजा उनके पढ़ने यज्ञ करने, दान देने और देवपूजन करने के धर्म का षष्ठांश प्राप्त करता है। धर्मपूर्वक प्राणियों की रक्षा और मारने योग्य दुष्टों को मारकर राजा मानो नित्य प्रति एक लाख दक्षिणा वाले यज्ञो को ही करता है। प्रजाओं की रक्षा न करने वाला जो राजा उनसे अनाज का षष्ठांश, शुल्क कर आदि लेता है वह शीघ्र नरक को जाता है। प्रजा की रक्षा न करता हुआ उनसे निरन्तर कर ले, उस राजा को सबसे सम्पूर्ण पापों का भोगने वाला कहते हैं। शास्त्र मर्यादा के विपरीत चलने वाला नास्तिक वृथा दण्डादि देकर धन प्राप्त करने वाला, रक्षा न करके प्रजा जनों का अंश लेने वाला राजा अधोगति में गिरता है। तीन उपायों से अधार्मिकों का निग्रह करना चाहिए कारावास में डाल कर, हथकड़ी-बेड़ी डालकर और विविध भाँति के शारीरिक दण्ड देकर॥३०५-३१०॥

निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च ।
द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः ॥३११

क्षन्तव्यंप्रभुणा नित्यंक्षि पतांकार्यिणां नृणाम् ।
बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥३१२

यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ।
यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छतिः ॥३१३

राजास्तेयेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता ।
आचक्षाणेन तत्स्तेयमेवंकर्मास्मि शाधि माम् ॥३१४

स्कन्धेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम् ।
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा ॥३१५

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ।
अशासित्वातुतंराजास्तेनस्याप्नोतिकिल्बिषम् ॥३१६

जैसे द्विज यज्ञों से पवित्र होते हैं, वैसे ही राजा पापियों को दण्ड देने और सज्जनों की रक्षा करने से पवित्र होता है। अपना शुभ चाहने वाला राजा, कार्यार्थी, बाल वृद्ध और रोगी के द्वारा होने वाली निन्दा को सदैव क्षमा करे। क्योंकि आर्तजनों के आक्षेपों को सहन करने वाला राजा स्वर्ग में पूजित होता है, किन्तु जो अहंकारमद में सहन नहीं करता वह नरकगामी होता है। चोर को उचित है कि वह केश खोलकर कन्धे पर मूसल या खैर की लकड़ी अथवा दोनों ओर पैनी नोंक वाली बरछी या लौह-दण्ड रखकर भागता हुआ राजा के पास जाकर निवेदन करे कि मैंने चोरी की है, मुझे दण्ड दीजिए तब वह राजा द्वारा दण्डित होने या छोड़े जाने पर चोरी के पाप से छूट जाता है, यदि राजा चोर पर शासन न करे तो उसका पाप स्वयं अपने सिरपर लेता है ॥३११-३१६॥

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी ।
गुरौशिष्यश्चयाज्यश्चस्तेनोराजनिकिल्बिषम् ॥३१७

राजभिः कृतदंडास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥३१८

यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिद्याच्च यः प्रपाम् ।
स दंडं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत् ॥३१९

धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः ।
शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥३२०

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ।
सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् ॥३२१

पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते ।
शेषे त्वेकादशगुणं मूल्याद्दंडं प्रकल्पयेत् ॥३२२

भ्रूणहत्यारे का पाप उसके अन्न खाने वाले को, व्यभिचारिणी पत्नी का पाप पति को, शिष्य का पाप गुरु को, यजमान का पाप पुरोहित को और चोर का पाप राजा को लगता है। अपराधी व्यक्ति भी राजा से दण्डित होने परासाधु सन्तों के समान पवित्र होकर स्वर्ग-गमन करते हैं। कुए की रस्सी या जल पीने का पात्र चुराने वाले या प्याऊ को नष्ट करने वाले को राजा एक मासा स्वण का दण्ड दे तथा चुराई हुई वस्तु या वैसी अन्य वस्तु भी वहाँ रखावे। दस कुम्भ धान से अधिक चुराने वाले को शारीरिक दण्ड दे और उससे कम चुरावे तो जितना चुरावे उसका ग्यारह गुना दण्ड देता हुआ धान के स्वामी को धान-दिलवावे। स्वर्ण-रजत आदि श्रेष्ठ वस्त्र को पूर्ण संख्या ज्ञात न हो तो भी सो से अधिक चुराने वाले को प्राण दण्ड दे। गणना में एक से पचास तक चुरावे तो ग्यारह गुना और सौ तक चुराने पर हाथ काटने का दण्ड दे ॥३१७-३२२॥

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥३२३

महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ।
कालमासाद्य कार्यं च दंडं राजा प्रकल्पयेत् ॥३२४

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छविकायाश्च भेदने ।
पशुनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥३२५

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ।
दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च ॥३२६

वेणुवदलंभाण्डानां लवणानां तथैव च ।
मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ॥३२७

मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च ।
मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥३२८

अन्येषां चैवमादीनां मद्यानामोदनस्य च ।
पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः ॥३२९

कुलीन पुरुषों, विशेषकर स्त्रियों को तथा बहुमूल्य रत्नों के चुराने वालों को राजा प्राणदण्ड दे। श्रेष्ठ पशु, शस्त्र एवं औषधि चुराने वाले को कार्य और काल देख कर दण्ड दिया जाय। ब्राह्मण की गाय चुराने, बन्ध्या गाय के नाथने तथा पशुओं को गुड़, दही, दूध, मठा, जल, तृण, टोकरी, नमक, मत्तिका पात्र, मिट्टी, राख, मछली, चिड़िया, तेल, घृत, मांस, मधु पशुचर्म, सींग, मद्य, भात, पका अन्न और इसी प्रकार की अन्य सामान्य वस्तुएँ चुराने पर उनके मूल्य का दुगुना वसूल करे ॥३२६-३२६॥

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ।
अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ॥३३०

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ।
निरन्वये शतं दण्डः सान्वयेऽर्धशतं दमः ॥३३१

स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् ।
निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वापव्ययते च यत् ॥३३२

यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ।
तमाद्यं दण्डयेद्राजा यश्चाग्निं चोरयेद्गृहात् ॥३३३

येन येन यथांगेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ।
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥३३४

पुष्प, हरे धान्य, गुल्म, लता, वृक्ष तथा पुरुष द्वारा ढोयी जा सके ऐसी अन्य वस्तु चुराने वाले पर पाँच कृष्णल दण्ड करे। परिपूत धान्य, शाक, मूल एवं फल चुराने वाला यदि सम्बन्धी नहीं है तो सौ पण और सम्बन्धी हो तो पचास पण दण्ड का भागी होता है। स्वामी के सामने बलपूर्वक किसी वस्तु को ले लेना साहस और परोक्ष में कोई वस्तु लेना चोरी कहा जाता है। जो किसी के व्यवहार योग्य सूत्रादि की चोरी करे या घर से हवनाग्नि चुरा ले, उसे प्रथम साहस और जिस अंग द्वारा चोरी की जाय उस अंग को काटने का दण्ड दे ॥३३०-३३४॥

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ।
नादण्ड्योनामराज्ञोऽस्ति यःस्वधर्मे न तिष्ठति ॥३३५

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ॥३३६

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेते भवति किल्विषम् ।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च ॥३३७

ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत् ।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः ॥३३८

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च ।
तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ॥३३९
योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम् ।
याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः ॥३४०

माता, पिता, आचार्य, मित्र, भार्या, पुत्र और पुरोहित यदि अपने-अपने धर्म के विपरीत, आचरण करें तो राजा उन्हें भी अवश्य दण्ड दे। सामान्य मनुष्य को जिस अपराध में एक कार्यापण दण्ड होता है, उसी अपराध को राजा करे तो वह एक हजार पण दण्ड का भागी होना चाहिए। चोरी के गुण दोष का ज्ञाता शूद्र चोरी करे तो मूल्य का आठ गुना, वैश्य करे तो सोलह गुना क्षत्रिय करे तो बत्तीस गुना और ब्राह्मण करे तो चोंसठ, सौ अथवा एक सौ अट्ठाईस गुना दण्ड भोगे। वनस्पति, मूल, फल होम के लिए शुष्क काष्ठ और गौओं के लिए तृण लेने का मनुचोरी नहीं मानते। यज्ञ कराकर या पढ़ा कर जो ब्राह्मण चोर के हाथ से धन लेना चाहे, वह ब्राह्मण भी चोर के ही समान है ॥३२५-३४०॥

द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके ।
आददानः परक्षेत्रान्न दंडं दातुमर्हति ॥३४१
असंदितानां संदाता संदितानां च मोक्षकः ।
दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तः स्याच्चोरकिल्बिषम् ॥३४२
अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् ।
यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्यचानुत्तम सुखम् ॥३४३
ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् ।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥३४४

वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दंडेनैव च हिंसतः ।
साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥३४५

साहसे वर्तमाने तु यो मर्षयति पार्थिवः ।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥३४६

मार्ग चलते ब्राह्मण के पास खाने को कुछ न हो और वह किसी के खेत से दो ईख या मूली-ग्रहण कर ले तो वह अपराधी नहीं है। जो किसी के अस्वादि पशु को बाँध रखे या बँधे पशु को खोल दे अथवा दूसरे के भृत्य, अश्व या रथ को चुरा ले तो वह चोर के समान अपराधी है। इस प्रकार चोरों को दण्ड देने वाला राजा इस लोक में यश और परलोक में सुख प्राप्त करता है। इन्द्रपद और विमल कीर्ति को चाहने वाला राजा साहसी मनुष्य को दण्ड देने में क्षणभर भी उपेक्षा न करे। दुष्ट वाणी वाले चोर और लाठी प्रहार करने वाले पुरुष सेभी अधिक अपराधी साहस कर्मवाला मनुष्य होता है। जो राजा साहसी को क्षमा करे, वह शीघ्र नष्ट होता है और सभी उससे वैर करते हैं ॥३४१-३४६॥

न मित्रधारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ।
समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वं भूतभयाहान् ॥३४७

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते ।
द्विजातीनां च वर्णानां विप्लये कालकारिते ॥३४८

आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे ।
स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति ॥३४९

गुरुं वा बलवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥३५०

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वा प्रकाशं व मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥३५१

परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपतिः ।
उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥३५२

राजा मित्र समझ कर या धन के लोभ में सब को डराने वाले साहसी को कभी न छोड़े । जब साहसी पुरुष द्विजाति की वर्णाश्रम धर्म न चलने दें तथा विपरीत काल के कारण देश में अराजकता फैल जाय, स्वरक्षा या गवादि की रक्षा के लिए युद्ध उपस्थित हो जाय या स्त्रियों और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए आवश्यक हो तब द्विजाति शस्त्र ग्रहण कर सकते हैं, ऐसी स्थिति में धर्मपूर्वक हिंसा करना अपराध नहीं है । गुरु, बालक, वृद्ध या बहुश्रुत ब्राह्मण भी आततायी होकर आवे तो उसे निःशंक होकर मार दे । सब के समक्ष या एकान्त में आततायी की हिंसा का दोष नहीं है, क्योंकि आततायी जिसकी हिंसा करना चाहता है, उसके क्रोध को वह स्वयं ही बढ़ाता है । परनारी-समागम में प्रवृत्त पुरुषों को राजा नाक-कान काटने आदि का भयानक दंड देकर निर्वासित कर दे ॥३४०-३५२॥

तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ।
येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥३५३

परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन्रहः ।
पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥३५४

यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ।
न दोषं प्राप्नुयात्किंचिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः ॥३५५

परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा ।
नदीनां वापि संभेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ॥३५६

उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ।
सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥३५७

स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया ।
परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥३५८

क्योंकि परनारी-गमन से वर्णसंकर की उत्पत्ति होने के कारण मूल हरणकर्त्ता होने से अधर्म सर्वनाश का कारण हो जाता है। परनारीगमन का अपवाद लगा हुआ जो पुरुष किसी परनारी से एकान्त में वार्तालाप करता पाया जाय, उसे राजा प्रथम साहस दण्ड दे। परनारी गमन के अपवाद से रहित जो पुरुष किसी कारण वश एकान्त में परस्त्री से वार्तालाप करे तो वह अपराधी न होने के कारण दण्डनीय नहीं माना जाता जो पुरुष परनारी से तीर्थ नदीतट के बन या ग्राम के बाहरी निर्जन उपवन में या नादियों के संगम स्थान में रहस्य की बात करे उस पर राजा संग्रहण का दण्ड करे। परनारी के निकट माला, पुष्प इत्र आदि का प्रषण, हास्य आलिंगन, वस्त्राभूषण का स्पर्श शय्या पर साथ बैठना यह सब सग्रहण कहे हैं। परनारी स्पर्श न करने योग्य अग को स्पर्श करे या उसके द्वारा अपना अंग स्पर्श न होने पर कुछ न कहे तो यह सब परस्पर के क्षनुमोदन से युक्त सग्रहण हीं कहा जाता है ॥३५३-३५८॥

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्त दण्डमर्हति ।
चतुर्णामपि वर्णांना दारारक्ष्यतमाः सदा ॥३५९
भिक्षुका बन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा ।
सभाषणं सहः स्त्रीभिः कुर्यु रप्रतिबारिताः ॥३६०
न सभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ।
निषिद्धो भाषमाणस्तु स्वर्णं दण्डमर्हति ॥३६१
नेषा चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु ।
सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च ॥३६२

किञ्चदेव तु दाप्यःस्यात्संभाषां ताभिराचरन् ।
प्रैष्यासु चैकभक्तासु रह प्रव्रजितासु च ॥३६३
योऽकामांदूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति ।
सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नर ॥३६४

यदि कोई शूद्र द्विजाति की स्त्री से संग्रहण करे तो प्राणदण्ड के योग्य है, चारों वर्ण के लोगों को अपनी स्त्रियो की रक्षा सदैव करनी चाहिए। भिक्षुक, भाट, दीक्षित और सूपकार यह गृहस्थ स्त्रियों से बिना बाधा के संभाषण कर सकते हैं। गृहस्थ जिसे अपनी स्त्री से बात करने से रोके तो उसको स्त्री से बात न करे यदि करे तो सोलह मासे स्वर्ण का दण्ड पावे। नट और अपनी पत्नी से जीविका चलाने वालों के लिये यह विधान नहीं है, क्योंकि वे तो स्वयं ही अपनी स्त्री को पर पुरुष से मिलाते और स्वयं औट में हो जाते है। फिर भी ऐसी स्त्रियों से तथा दासियों वैरागिनों ब्रह्मचारिणों से भी एकान्त वार्ता करने वाले पुरुष को कुछ न कुछ दण्ड अवश्य दे। किसी कन्या को बलात्कार पूर्वक दूषित करने वाला वध के योग्य है किन्तु कन्या की इच्छा से दूषित करे और संजातीय भी हो तो अवध्य है ॥३५९-३६४॥

कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत् ।
जघन्यं सेवमानाँ तु संयतां वासयेद्गृहे ॥३६५
उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति ।
शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि ॥३६६
अभिषह्य तु यः कन्या कुर्याद्दर्पेण मानवः ।
तस्याशु कर्त्ये अगुल्यौ दण्ड चार्हति षट् शतम ॥३६७
सकामां दूषयंस्तुल्यो नांगुलिच्छेदमाप्नुयात् ।
द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसङ्गविनिवृत्तये ॥३६८

कन्यांयवकन्यां याकुर्यात्तस्याःस्याद्द्विशयौ दमः।
शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश ॥३६९
यातुकन्यां प्रकुर्यात्स्त्रीसासद्यो मौण्डयमर्हति।
अंगुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्वहनं तथा ॥३७०

उच्च जाति के पुरुष की सकाम सेवा करने वाली कन्या दण्डनीय नहीं हैं किन्तु हीन जाति के पास जाने वाली को प्रयत्न पूर्वक रोको। श्रेष्ठ वर्ग की कन्या को दूषित करने वाला निम्न वर्ण का पुरुष वध्य है समान वर्ण का पुरुष कन्या के पिता की सहमति से शुल्क देकर छूट सकता हैं। जो पुरुष अहंकारवश समान जाति की कन्या को बलपूर्वक अँगुली डालकर भ्रष्ट करे उसकी दो अँगुली कटवा कर छः पण का दण्ड दे। कन्या की इच्छा से वैसा करने पर अँगुली तो न कटवाये किन्तु दो सौ पण पण्ड करे, जिससे कि वह भविष्य में वैसा न कर: यदि कोई कन्या किसी कन्या से वैसा आचरण करे तो वह राजा को दो सौ पण और कन्या के पिता को उससे दुगुना दे तथा उस लड़की को दस कोड़े भी लगाये जाँय। यदि कोई स्त्री किसी कन्या के साथ वैसा करे तो राजा उसके केश मूँड़वा दे या दो अँगुली कटवा दे अथवा गधे पर चढ़ाकर नगर में घुमवाये ॥३६९।३७०॥

भर्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥३७१
पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥३७२
संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः।
व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव ॥३७३

शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन् ।
अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥३७४
वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः ।
सहस्रं क्षत्रियोदण्ड्यो मौण्ड्यं मूत्रेणचार्हति ॥३७५
ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ ।
वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ॥३७६

जो स्त्री अमने पैतृक धन और रूप के अहंकार से पर पुरुष सेवन और अपने पति का तिरस्कार करे उसे राजा कुत्तों से नुचवा दे। उस पापी जार पुरुष को भी तप्त लौह की शय्या पर लिटा कर ऊपर से लकड़ी रख कर भस्म करादे। परनारी गमन में दिण्डत पुरुष एक वर्ष में यदि पुनः वैसा अपराध कर बैठे तो दूगना दण्ड दे तथा व्रात्य की पत्नी और चाण्डालिनी से गमन करने वाले से भी ऐसा ही व्यवहार करे। अरक्षिता द्विजाति स्त्री से यदि शूद्र व्यभिचार करे तो राजा उसे उपस्थ छेदन और सर्वस्य हरण का दण्ड दे और यदि रक्षिता स्त्री से ऐसा करे तो सर्व-स्व हरण के साथ वध करा दे। रक्षित ब्राह्मणी से अनाचार करने वाले वैश्य को सर्वस्वहरण और एक वर्ष का कारावास तथा क्षत्रिय को एक सहस्र पण और गधे के मूत्र में सिर के मुण्डन का दण्ड दे। अरक्षित ब्राह्मणी से व्यभिचार करने वाले वैश्य को पांच सौ पण और क्षत्रिय को एक हजार पण का दण्ड दे ॥३७१-३७६॥

उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह ।
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौदग्धव्यौ वा कटाग्निना ॥३७७
सहस्रं ब्राह्मणोदण्डयोगुप्तांविप्रां बलादव्रजन् ।
शतानिपञ्च दण्ड्यःस्यादिच्छन्त्या सह संगतः ॥३७८

मौण्ड्यांप्रणान्तिको दंडोब्राह्मणस्य विधीयते ।
इतरेषां तु वर्णानां दंढः प्राणान्तिको भवेत् ।।३७९
न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ।।३८०
न ब्रह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि ।
तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत् ।।३८१
वैश्यश्चेत्क्षत्रियांगुप्तां वश्यांवाक्षत्रियो व्रजेत् ।
यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दंशमर्हतः ।।३८२

यदि वैश्य या क्षत्रिय किसी रक्षिता ब्राह्मणी से व्यभिचार करें तो शूद्र के लिए कहा हुआ दण्ड दे या तृण की धधकती अग्नि में भस्म कर दें । रक्षिता ब्राह्मणीं से यदि कोई ब्राह्मण ही बलात्कार करे तो वह एक हजार पण से और सहमति से हो तो पाँच सौ पण के दण्ड से दण्डित किया जाय । ब्राह्मण अवध्य है इसलिए उसके केश मुडा दें और अन्य वर्ण वाले को प्राण-हरण का दण्ड दें । किसी प्रकार का भी पाप करने पर प्राह्मण को भी न मारे और सम्पूर्ण धन तथा अभग्न शरीर के सहित देश से निकाल दे । ब्राह्मण के वध से अधिक अन्य कोई पाप संसार में नहीं है इसलिए राजा उसे मारने का विचार न करे। यदि वैश्य रक्षिता क्षत्राणी से या क्षत्रिय रक्षिता वैश्या से व्यामिचार करे तो अरक्षिता ब्राह्मणी से अनाचार का जो दण्ड कहा हैं, वहीं इन्हें दे ।।३७७-३८२।।

सहस्रं ब्राह्मणो दंड दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन् ।
शूद्रायां क्षत्रियविशोः सहस्रो व भवेद्दमः ।।३८३
क्षत्रियायामगुप्तायां वेश्ये पञ्चशतं दमः ।
मूत्रेण मौड्यमिच्छेतु क्षत्रियो दंडमेव वा ।।३८४

अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् ।
शतानिपञ्चदंडयःस्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ॥३८५

यस्य स्तेनःपुरे नास्तिनान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् ॥३८६

एतेषां निग्रहो राज्ञःपञ्चानां विषये स्वके ।
साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः ॥३८७

ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्योयाज्यं चर्त्विक्त्यजेद्यदि ।
शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दंडः शतं शतम् ॥३८८

यदि ब्राह्मण रक्षिता क्षत्राणी या वैश्या से अथवा क्षत्रिय या वैश्य रक्षिता शूद्र से व्यभिचार करे तो एक हजार पण से दण्डित हो। अरक्षिता क्षत्रिया से अनाचार करने पर वैश्य को पांच सौ पण का और क्षत्रिय को गधे के मूत्र से उसका सिर मुँड़ाने या पांच सौ पण का ही दण्ड दे। यदि ब्राह्मण अरक्षिता क्षत्राणी, वैश्या या शूद्र से गमन करे तो पांच सौ पण और चाण्डाली से करे तो सहस्र पण से दण्डित हो। जिसके राज्य में चोर, लम्पट झूँठ बोलने वाले, साहसिक आदि नही हैं वह राजा इन्द्रलोक जैसा सुख पाता है। जो राजा पूर्वोक्त पांचों प्रकार के अपराधियों को दण्ड देता है, वह सजातीय राजाओं के मध्य सम्राट् और यशस्वी होता है। यदि यजमान योग्य ऋत्विज को या ऋत्विज् दोषरहित यजमान को छोड़े तो राजा उस पर सौ पण दण्ड करे ॥३८३-३८८॥

न माता न पिता न स्त्री नपुत्रस्त्यागमर्हति ।
त्यजन्नपतितानेतान्राज्ञा दंडयः शतानि षट् ॥३८९

आश्रमेषुः द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः ।
न विब्रूयान्नृपो धर्मं चिकीर्षन्हितमात्मनः ॥३९०

तथाहंमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
सांत्वेन प्रथमध्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ।।३९१
प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विंशतिद्विजे ।
अर्हावि भोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् ।।३९२
श्रोत्रियः श्रोतियं साधुं भूतिकृत्योष्वभोजयन् ।
तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हिरण्ये चैव माषकम् ।।३९३
अन्धो जड़ः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः ।
श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्याः केनचित्करम् ।।३९४

माता, पिता, स्त्री और पुत्र त्यागने योग्य नहीं होते, इन्हें त्यागने वाले पर छः सौ पण दण्ड किया जाय। आश्रमोचित कार्य में परस्पर झगड़ा करते हुए द्विजाति वालों में अपना शुभ चाहने वाला राजा किसी सिद्धान्त की बात को न कहे। उन सब का उचित सम्मान करने के पश्चात् राजा ब्राह्मणों के सहित उन्हें शान्त करे, तत्पश्चात् स्वधर्म का प्रतिपादन करे। जिस किसी शुभ कार्य में बीस ब्राह्मणों को भोजन कराना हो उसमें पड़ौसी तथा पड़ौसी के पड़ौसी का न खिलावे तो वह ब्राह्मण एक मासा चाँदी से दण्डित हो। जो श्रोत्रिय ब्राह्मण पड़ोसी और उनके पड़ौसी श्रौत्रियों को भोजन न करावे तो राजा उस भोज्यान्न से दुगुना अन्न और एक मासा स्वर्ण वसूल करे। अन्धों बधिरों, पशुओं, सत्तर वर्षीय वृद्धों एवं श्रोत्रियों के उपकार करने वाले से राजा न ले ।३८९।३९४।।

श्रोत्रियं व्याधितार्तौ च बालवृद्धावकिञ्चनम् ।
महाकुलीनमार्यं च राजा संपूजयेत्सदा ।।३९५
शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्नेजकः शनैः ।
न च वासांसि वासोभिर्निहरेन्न च वासयेत् ।।३९६

तन्तुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम् ।
अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम् ।।३९७
शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः
कुर्युरर्घं यथापण्यं ततो विंश नृपो हरेत् ।।३९८
राज्ञःप्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च ।
तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः ।।३९९
शुल्कस्थाने परिहरन्नकाले क्रयविक्रयी ।
मिथ्यावादी चसंख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम् ।।४००

श्रोत्रिय, रोगी, बालक, वृद्ध, दरिद्र श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न और उत्तम आचार वाले व्यक्तियों का राजा सदैव आदर करे। धोबी सेमर के काष्ठ पर धीरे-धीरे वस्त्रों को धुलाई करे,वस्त्रों में हेर फेर या किसी का वस्त्र किसी को न दे। तन्तुवाय दस पल सूत लेकर उससे एक पल अधिक वस्त्र सूत वाले को लौटावे, यदि भार में कम दे तो राजा उसे बारह पण से दण्डित करे। शुल्क विषय में दक्ष एवं विक्रय योग्य वस्तुओं का मूल्य जानने वाले पुरुष जिस वस्तु का जो मूल्य निश्चित् करें,उसके लाभ को बीसवाँ भाग राजा मिले। राजा के क्रय योग्य विशेष पात्र, वस्त्र,वाहनादि तथा जिन वस्तुओं का नियति राजा ने रोक दिया हो उन वस्तुओं को जो लोभवश देशान्तर में ले जाय उसका राजा सर्वस्य हरण करले। जो व्यापारी शुल्क से बचने के लिए चुंगी के स्थान से हटाकर निकले, असमय में क्रय विक्रय करे, कर बचाने के उद्देश्य से वस्तु का परिमाण कम बतावे तो उसने जितना कर बचाया हो, राजा उसका आठगुना दण्ड दे ।।३९५-४००।।

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ ।
विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ ।।४०१

पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते ।
कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः ॥४०२
तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥४०३
पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं तरे ।
पादं पशुश्च योषिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् ॥४०४
भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः ।
रिक्त भाण्डानियत्किंचित्पुमाँसश्चापरिच्छदाः ॥४०५
दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत् ।
नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥४०६

किन वस्तुओं का आयात हुआ, किनका निर्यात हुआ रखने से लाभः बेचने से वृद्धि रख रखाव पर व्यय आदि पर ठीक प्रकार विचार करके सब की विक्रय दर निश्चय कर दे। पांच-पाच रात्रि या पखवारे पखवारे व्यापारिक वस्तुओं को दर व्यापार कुशल व्यक्तियों के द्वारा निश्चित करावे। वस्तु तोलने के काँटे-बांट की परीक्षा भी राजा हर छठे मास कराये। खाली यान पर उतराई का एक पण, बोझा उत्तराई का आधा पण पशु और स्त्री की उतराई चौथाई पण एवं बोझ रहित पुरुष की उतराई अष्टमांश दे । भरी हुई गाड़ी की उतराई सार-असार वस्तु के अनुसार दे, और खाली गाड़ी की और दरिद्र मनुष्य की उतराई बहुत स्वल्प होनी चाहिए। जल मार्ग से दूर तक जाने में नदी का वेग स्थिरता प्रवाह की अनुकूल-प्रतिकूलता और काल आदि का विवेचन करके नौका का भाड़ा निश्चित किया जाय यह नियम नदी मार्ग का हैं, समुद्र मार्ग का नहीं ॥४०२-४०६॥

गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजियो मुनिः ।
ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यस्तरिकं तरे ॥४०७
यन्नावि किञ्चिद्दाशानां विशीर्येतापराधतः ।
तद्दाशैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोऽशतः ॥४०८
एष नौयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ।
दाशापराधतस्तोये दैविके नास्ति निग्रहः ॥४०९
वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च ।
पशूनां रक्षणं चैव दास्य शूद्र द्विजन्मनाम् ॥४१०
क्षत्रियं चैव वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्शितौ ।
विभृयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयन् ॥४११

दो मास से अधिक की गर्भवती, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी और ब्राह्मण से पार उतराई न ली जाय । नाव खेने वालों की भूल से यात्रियों की कोई वस्तु नष्ट हो जाय तो नाविक गण अपने पास से थोड़ा-थोड़ा देकर क्षतिपूर्ति करें । यह नाव से यात्रा करने का व्यवहार कहा गया हैं नाविकों के दोष से जल में गिर कर जो वस्तु नष्ट होगी उसकी क्षति पूर्ति नाविक करें, किन्तु देवी दुर्घटना से नष्ट हुए माल कीं क्षतिपूर्ति नाविक नहीं करें । राजा वैश्य से कृषि-वाणिज्य, पशु-पालन और शूद्रों से द्विजाति की सेवा करावे । अपनी वृत्ति से निर्वाह न करने के कारण यदि क्षत्रिय और वैश्य पीड़ित हों तो ब्राह्मण दया करके उनसे उनकी वृत्ति करा कर भरण-पोषण करे ॥४०७-४११॥

दास्यतुकारयेल्लोभाद्ब्राह्मणःसंस्कृतान्द्विजान् ।
अनिच्छतःप्राभवत्याप्राज्ञा दंडयःशतानि षट् ॥४१२
शद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ।
दास्यायै हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ॥४१३

न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते ।
निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ।।४१४

ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्त्रिमौ ।
पैत्रिको दण्डदासस्च सप्तैते दासयोनयः ।।४१५

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः ।
यद्यै समधिगच्छन्ति यस्य ते यस्य तद्धनम् ।।४१६

जो ब्राह्मण लोभ या प्रभत्य में उपनीय द्विजातियों से उनकी इच्छा न होने पर भी सेवा कार्य ले तो राजा उस पर छः सौ पण का दण्ड करे । शूद्र क्रीत(खरीदा हुआ) हो या अक्रीत उससे सेवक का कार्य ले क्योंकि ब्रह्माजी ने उसकी रचना ब्राह्मण की सवा के लिये ही की है । स्वामी द्वारा छोड़ दिये जाने पर शूद्र सेवा कार्य से मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि वह उनका स्वभाव ही है । युद्ध में जीतने पर लाया हुआ भोजन के लोभ से स्वयं ठहरा हुआ दासी के गर्भ से जन्मा हुआ किसी के द्वारा प्रदत्त, पिता पितामह के समय से सेवावृत्ति करता हुआ और डण्ड ऋण आदि चुकाने के लिए दास बना हो यह सात दासयोनि माने गए है, भार्या पुत्र और भृत्य, यह तीनों निर्धन कहे जाते हैं, क्योंकि इनके द्वारा प्राप्त हुआ धन उसी का होता हैं, जिसके वे पत्नी, पुत्र या सेवक हैं ।।४१२-४१६।।

विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद्द्रव्योपादानमारेत् ।
नहि तस्यास्ति किञ्चित्स्नं भर्तृहार्यधनो हि सः ।।४१७

वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् ।
तौ हि च्युतौ स्वकर्यभ्यःक्षोभयतामिदं जगत् ।।५१८

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्ताव्वाहनानि च ।
आयव्ययौ च नियतावाकारान्कोशमेव च ।।४१९

एवं सर्वानिमान्राजा व्यवहारान्समापयन ।
व्यपोह्यकिल्विषं सर्वं प्राप्नोतिपरमां गतिम् ।।४२०

कार्य के उतस्थित होने पर शूद्र का धन ब्राह्मण बिना बाधा के ले, क्योंकि उसका अपना कुछ नहीं होता, वरन् उसके स्वामी का हो होता है । राजा वैश्य और शूद्र उनकी वृत्ति यत्न सहित करावे क्योंकि वे दोनों अपने कर्मों से च्युत हो जांय तो सब जगत् को क्षुभित कर देते है । राजा प्रारम्भ किये कार्य की पूर्णता, निश्चित आय-व्यय खान, कोश और वाहनो का नित्य प्रति अवलोकन करे । उक्त व्यवहारों को पूर्ण करने वाला राजा सब पापों से मुक्त होकर परमपद प्राप्त कर लेता है ।।४१ ·-४२०।

।। आठवाँ अध्याय समाप्त ।।

नवां अध्याय

पुरुषस्य स्त्रियाश्‍ चैव धर्मे वर्त्मनि तिष्ठतो ।
संयोगे विप्रयोगे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ।।१
अस्वतन्त्राःस्त्रियःकार्याःपुरुषैःस्वैर्दिबानिशम् ।
विषयेषु च सज्जनन्त्य संस्थाप्या आत्मनो वशे ।।२
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।।३
कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पति ।
मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ।।४
सक्ष्मेभ्योऽपि प्रसंगेभ्यःस्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ।
द्वयोहि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ।।५
इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम् ।
यतन्ते रक्षितु भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि ।।६

धर्म मार्ग में स्थित पति-पत्नियों को संयोग और वियोग में जिन नित्य धर्मो का पालन करें, उनको कहेंगे । पुरुष अपनी स्त्रियों को कभी स्वतन्त्र न होने दें तथा विषयों में आसक्त हों तो भी उन्हें अपने वशीभूत रखे । बालावस्था में पिता, युवावस्था में पति बुद्धावस्था में पुत्र नारी के रक्षक होते है वह स्वतन्त्र कभी नहीं रहनी चाहिए। समय पर कन्या न देने से पिता ऋतु काल में गमन न करने से पति, पिता के मरणोपरान्त माता की रक्षा न करने से पुत्र निन्द्य होता है । अनुसंग से भी स्त्रियों

की यत्न पूर्वक रक्षा करे, क्योंकि आरक्षिता नारी दोनों कुलों में कलंक लगाती है और शोकाकुल करती है सब वर्णों के इस श्रेष्ठ नारी रक्षा वाले धर्म का अवलोकन करते हुए दुर्बल पति को भी अपनी पत्नीं की रक्षा में प्रयत्नशील रहना चाहिए ॥१-॥

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मांनमेव च ।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति ॥७
पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥८
आदृशं भजते हि स्त्री सुतं सुते तथाविधम् ।
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥६
न कश्चिद्योषितः शक्तःप्रसह्य परिरक्षितुम् ।
एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥१६
अर्थस्य संग्रहे चौनां व्यये चौव नियोजयेत् ।
शौचे धर्मेऽन्नपक्तय्ां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे ॥११
आरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः ।
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताःसुरक्षिताः ॥१२

जो पुरुष प्रयत्न पूर्वक अपनी स्त्री की रक्षा करता है, वह अपने अपत्य चरित्र, कुल आत्मा और धर्म की भी रक्षा कर लेता है। स्वामी स्त्री के गर्भ में वीर्य रूप से प्रविष्ट होकर पुत्र रूप से जन्म लेता है पति का उसमें पुनः जायमान होना ही जाया का जायात्व है। स्त्री जैसे पुरुष का सेवन करती है वैसे पुत्र उत्पन्न करती है इसलिए पवित्र सन्तान के प्रजननार्थ स्त्री की यत्न पूर्वक रक्षा करे। कोई पुरुष वलपूर्वक स्त्री की रक्षा नहीं कर सकता वरन् निम्न उपायों से ही कर सकता हैं उसे

अर्थ-संग्रह, व्यय उपभोग्य वस्तुओं की स्वच्छता पति से भोजन बनाने तथा गृह के सब सामानों की देखभाल का कार्य सौंपे। मान्य व्यक्तियों द्वारा घर में बन्द कर देने पर भी स्त्री की रक्षा नही हो सकती जो स्वयं ही अपनी रक्षा करे, वही सुरक्षित रहेगी ॥९-१२॥

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवायश्च नारीसंदूषणानि षट् ॥१३
नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः ।
सरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥१४
पोश्चल्याच्चलचिताच्च नैस्नेह्वाच्च स्वभावतः ।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥१५
एवंस्वभावं ज्ञात्वासां प्रजापतिनिसर्गचम् ।
परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥१६
शय्यासनयलंकारं कामं क्रोधमनार्जवम् ।
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत् ॥१७
नास्तिस्त्रीणां क्रियामन्त्रैरितिधर्मेव्यवस्थितिः ।
निरिन्द्रियाह्यमन्त्राश्चस्त्रियोऽनृतमितिस्थितिः ।१८

मद्यपान, दुष्टसंग पति वियोग एकाकी भ्रमण असमय में शयन और पराये घर में निवास यह छः दोष स्त्री को दूषित करने वाले है। वे रूप की परीक्षा नही करती, आयु की ध्यान नहीं रखतीं पुरुष सुन्दर हो अथवा असुन्दर उसी से भोग लिप्त होती है। पर पुरुष को देखकर उससे भोग का लालसा, चित्त की चंचलता और स्वभाव में शून्यता के कारण प्रयत्नपूर्वक घर में रोकी जाने पर भी वे अपने भर्त्ता के विरुद्ध कार्य करती है स्त्रियों का यह स्वभाव ब्रह्मा ने ही रचा है यह जानकर पुरुष

उसकी रक्षा में पूरी तरह प्रयत्नशील रहे। शय्या, आसन, अलंकार काम, क्रोध, कुटिलता द्रोहभाव अनाचार यह सब मनु ने सृष्टि के आदि में स्त्रियों के लिए ही निश्चित किया था। स्त्रियों की जातकर्मादि क्रिया मन्त्रों से न करने का विधान है, अज्ञान के कारण मन्त्र का उन्हें अधिकार नहीं होता, क्योंकि उनकी स्थिति ही असत्य में हैं ॥१३-१८॥

तथा च श्रुतयो बह्व्यो निगीता निगमेष्वपि ।
स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः ॥१९
यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता ।
तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम् ॥२०
ध्यायत्यनिष्टं यत्किञ्चित्पाणिग्राहस्य चेतसा ।
तस्यैष व्यभिचारस्य निह्नवः सम्यगुच्यते ॥२१
यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि ।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥२२
अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ।
शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥२३
एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ।
उत्कर्षं योषितःप्राप्ताःस्वैः स्वैर्भर्तृगुणैःशुभैः ॥२४

ऐसी जो अनेक श्रुतियां वेदों में है उनके अनुसार व्यभिचार के प्रायश्चित रूप मन्त्रों के विषय में सुनों। मेरी माता ने पतिव्रत रहित परपुरुष की कामना की कामना को, अतः मेरे पिता उस संकल्प से दूषित रज को शुद्ध करें, इस मन्त्र से उस समय का व्यभिचार प्रकट होता है। परपुरुषगमन के मानसिक संकल्प वाले पाप का संशोधन इस मन्त्र में वर्णित हुआ है। जैसे गुण के

पुरुष के साथ स्त्री का विवाह होता है, वह वैसे ही गुण से संपन्न होती है, जैसे नदी का स्वादिष्ट जल भी समुद्र से मिलकर खारी हो जाता है। निकृष्ट योनि में उत्पन्न होने वाली अक्षमाला मुनि वसिष्ठ से और शारंगी मन्दपाल से विवाह होने के कारण परम पूजनीया हो गई थी। इस संसार में अन्यान्य नीच कुलों में उत्पन्न स्त्रियां भी अपने पति के श्रेष्ठ गुणों से होकर उत्कर्ष को प्राप्त हुई ॥१६-२४॥

एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ।
प्रेत्येहं च सुखोदर्कान्प्रजाधर्मान्निबोधत ॥२५

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥२६

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥२७

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च हि ॥२८

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ।
सा भर्तुलोकानाप्नोतिसद्भिःसाध्वीतिचोच्यते॥२९

व्यभिचारात्तु भर्तुःस्त्रीलोके प्राप्नोतिनिंद्यताम् ।
श्रृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥३०

इस प्रकार यह स्त्री-पुरुषों के नित्य व्यवहार श्रेष्ठ नियम कहा गया, अब लोक-परलोक में सुख वृद्धि करने वाले सनातन धर्मों को कहूँगा। वे स्त्रियाँ सन्तानोत्पत्ति के द्वारा महान उपकार करने वाली, पूजनीया और गृह की शोभा हैं, क्योंकि घर की स्त्री और लक्ष्मी में कोई अन्तर नहीं है। प्रसव, शिशुपालन,

और दैनिक गृहकार्य इन सबका प्रत्यक्ष कारण नारी ही है। अपत्य, धर्मकार्य, सेवा, श्रेष्ठ रति, पितरों का और अपना स्वर्ग-साधन, यह सब भार्या के ही अधीन हैं। जो पत्नी मन, वचन और देह से पति के विरुद्ध कभी कोई आचरण नहीं करती वह इस लोक में पतिव्रता कहाती हुई परलोक में पति के साथ स्वर्ग सुख भोगती है। पति के विपरीत व्यभिचार करने वाली स्त्री निन्दा को प्राप्त होती और मरने पर श्रृगालादि योनियों में जन्म लेती हुई पाप रोगों से ग्रस्त होती है।-२५-३०।।

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः।
विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत ।।३१

भर्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिद्वधं तु भर्तरि।
आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः।३२

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतःस्मृतः पुमान्।
क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् ।।३३

विशिष्टं कुत्रचिद्बीज स्त्रीयोनिस्त्वेव कुत्रचित्।
उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते ।।३४

बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते।
सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता ।।३५

यादृशं तृप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते।
तादृग्रोहति मतस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ।।३६

प्राचीन ऋषि-मुनियों ने पुत्र विषयक जो विचार लोक के हितार्थ कहे हैं, वह सुनो। मुनियों के मत में पुत्र पति का होता है, किन्तु इसमें दो मत है—कोई पुत्र उत्पन्न करने वाले को पुत्र का अधिकारी मानते हैं और कोई जिसकी स्त्री में पुत्र उत्पन्न

हुआ है उसके पति को पुत्र का अधिकारी समझते हैं। ऋषिगण स्त्री को क्षेत्र (खेत के समान) और पुरुष को बीज के समान मानते हैं,क्योंकि क्षेत्र-बीज के संयोग से ही सब जीव उत्पन्न होते हैं। कहीं बीज की प्रधानता है तो कहीं खेत की, जहाँ बीज और खेत दोनों समान हों वहाँ पति रूप बीज से उत्पन्न सन्तान श्रेष्ठ होता है। बीज और खेत में बीज की ही प्रधानता है, क्योंकि सब प्राणियों की उत्पत्ति बीज के ही रङ्ग रूप के समान होती है। यथा समय जोते हुए खेत में जैसा बीज बोया जाय वैसे ही गुण वाला अंकुर उसमें उत्पन्न होता है ॥३१-३६॥

इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वतो योनिरुच्यते ।
न च योनिगुणान्कांश्चिद्बीजं पुष्यति पुष्टिषु ॥३७

भूमावप्येककेदारे कालेऽप्तानि कृषीवलैः ।
नानारूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः ॥३८

व्रीहयःशालयो मुद्गास्तिलामाषास्तथा यवाः ।
यथाबीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा ॥३९

अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते ।
उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥४०

तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना ।
आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति ॥४१

अत्र गाथा वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।
यथा बीजं न वप्तव्यं पुंसा परपरिग्रहे ॥४२

यह पृथिवी सब जीवों का शाश्वत उत्पत्ति स्थान है, किन्तु पृथिवी का कोई गुण बीज में नहीं आता, वरन् वह अपने ही गुणों से अंकुरित होता है। खेत में यथा समय बोये गये अनेक

प्रकार के बींज अपने अपने ही गुण-रूप के अनुरूप उत्पन्न होते हैं। धान, मूँग, तिल, उड़द एवं जौ आदि अन्न तथा लहसुन एवं ईख सब अपने-अपने बीज के समान ही विविध रूपों में अंकुरित होते हैं। ऐसा कभी नही होता कि बोवें कुछ और उत्पन्न कुछ और हो, वरन् जो बीज बोते हैं, वही उत्पन्न होते हैं। इसलिए ज्ञान विज्ञान का ज्ञाता एवं दीर्घायु का इच्छुक विद्वान् परनारी में कभी बीज-वपन न करे। भूत काल के ज्ञाता वायु द्वारा गायी हुई गाथा कहते हैं कि कोई पुरुष पर स्त्री में बीज-वपन न करे ॥३७-४२॥

नश्यतीषुर्यथा विद्धः खे विद्धमनुविद्धयतः ।
तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजं परपरिग्रहे ॥४३

पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः ।
स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ॥४४

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह ।
विप्रा प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना ॥४५

न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते ।
एवं धर्मं विजानीमः प्राक्प्रजापतिनिर्मितम् ॥४६

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृद् ॥४७

यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीषु महिष्यजाविकासु च ।
नोत्पादकः प्रजभागी तथैवान्यांगनास्वपि ॥४८

जैसे एक के द्वारा वेधे हरिण के लक्ष्य पर अन्य का प्रक्षिप्त बाण विफल हो जाता है, वैसे ही परनारी में बोया बीज फल हीन होता है, क्योंकि गर्भधारण के पश्चात् उस पर खेत के

स्वामी का ही अधिकार होता है, बीज वाले का नहीं। पूर्वकालीन विज्ञजनों ने पृथिवी को पृथु की पत्नी कहा हैं, जो जिस भूमि का परिष्कार करे, वह भूमि उसी की होती है, जैसे कि हरिण पर पहिले बाण लगे, उसी का अधिकार होता है। स्त्री, अपना देह और सन्तान इन तीनों के मिलने से पुरुष होता है, वेदविज्ञों के अनुसार भार्या ही भर्त्ता है। बेच देने या छोड़ने से भी पत्नी उस पति के पत्नीत्व से नहीं छूटती, प्रजापति के बनाये इस विधान को हम भले प्रकार जानते हैं। भाइयों से पैतृक सम्पत्ति एक ही बार बैठती है, कन्या का दान एक ही बार किया जाता है, धन का दान भी एक बार ही होता है, अर्थात् यह तीनों कार्य दो बार नहीं होते। जैसे गौ, घोड़ी, ऊँटनी, भैंस, बकरी भेड़ और दासी में शिशु उत्पन्न करने वाले वृषभादि के स्वामी सम्मान के स्वामी नहीं होते, वैसे ही परनारी में प्रजनन करने वाला पुरुष भी सम्मानवान नहीं होता ॥४३-४८॥

येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परक्षेत्रप्रवापिणः ।
ते वै सस्यस्य जातस्य न लभन्ते फलं क्वचित् ॥४९

यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम् ।
गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कन्दितमार्षभम् ॥५०

तथैवाक्षेत्रिणो बीजं परक्षेत्रप्रवापिणः ।
कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजी लभेत फलम् ॥५१

फलं त्वनभिसन्धाय क्षेत्रिणां बीजिनां तथा ।
प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्योनिर्गरीयसी ॥५२

क्रियाभ्युपगमात्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते ।
तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिक एव च ॥५३

ओघवाताहृत बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ।
क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वप्ता लभते फलम् ।।५४

खेत का स्वामी अन्य के खेत में धान बोवे तो वह उसकी उपज कदापि प्राप्त नहीं कर सकता । अन्य की गायों में बैल सौ बछड़े उत्पन्न करे तो भी वे बछड़े बैल के स्वामी के न होकर गायों के स्वामी के होते हैं. इस प्रकार बैल का बीय सींचना उसके स्वामी के किसी काम का नहीं होता । वैसे ही अन्य के खेत में बीज वाले का वीज निष्फल रहता है क्योंकि खेत का स्वामी ही उसका अधिकारी होता है, वीज वाला नहीं । यदि बीज वाले और खेत वाले के मध्य उपज के विषय में कोई बात विश्चित न हो तो वह उपज खेत वाले की होती है, क्योंकि बीज से खेत महान होता है । दोनों के मध्य समान स्वत्व के निश्चय पर जो खेत वोज बोने के लिए दिया जाता है, उस पर दोनों का समान अधिकार देखा जाता है । जल या वायु के प्रवाह से किसी अन्य के खेत से आया हुआ बीज भी जिस खेत में आता है, उसी के स्वामी का होता है, जिसके खेत से आया है उसका नहीं ।४६-५४।।

एष धर्मो गवाश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च ।
विहंगमहिषीणां च विज्ञेयः प्रसवं प्रात ।।५५

एतद्वः सारफाल्गुत्वं बीजयौन्योः प्रकीर्तितम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि ।।५६

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा ।
यवीयसस्तुयाभार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ।।५७

ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम् ।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ।।५८

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥५९

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि ।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥६०

गौ, घोडी, दासी, ऊँटनी, भेड़ बकरी, पक्षी और भैस की सन्तति के विषय में भी यही नियम समझे । यह बीज और क्षेत्र की प्रधानता-अप्रधानता कही गई, अब स्त्रियों के आपत्कालीन धर्म बतायेंगे । बड़े भाई की स्त्री को छोटा भाई गुरुपत्नी के समान तथा छोटे भाई की स्त्री को बड़ा भाई पुत्रबधू के समान समझें । ज्येष्ठ भ्राता छोटे भाई की पत्नी से या छोटा भाई ज्येष्ठ की पत्नी से निरापद काल में यदि नियुक्त होकर भी गमन करे तो पतित हो जाता है । सन्तान न होने पर स्त्री,पति या गुरुजनों की आज्ञा से नियुक्त होकर देवर अथवा किसी अन्य सपिण्ड पुरुष से इच्छित सन्तान का आधान करावे। इस प्रकार नियुक्त हुआ पुरुष अपने पूरे शरीर में घृत का लेप करके, रात्रि के समय मौन धारण पूर्वक विधवा में एक ही पुत्र का आधान करे, दूसरे का कभी न करे ॥५८-६०॥

द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः ।
अनिर्वृतं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥६१

विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि ।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम् ॥६२

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्तेयातां तु कामतः ।
तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥६३

नान्यस्मिन्विधवानारी नियोक्तव्याद्विजातिभिः ।
अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युःसनातनम् ॥६४

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥६५

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्य प्रशासति ॥६६

किन्तु नियोग-विज्ञ आचार्यों के मत में एक पुत्र की उत्पत्ति न होने के ही समान है, इसलिए नियुक्त पुरुष धर्मपूर्वक उस स्त्री में दूसरे पुत्र की उत्पत्ति करे। शास्त्रोचित नियोग कार्य पूर्ण होने के पश्चात् वे स्त्री-पुरुष परस्परमें गुरु और पुत्रवधु जैसा आचरण करें। क्योंकि जो शास्त्रविरुद्ध आचरण करते हैं वे पुत्रवधु या गुरुपत्नी से व्यभिचार के समान पतित हो जाते हैं। द्विजाति वाले अपनी विधवा स्त्रियों का नियोग किसी अन्य से न करावे, क्योंकि अन्य से नियोग कराने पर विधवा का पतिव्रत धर्म नष्ट हो जाता है। वैवाहिक वेदमन्त्रों में नियोग का वर्णन कहीं नही है और न विवाह विधान वाने शास्त्रों में ही विधवा विवाह का कोई उल्लेख है। विज्ञ विप्रों द्वारा इस पशुधर्म की निन्दा की गई है, यह पशुधर्म राजा वेन के शासन काल से चला है ॥६१-६६॥

स महीमखिलां भुञ्जन्राजर्षिप्रवरः पुरा ।
वर्णानां सङ्करं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥६७

ततः प्रभृति यो मोहत्पमीतपतिकां स्त्रियम् ।
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥६८

यस्या म्रियेत् कन्याया वाचा सत्ये कृते पति ।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥६९

यथाविध्यधिगम्यरा शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम् ।
मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ॥७०

न दत्वा कस्यचित्क यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ।
दत्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ।।७१

विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम् ।
व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम् ।।७२

सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करते हुए राजर्षिप्रवर का नवे नेम वश हतज्ञान होकर यह वर्णसंकर प्रथा प्रारम्भ की। उस समय से जो लोग अज्ञानवश विधवा का अन्य से नियोजित करते हैं, वे साधु समाज में निन्द्य होते हैं। वाग्दान के पश्चात् जिस कन्या के भावी पतिका मरण, हो जाय उस कन्या का विवाह इस विधि के द्वारा देवर से करदे--वह देवर विवाह विधि से नियोग करके उस शुचिव्रता शुल्कवस्त्राधारिणी स्त्री से गर्भ धारण होने तक प्रत्येक ऋतुकाल में एक बार ही गमन करे। एक के साथ वाग्दान हो जाने पर विज्ञ पुरुष अन्य को कन्या न दे, वैसा करने से उसे पुरुषानृत दोष लगता है जो निन्दित, रोगिणी और दूषिता कन्या छलपूर्वक श्रेष्ठ शुद्ध बताकर दी गई हो, उसे विधिवत ग्रहण करके भी छोड़ सकता है ।।६७-७२।।

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत् ।
तस्य तद्वितथं कुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः ।।७३

विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रसवेत्कार्यवान्नरः ।
अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ।।७४

विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता ।
प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ।।७५

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ।
विद्यार्थं षट् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ।।७६

संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पति ।
ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत् ॥७७

अतिक्रमेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्तमेव वा ।
सा त्रीन्मासान्परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा ॥७८

जो पुरुष सदोष कन्या के दोष बताये बिना ब्याह दे तो वह कन्या देने वाले दुरात्मा के दान को वापिस कर दे। कार्यार्थी पुरुष पत्नी की वृत्ति की व्यवस्था करके देशान्तर में जाय,क्योंकि भोजन-वस्त्र के अभाव में सुशीला स्त्री भी दुःशीला होसकती है। जीविका की व्यवस्था करके विदेश जाने पर पतिकी अनुपस्थिति में पत्नी नियम से रहे, यदि पति जीविका का प्रबन्ध किये बिना ही चला जाय तो स्त्री किसी अनिन्दित वृत्ति से जीवन निर्वाह करे। धर्म कार्य के निमित्तस्वामी के विदेश जाने पर आठ वर्ष, विद्या या कीर्ति के लिए जाने पर छः वर्ष और काम वासना के निमित्तगया हो तो तीन वर्ष तक उसके आने की प्रतीक्षा करे। द्वेष करने वाली पत्नी की प्रतीक्षा पति एक वर्ष तक करे और फिर भी उसकी बुद्धि द्वेष रहित न होतो उससे अपना भूषणादि लेकर सम्बन्ध तोड़ दे। द्यूत आदि में विस्मृत, मदोन्मत्त या व्याधिग्रस्त पति की सेवा न करे, तिरस्कार करे तो पति उसे तीन माह तक के लिए छोड़ दे और वस्त्राभूषण आदि भी उससे ले ले ॥७३-७८॥

उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोगिणम् ।
न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम् ॥७९

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ।
व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्रार्थघ्नी च सर्वदा ॥८०

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ।
एकादशे स्त्री जननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥८१

या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः ।
सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ॥८२

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात् ।
सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसंनिधौ ॥८३

प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि ।
प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्डया कृष्णलानि षट् ॥८४

यदि उन्मत्त पतित, क्लीव, वीर्यहीन, पाप रोगी हुए पति की परिचर्या स्त्री न करे तो न तो उसका त्याग करे और न आभूषणादि ही ले । यदि पत्नो मदिरा पोवे बुरा आचरण करे, स्वामी के विपरीत चले, रोगयुक्त हो जाय, हिंसक स्वभाव वाली या असीमित व्यय करने वाली हो जाय तो उसका पति चाहे तो दूसरा विवाह कर ले - पत्नी वन्ध्या हो तो आठवें वष, मृतवत्सा हो तो दसवें वर्ष केवल कन्या ही प्रसव करे तो ग्यारहवें वर्ष और अप्रियभाषिणी हो तो शीघ्र ही दूसरा विवाह कर ले। पत्नी रोगिणी होती हुई भी पति में प्रेम रखती हो, और सुशीला हो तो पति उसकी अनुमति से दूसरा विवाह करे, और उसका तिरस्कार कभी न करे । पति के दूसरा विवाह करने से यदि पत्नी रुष्ट होकर घर से चली जाय तो उसे शीघ्र ही पकड़कर घर में बन्द कर ले या उसके पिता के घर भेज दे । जो स्त्री पति के द्वारा रोकी जाने पर भी उत्सवों में मदिरा-पान करे अथवा किसी उत्सवाद को देखने चली जाय तो राजा उसे छः कृष्णल दण्ड दे ॥७९-८४।

यदि स्वाश्चापराश्चैव विन्देरन्योषितो द्विजाः ।
तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यंपूजा च वेश्म च ॥८५

भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यकम् ।
स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन ॥८६

यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयान्यथा ।
यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥८७

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥८८

काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥८९

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्युतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥९०

कोई द्विज सजातीय और विजातीय दोनों प्रकार की कन्याओं से विवाह करे तो उन स्त्रियों में वर्ण के कम से छोटी-बड़ी तथा वस्त्राभूषण और घर आदि की व्यवस्था करे। सभी वर्णों में पति के शरीर की सेवा तथा नित्य-नैमित्तिक कार्य सजातीय स्त्री ही करे, विजातीया नहीं। जो ३ष सजातीया के होते हुए विजातीया से मोहवश शरीर की सेवा करावे, वह ब्राह्मण चाण्डाल के समान है। श्रेष्ठ कुल का सुन्दर, सजातीय वर मिले तो कन्या के अवयस्का होने पर भी उस वर से यथाविधि ब्याह दे। चाहे ऋतूमती होने पर कन्या आजावन कुमारी एवं पिता के घर में रहे तो ठीक है, किन्तु उसे गुणहीन वर को कभी न दे। ऋतुधर्म होने के तीन वर्ष पर्यन्त कन्या श्रेष्ठ कुल वाले विज्ञवर की प्रतीक्षा करे, तत्पश्चात् मनोनुकूल वर न मिले तो समान जाति गुण वाले वर का वरण स्वयं कर ले ॥८५-९०॥

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ।
नैनः किंचिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति ॥९१

अलङ्कारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयं वरा ।
मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ॥९२

पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् ।
स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् ॥९३

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥९४

देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः ।
तां साध्वीं बिभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन् ॥९५

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाःसंतानार्थं च मानवः ।
तस्मात्साधारणो धर्मःश्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥९६

पिता भाई आदि के द्वारा जिस कन्या का विवाह नहीं हुआ वह कन्या विहित काल में वर का वरण स्वयं कर ले तो इससे उसे या उसके पति का कोई पाप नहीं लगता। स्वयं वर का वरण करने वाली कन्या पिता, माता या भ्राता का दिया हुआ आभूषणादि न ले, अन्यथा वह चोर मानी जायगी। ऋतुमती क्योंकि ऋतुमती होने पर उसका विवाह न करने से सन्ततिरोध के दोष से कन्या पर पिता का कुछ अधिकार नही होता। तीस वर्ष के युवक को बारह वर्ष की कन्या से या चौबीस वर्ष के युवक को आठ वष की बालिका से विवाह करना चाहिए,क्योंकि शीघ्र विवाह करने वाला युवक गृहस्थ में क्लेश प्राप्त करता है। पति स्वेच्छा से पत्नी प्राप्त न करके देवता-प्रदत्त पत्नी पाता है, इसलिए देवताओं की प्रसन्नता के लिए उस साध्वी का सदैव पालन करे। ब्रह्मा ने गर्भग्रहणार्थ स्त्री को और गर्भधानार्थ पुरुष की रचना की हैं, इसलिए श्रुति के अनुसार सामान्य धम भी स्त्री के साथ ही करना चाहिए ॥९१-९६॥

कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियेत यदि शुल्कदः ।
देवराय प्रदातव्या यदि कन्यानुमन्यते ॥९७

आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददन् ।
शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥९८

एतत्तु न परे चाक्रुर्नापरे जातु साधवः ।
यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते ॥९९

नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु ।
शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥१००

अन्योन्यस्याव्यभीचारो भवेदामरणान्तिकः ।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥१०१

तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ ।
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम् ॥१०२

जिस कन्या के लिए शुल्क देने के पश्चात् शुल्कदाता पुरुष विवाह होने से पूर्व ही मर जाय तो उस कन्या को अनुमति से उसे उसके देवर से विवाह दे। कन्यादान के बदले में शूद्र भी शुल्क ग्रहण न करे, क्योंकि इससे वह कन्या को बेचता ही है। ऐसा न पहिले किसी ने किया और न वह कोई वर्तमान में हो कर रहा है, कि किसी को कन्या देने का वचन देकर किसी अन्य को दे दे। पूर्व कल्प में यह कभी नही सुना गया कि शुल्क रूपी मूल्य में कोई सज्जन कन्या-विक्रय को छिपा सका हो। स्त्री-पुरुष अपने जीवन पर्यन्त धर्म, अर्थ और काम विषयक कर्मों में परस्पर अभेद रहें, यह स्त्री का संक्षेप रूप में धर्म समझे। विवाह के पश्चात् स्त्री-पुरुष दोनों ही सदैव यह यत्न करें कि धर्म, अर्थ और काम के विषय में कभी कोई पृथक् आचरण न करे ।।९-१०२।।

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः ।
आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत ॥१०३

ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम् ।
भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः ॥१०४

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः ।
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥१०५

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्रीभवति मानवः ।
पितॄणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ॥१०६

यस्मिन्नृणं संनयति येन चानन्त्यमश्नुते ।
स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः ॥१०७

पितेव पालयेत्पुत्राञ्ज्येष्ठो भ्रातॄन्यवीयसः ।
पुत्रवच्चापि वर्तेरञ्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥१०८

स्त्री-पुरुष का यह रतिमय धर्म तथा आपत्काल में सन्तानो-त्पत्ति की विधि कही गई, अब दाय भाग की व्यवस्था का श्रवण करो। माता-पिता के मरने पर सब भाई पिता के धन को समान रूप से बाँट लें, किन्तु माता-पिता के जीवित रहते हुए वे ऐसा नहीं कर सकते। बड़ा पुत्र ही पिता के धन को ले और शेष सब भाई बड़े को पितृवत मानकर उसके आधीन रहें। बड़े पुत्र के जन्म लेते ही मनुष्य पुत्रवान होता हुआ पितृऋण से उऋण हो जाता है, इसलिए पिता का धन लेने का अधिकारी वही है। जिस पुत्र के जन्म से पिता पितृऋण से छूटे और मोक्ष प्राप्त करे, वही धर्म से उत्पन्न पुत्र है, अन्य तो कामज कहे गये हैं। पिता द्वारा पुत्रों का पालन करने के समान ही ज्येष्ठ भ्राता छोटे भ्राताओं का पालन करे तथा छोटे भ्राता भी उसके साथ पुत्र जैसा छल रहित आचरण करें।-१०३-१०८।

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ।
ज्येष्ठःपूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः ॥१०९

योज्येष्ठोज्येष्ठवृतिःस्यान्मातेव स पितेव सः ।
अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स संपूज्यस्तु बन्धुवत् ।।११०

एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया ।
पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक्क्रिया ।।१११

ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् ।
ततोऽर्धं मध्यमस्त स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ।।११२

ज्येष्ठश्चैव कनिष्टश्च संहरेतां यथोदितम् ।
येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषांस्यान्मध्यमे धनम्।।११३

सर्वेषां धनजातानामाददीताग्रयमग्रजः ।
यच्च सातिशयं किंचिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम् ।।११४

बड़ा भाई कुल की वृद्धि भी कर सकता है और नष्ट भी कर सकता है, वह पूज्यतम है इसलिए सज्जन पुरुष उसकी निन्दा नहीं करते। छोटे भाइयों से श्रेष्ठ व्यवहार करने वाला बड़ा भाई माता-पिता के समान श्रद्धास्पद होता है. किन्तु एसा न करे तो भाई के समान ही आदर का अधिकारी होता है। इस प्रकार सब भाई-एक साथ मिलकर रहें या धर्म की कामना से अलग-अलग। अलग रहने से धर्म का वृद्धि होती हैः इसलिए अलग रहना अधिक श्रेयस्कर है। धन का बीसवाँ भाग और सबसे श्रेष्ठ वस्तु बढ़े भाई को दे,उसका आधा बीचके भाई को और चौथाई सबसे छोटे भाई को,फिर जो शेष बचे उसेवे परस्पर समान भाग में बाँट लें, ज्येष्ठ और सबसे छोटा ऊपर कहे अनुसार अपना-अपना भाग लें फिर बीच के जितने भाई हो,वे प्रत्येक चालीसवाँ भाग प्राप्त करें। ज्येष्ठ भाई सब में श्रेष्ठ धन, सब में श्रेष्ठ वस्तु और दस पशुओं में से श्रेष्ठ एक पंशु इच्छानुसार ले ।।१०९-११४।

उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु ।
यत्किंचिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्धनम् ॥११५

एवं समुद्धतोद्धारे समानंशान्प्रकल्पयेत् ।
उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना ॥११६

एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्धं ततोऽनुजः ।
अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः ॥११७

स्वेभ्योंऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यःप्रदद्युर्भ्रातरःपृथक् ।
स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः ॥११८

अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् ।
अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥११९

यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि ।
समस्तत्र विभागःस्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥१२०

यदि सभी भाई समान गुण वाले हों तो ज्येष्ठ को दस पशुओं से एक छाँट लेने को कहा है वैसा नहीं किया जायगा, हाँ उसे मानवर्धनार्थं कुछ अंश विशेष रूप से मिलेगा। इस प्रकार यथा-योग्य अंश-विभाग के पश्चात् अवशिष्ट धन को सब समान रूप से बाँट लें, यदि पहिले कहे अनुसार अंश-विभाग न हुआ हो तो आगे कहे अनुसार करे। ज्येष्ठ भाई दो भाग, उससे छोटा डेढ़ भाग और उससे छोटे सब भाई एक भाग लें, यह धर्मसंगत व्यवस्था है। अविवाहित बहिनों के लिए सभी भ्राता अपने-अपने अंश से अलग-अलग दें, अपने अंश का चतुर्थ भाग बहन के निमित्त न देने वाले पतित हो जाते हैं। यदि बकरा, भेड़, घोड़े आदि का भाग समान न बँट सके तो उनका मूल्य परस्पर में बाँट लें अथवा समान भाग करने परजो दो-एक शेष बचे उसे

ज्येष्ठ भ्राता को दे दें। यदि छोटे भाई के नियोग से बड़े भाई की स्त्री से पुत्र उत्पन्न हो तो वह पुत्र भी अपने चाचा के समान भाग प्राप्त करेगा, यह धन की व्यवस्था हुई ॥११५-१२०॥

उपसर्जन प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते ।
पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्धर्मेण त भजेत् ॥१११
पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः ।
कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥१२२
एकं वृषभमुद्धारं संहरेत स पर्वजः ।
ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तदूनानां स्वमातृतः ॥१२३
ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरेद्वृषभषोडशाः ।
ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा ॥१२४
सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः ।
न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्तिजन्मतोज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥१२५
जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्राह्मण्यास्वपि स्मृतम् ।
यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्यैष्ठता स्मृता ॥१२६

ज्येष्ठ भाई का वह पुत्र क्षेत्रज होने से ज्येष्ठ के समान अंश नहीं पा सकता, प्रजनन में पिता ही प्रधान होता है, इससे उसे चाचा के बराबर भाग मिल सकता है। यदि पूर्व विवाहिता पत्नी का पुत्र छोटा और बाद में विवाहिता का पुत्र बड़ा हो तो उन दोनों में धन का विभाग कैसे हो, इसमें संशय हो तो यह करे कि पूर्व पत्नी का पुत्र छोटा होने पर भी अपने भाग में एक बैल अधिक ले इसके अन्य सौतेले भाई, यदि आयु में बड़े हों तो उनमें माता की छोटाई-बड़ाई के अनुसार ही विभाग किये जाय। पूर्व विवाहिता पत्नी से ज्येष्ठ पुत्र हो तो वह अपने भाग से एक गौ-

बल अधिक ले, अन्य पुत्र अपनी माता की छोटाई-बड़ाई के अनुसार धन बाँटें। सजातीया पत्नियों से उत्पन्न पुत्रों में जाति की विशेषता न होने से माता के बड़े होने से पुत्र बड़ा नहीं होगा, वरन् जन्म से छोटा-बड़ा होना माना जायगा। सुब्रह्मण्याख्य मंत्र में भी जन्म से ज्येष्ठ के द्वारा ही इन्द्र का आह्वान बताया है, युग्म पुत्रों में भी पहिले जिसका जन्म होता है, उसे ही ज्येष्ठ पुत्र कहा गया है।-१२१-१२६॥

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम् ॥१२७

[अभ्रातृकां प्रदास्यामितुभ्यकल्यामलंकृताम् ।
अस्यां यो जायते पुत्रस्स मे पुत्रो भवेदिति ॥

अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिकाः ।
विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥१२८

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्तविंशतिम् ॥१२९

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥१३०

मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ।
दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम् ॥१३१

दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत् ।
स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च ॥१३२

पुत्रहीन पुरुष इस विधि से पुत्री को पुत्रिका बनावे कि इससे जो सन्तान उत्पन्न हो वही मेरा श्राद्ध करे। (मैं यह भ्रातृहीना एवं अलकृता कन्या तुम्हें प्रदान करता हूँ, इससे

उत्पन्न होने वाला पुत्र मेरे पुत्र के स्थान पर होगा) इसी विधि से दक्ष प्रजापति ने अपनी वंशवृद्धि के लिए पूर्वकाल में अपनी पुत्रिका दी थी। दक्ष ने दस कन्याएँ धर्म को, तेरह कश्यप को और सत्ताईस चन्द्रमा को प्रसन्न मन से प्रदान की थीं। जैसे आत्मा और पुत्र में भेद नहीं होता वैसे ही पुत्र और पुत्री में भी भेद नहीं होता, आत्मस्वरूपा पुत्री के विद्यमान रहते हुए कोई अन्य धन को कैसे ले सकता है? माता के विवाह के समय उसके पिता या भाई का धन उसकी अविवाहिता पुत्री को मिले पुत्र-हीन नाना के धन का अधिकारी दौहित्र होता है। अन्य पुत्र न होने पर पिता का भी सब धन दोहित्र लेगा और वही पिता तथा नाना को पिंड देगा ॥१२९-१३२॥

पौत्रदोहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः।
त्रयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः ॥१३३

पुत्रिकायां कृतायां सु यदि पुत्रोऽनु जायते।
समस्तत्रविभागःस्याज्ज्येष्ठतानास्तिहिस्त्रियाः॥१३४

अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन।
धनं तत्पुत्रिकाभर्ता हरेतैवाविचारयन् ॥१३५

अकृवा वा कृता वा प यं विन्देत्सदृशात्सुतम्।
पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिडं हरेद्धनम् ॥१३६

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रणान त्यमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् ॥१३७

पुंनाम्नां नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥१३८

संसारमें पौत्र और दौहित्र में धर्मसे कोई विशेष भेद नहीं है, क्योंकि उन दोनों के पिता और माता की उत्पत्ति एक ही शरीर

से हुई है। पुत्रिका करने के पश्चात् पुत्र का जन्म हो जाय तो उन दोनों को सम्पत्ति में समान अंश मिलेगा, क्योंकि पुत्री की ज्येष्ठता नहीं मानी जाती। यदि पुत्रिका भी पुत्रहीना रहकर ही मर जाय तो जिस धन की वह अधिकारिणी है उसे उसका पति बिना विचारे ही ग्रहण कर ले। नाना पुत्रहीन होने पर पुत्रिका करे या न करे, यदि उसकी पुत्री का पुत्र समान जाति के पति से उत्पन्न हो तो नाना उसी पुत्र से पुत्रवान हो जायगा और वही नाना का पिंडदान आदि करके धन भी ले लेगा। पुत्र-जन्म से स्वर्ग प्राप्त होता है पौत्र जन्म से चिरकाल तक स्वर्ग में रहता है और प्रपौत्र के जन्म से सूर्यलोक में स्थित होता है। जिस कारण पुत्र 'पु' नामक नरक से पितरों का उद्धार करता है उसी कारण से स्वयं ब्रह्मा ने अपने से उत्पन्न को 'पुत्र' कहा है ॥१३ -१३८॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ।
दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत् ॥१३९

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः ।
द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः ॥१४०

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्त्रिमः ।
स हरेतैव तद्रिक्थं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रत ॥१४१

गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दत्त्रिमः क्वचित् ।
गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥१४२

अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात् ।
उभौ तौ नार्हतो भागं जराजातककामजौ ॥१४३

नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः ।
नैवार्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सः ॥१४४

योक में पौत्र और दोहित्र में कोई भेद नहीं है, क्योंकि पौत्र के समान दोहित्र भी नाना का पिण्डदानादि द्वारा उद्धार करता है। पुत्रिका का पुत्र प्रथम पिण्ड माता को दूसरा नाना का और तीसरा पडनाना को दे। सर्वगुण सम्पन्न दत्तक पुत्र दूसरे गोत्र से आने पर भी पिता के धन का पूर्ण स्वामी होता है। दत्तक पुत्र का जन्मदाता पिता के गोत्र और धन से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, वरन् गोद लेने वाले को हो उसके द्वारा दिया हुआ पिण्ड मिलता है, जन्मदाता को उसका पिण्ड पानी प्राप्त करने का भी अधिकार नहीं रहता। विधिवत नियोग के बिना पुत्र के अभाव वाली जो स्त्री देवर से पुत्र उत्पन्न करे, तो उसके पुत्र जारज और कामज कहलाते हुए धन का अंश नहीं पा सकते। नियुक्ता नारी से जो विधान रहित रूप से पुत्र हो वह पतित से उत्पन्न होने के कारण पिता का धन नही पा सकता ॥१३-१४४॥

हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः ।
क्षेत्रिकस्य तु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्च सः ॥१४५
धनं यो बिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च ।
सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ॥१४६
या नियुक्तान्यतः पुत्रं देवराद्वाप्यवाप्नुयात् ।
तं कामजमरिक्थीयं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥१४७
एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु ।
बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत ॥१४८
ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः ।
तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयं विधिः स्मृतः ॥१४९

कीनाशो गोवृषो यानमलंकाराश्च वेश्म च ।
द्विऽस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः ॥१५०

नियुक्ता नारी में शास्त्रविधि से उत्पन्न पुत्र औरस के ही समान पिता के धन का अधिकारी हो जाता है, क्योंकि धर्म पूर्वक उत्पन्न क्षेत्रज पुत्र है। भाई की मृत्यु होने पर जो लघु भ्राता उसके धन और स्त्री की रक्षा करे, वह विधिवत उस स्त्री में सन्तानोत्पादन करे और भाई का सब धन उसी को दे दे। गुरुजनों से नियुक्त स्त्री देवर या अन्य पुरुष से सन्तान उत्पन्न करावे तो यदि वह कामज हैं तो पिता का धन नहीं पा सकता क्योंकि उसके जन्म को विज्ञजन व्यर्थ बताते हैं। यह सजातीया में उत्पन्न पुत्र के धन-विभाग के विषय में कहा गया, अब विभिन्न जाति की स्त्रियों में उत्पन्न हुए पुत्र के विभाग को कहेंगे। ब्राह्मण के यहाँ चारों वर्ण की पत्नियां हों और वे सब पुत्रवती हों तो उनके विभाग के विषय में मनु कहते हैं—जो पुत्र सवर्णा से उत्पन्न हो उसे एक सुदृढ़ बैल, एक अश्व, भूषण, गृह और त्रिभाग की वस्तुओं से सर्वश्रेष्ठ वस्तु देकर अवशिष्ट रहे धन को सब भाई निम्न प्रकार से बाँट लें ।१४५-१५०॥

त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः ।
वैश्याजः सार्धमेवांशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ।१५१

सर्वं वा रिक्थजातं तद्दशधा परिकल्प्य च ।
धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनानेन धर्मवित् ॥१५२

चतुरोंऽशान्हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः ।
वैश्यापुत्रो हरेद्द्व्यंशमंशं शुद्रासुतो हरेत् ॥१५३

यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यसत्पुत्रोऽपि वा भवेत् ।
नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ॥१५४

ब्राह्मणत्रियविशां शूद्रपुत्रो न रिक्थभाक् ।
यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनं भवेत् ।।१५५

समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजन्मनाम् ।
उद्धारं ज्यायसे दत्वा भजेरन्नितरे समम् ।।१५६

पिता के धन को साढ़े सात भागों में बाँटकर तीन भाग ब्राह्मणी का, दो भाग क्षत्राणी का, डेढ़ भाग वैश्या का और एक भाग शूद्रा का पुत्र ले । अथवा धर्मविज्ञ पुरुष सम्पूर्ण धन के दस भाग करके उसे निम्न प्रकार धर्मपूर्वक बाँट दे । ब्राह्मणी के पुत्र को चार भाग, क्षत्रिया के पुत्र को तीन भाग, वैश्या के पुत्र को दो और शूद्रा के पुत्र को एक भाग दे ब्राह्मण की द्विजाति वाली स्त्रियों के पुत्र हों या न हों,किन्तु शूद्रा के ही पुत्र हो तो भी उसे दसवें भाग से अधिक नहीं देना चाहिए । ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य का शूद्रा से उत्पन्न पुत्र धन का भागी नहीं होता, वरन् उसे पिता जो कुछ दे दे वही उसका है । द्विजातियों के सजातीया स्त्री में जितने भी पुत्र हों वे बड़े भाई को उसका बड़ा अंश देकर अवशिष्ट धन का समान रूप से बँटवारा करें ।।१५५ - ५ ।

शूद्रस्य तु सवर्णैव नान्या भार्या विधीयते ।
तस्यां जाताःसमांशाःस्युर्यदि पुत्रशतं भवेत् ।।१५७

पुत्रान्द्वादश यानाह नृणां स्वायंभुवो मनुः ।
तेषां षड्बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः ।१५८

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट् ।।१५९

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ।
स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः ।।१६०

याद्दशं फलमाप्नोति कुप्लवै संतरञ्जलम् ।
ताद्दशं फलमाप्नोति कुपुत्रः संतरस्तमः ॥१६१

यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ ।
यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद्गृह्णीत नेतरः ॥१६२

शूद्र अन्य वर्ण की कन्या से विवाह का अधिकारी नहीं होता इसलिए उसकी पत्नी समान जाति की ही हो सकती है, इसलिए उसके सौ पुत्र होने पर भी पिता के धन में सबका समान भाग होता है । मनु ने बारह प्रकार के पुत्र बताये हैं, उनमें छः सगोत्रीय बान्धव और छः अगोत्रीय बन्धु होते हैं, सगोत्रीय को पितर कर्म करने और सगोत्र वाले का धन प्राप्त करने का अधिकार होता है, किन्तु गोत्र से बाहर होने वालों को वैसा अधिकार नहीं होता । औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढ़ोत्पन्न और अपविद्ध यह छः प्रकार के पुत्र धन भाग पाने वाले बान्धव होते हैं । कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनभव स्वयंदत्त और शौद्र यह छः प्रकार के पुत्र धन भाग न पाने वाले बान्धव मात्र होते हैं । जीर्ण नाव के द्वारा पार जाने वाले को जो कष्ट उठाना होता है, वैसा ही फल पितर को भवसागर से पार होने में कुपुत्रों के द्वारा मिलता है । यदि औरस और क्षेत्रज दोनों प्रकार के पुत्र एक धन के ही अधिकारी होते हों तो वह धन जिसके पिता का है, वही लेगा दूसरा अर्थात् क्षेत्रज नहीं लेगा ॥१५९-१६२॥

एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः ।
शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम् ॥१६३

षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात् ।
औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेव वा ॥१६४

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ ।
दशापरे तु क्रमशो गोत्ररिक्थांशभागिनः ॥१६५

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम् ।
समौरसं विजानीयात्पुत्र प्रथमक्लिपतम् ।।१६६

यस्तल्पजःप्रमीतस्य क्लीवस्थ व्याधितस्य वा ।
स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ।।१६७

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिःपुत्रमापदि ।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुता ।।१६८

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् ।

एक औरस पुत्र ही पिता के धन का अधिकारी है, शेष पुत्र तो निर्दयता के दोष को दूर करने के लिए कुछ जीविका देने के पात्र हैं। पिता का धन बाँटते समय और पुत्र क्षेत्रज को पाँचवाँ या छटा अंश दे। औरस और क्षेत्रज दोनों ही पिता के धन के उत्तराधिकारी हैं, दत्तक आदि अन्य दस प्रकार के पुत्र क्रम से अंशाधिकारी होते हैं। विधिवत विवाहिता पत्नी में पिता द्वारा जो पुत्र उत्पन्न हो वह सब पुत्रों में प्रमुख औरस समझा जाता है। मम, रोगी अथवा क्लीव की पत्नी में विधिवत नियाग करके जो पत्र उत्पन्न किया जाय, उसे ऋणिगण ने क्षेत्रज बताया है। आपत्काल में माता-पिता जिस सजातीय पुत्र को प्रसन्नता पूर्वक जय द्वारा उत्सर्ग करके दे देते हैं, उसे दत्त पुत्र समझो ।-१६३-१६८।।

पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः ।।१६९

उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः ।
स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पज ।।१७०

मायापितृभ्यानुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा ।
यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते ।।१७१

पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः ।
तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यसमुद्भवम् ॥१७२

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञतापि वा सती ।
वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते ॥१७३

क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मात पित्रोर्यमन्तिकात् ।
स क्रीतकः सतस्तस्य सदृशोऽसदृशौऽपि वा ॥१७४

जिस सजातीय, गुण-दोष विचक्षण, पुत्र गुण से सम्पन्न बालक को पुत्र रूप से ले लिया जाय वह कृत्रिम पुत्र कहा जाता है । जिसके गृह में पुत्र उत्पन्न हो, किन्तु उसका उत्पत्तिकर्त्ता कौन है यह अज्ञात हो, वह पुत्र जिसकी पत्नी में उत्पन्न हुआ है उसी का गूढ़ोत्पन्न संज्ञक पुत्र होगा । माता-पिता अथवा उनमें से एक के द्वारा भी जो पुत्र त्याग दिया जाय, उसे लेकर पालने वाले का वह पुत्र अपविद्ध कहा जाता है । पिताके घरमें कुँवारी कन्या द्वारा छिपकर उत्पन्न किया कानीन संज्ञक पुत्र उस कन्या से विवाह करने वाले पति का होता है। कन्या का गर्भवती होना जानकर अथवा न जानकर भी जो उससे विवाह करता है, उसका वह पुत्र सहोढ़ कहलाता है । जो पुत्र उसके माता-पिता से सन्तानार्थ क्रय किया जाता है वह चाहे सजातीय हो या विजातीय क्रीत संज्ञक पुत्र कहा जाता है ॥१६६-१७४॥

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥१७५

सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति १७६

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् ।
आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु स स्मृतः ॥१७७

यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् ।
स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः ॥१७८

दास्यांवादासदास्यांवा यःशूद्रस्य सुतो भवेत् ।
सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः ॥१७९

क्षेत्रजादीन्सुतनितानेकादश यथोदितान् ।
पुत्रप्रतिनिधिनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ॥१८०

जो स्त्री पति द्वारा परित्यक्त या विधवा होने पर स्वेच्छा-पूर्वक अन्य की गृहणी बन कर उससे पुत्र उत्पन्न करे, तो वह उस जन्मदाता का पौनर्भव पुत्र होता है। अक्षतयोनि विधवा अन्य पुरुष के समीप जाकर उससे विवाह कर ले या पति द्वारा परित्यक्ता होने पर पुनः उसी पति के पास लौट आवे तो पति उससे पुनः विवाह कर ले, इस प्रकार की स्त्री पुनर्भू कही जाती है। माता-पिता-विहीन या मात-पिता से परित्यक्त पुत्र स्वयं को ही किसी को समर्पित कर दे तो उसका वह स्वयंदत्त पुत्र होगा। ब्राह्मण द्वारा शूद्रा में काम वश उत्पन्न किया पुत्र पार-शव कहा जाता है, क्योंकि वह जीवित रहता हुआ भी शव के समान ही है। दासी अथवा दास की दासी में जो शूद्र का पुत्र जन्में वह पिता की आज्ञा से धन का समान भाग ले सकता है। क्षत्रजादि ग्यारह प्रकार के पुत्रों को पुत्र का प्रतिनिधि कहा जाने से यही तात्पर्य है कि पितरों की पिण्डदानादि की क्रिया लुप्त न हो पावे ॥१७५-१८०॥

ए एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः ।
यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु ॥१८१

भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् ।
सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥१८२

सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् ।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ।।१८३

श्रेयसः श्रेयसोऽलाभे पापीयान्रिक्थमर्हति ।
बहवश्चेत्तु सदृशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ।।१८४

न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः ।
पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव च ।।१८५

त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते ।
चतुर्थः संप्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते ।।१८६

औरस पुत्र के प्रसंग में अन्य के बीज से उत्पन्न जो पुत्र कहे गये हैं वे जिसके बीज से जन्मे हैं, उसी के पुत्र होते हैं. अन्य के नहीं। एक ही माता-पिता से उत्पन्न अनेक भ्राताओं में यदि एक के ही पुत्र हो तो वे सब भाई उस एक पुत्र से ही पुत्रवान हो जाते हैं, यह मनु का कथन है। सब सपत्नियों में से एक पत्नी के ही पुत्र हो तो मनु के कथनानुसार सभी पत्नियाँ पुत्रवती होती हैं। श्रेष्ठ पुत्र न हो तो अधमों में जो श्रेष्ठ हो वही पितृधन का अधिकारी होगा, यदि सभी समान हैं तो धन के समान अधिकारी होंगे। पिता के धन के पुत्र ही अधिकारी होते हैं, उसके सगे भाई, पिता या चाचा आदि नहीं होते, किन्तु पुत्रहीन होने की स्थिति में उसके धन को पिता या भाई ले सकते हैं। पिता बाबा और पड़बाबा को पिण्ड देने वाला चौथा ही होता है, पाँचवां नहीं होता ।।१८१-१८६।।

अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत् ।
अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ।।१८७

सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः ।
त्रैविद्याःशुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते ।।१८८

अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ।
इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः ।।१८९
संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् ।
तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तत्तस्मिन्प्रतिपादयेत् ।।१९०
द्वौ तु यौ विवदेयातांद्वाभ्यांजातौ स्त्रिया धने ।
तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्तत्स गृह्णीतः नेतर ।।१९१
जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः ।
भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ।।१९२

सपिण्ड में भी जो जितना निकट हो, उतना ही उसका अधिक अधिकार होता है, यदि कोई सपिण्ड अधिकारी न हो तो सकुल्य, आचार्य या शिष्य क्रमशः अधिकारी माने गये हैं। यह भो न हो तो शुद्ध हृदय जितेन्द्रिय त्रिवेदविज्ञ ब्राह्मण धन भागी होगा, इससे मृतक के श्राद्धादि कर्म का लोप नही होगा। शास्त्र-मर्यादा के अनुसार पुत्रहीन ब्राह्मण का धन राजा न ले. अन्य वर्णों का धन यदि कोई अधिकारी न होतों राजा ग्रहण कर ले। पतिहीना और सन्तानहीना विधवा अपने सगोत्र से विधिवत पुत्र लेकर अपने पति के धन का अधिकारी उसे बिना दे। एक ही माता में दो पिताओं के द्वारा उत्पन्न दो पुत्रों में मृतधन विषयक विवाद उपस्थित हो जाय तो जिसके पिता का धन हो, वही उसे ले, दूसरा न ले। माता का मृत्यु होने पर सब सगे भाई और अविवाहिता बहिन माता के धन को समान रूप से बाँट लें ।।१८७-१९२।।

यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः ।
मातामह्या धनात्किंचित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ।।१९३

अध्यग्न्नध्यावाहनिकं तत्तं च प्रीतिकर्मणि ।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधंस्त्रीधनं स्मृतम् ।।१९४

अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ।
पत्यौ जीवति वृत्तायाःप्रजायास्तद्धनं भवेत् ।।१९५

ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्धसु ।
अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ।।१९६

यत्वस्याः स्याद्धनं तत्तं विवाहेष्वासुरादिषु ।
अप्रजायामतीतायां मातापित्रोस्तदिष्यते ।।१९७

स्त्रियां तु तद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथंचन ।
ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदत्यस्य वा भवेत् ।।१९८

विवाहिता बहन की कुँवारी पुत्रियाँ हों तो उन्हें भी नानी के धन में से कुछ उनके सन्तोष के लिए देना चाहिए। अध्याग्नि अध्यावाहनिक, प्रीतिदित्त भ्रातृदत्त मातृदत्त और पितृदत्त यह छः प्रकार स्त्रीधन के होते हैं। पति ने प्रसन्न होकर अपनी पत्नी को जो धन दिया हो, उसे पति के जीवित रहते पत्नी मर जाय तो उसकी सन्तान को दे दे। ब्राह्म दैव, आर्ष, गान्धर्व और प्राजापत्य विधि द्वारा विवाहिता पत्नी का धन यदि वह सन्तान-होते ही मर जाय तो पति का होता है। आसुरादि विधि से विवाहिता का धन, यदि संतान के बिना हो मर जाय तो, उसके माता-पिता का होता है। ब्राह्मण की अनेक वर्ण की स्त्रियों के धन यदि उनके पिता द्वारा दिये हों तो उनके अपत्यहीना मरने पर ब्राह्मणी पत्नी की कन्या या सन्तित को मिलेगा ।१९३-१९८।

न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात् ।
स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ।।१९९

पत्यौ जीवति यःस्त्रीभिरलङ्कारो धृतो भवेत् ।
न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥२००

अनंशौक्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा ।
उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः ॥२०१

सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा ।
ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यदद्भवत् ॥२०२

यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथंचन ।
तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति ॥२०३

यत्किंचित्परि प्रते धन ज्येष्ठोऽधिगच्छति ।
भोगो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालितः ॥२०४

कुटुम्बियों के सामान्य धन में से स्त्रियाँ धन का संग्रह न करे और अपने द्रव्य से भी पति की आज्ञा के बिना कुछ संचय न करे। पति के जीवन काल में उसकी अनुमति से स्त्रियों ने जो आभूषण पहिने हों, उन्हें पति के मरने पर दायद नहीं बाँट सकते यदि बाँटें तो वे पतित हो जाते हैं। क्लीव, पतित, जन्मांध, जन्म से बहरे, उन्मत्त, जड़, मूक पंगु आदि पिता के धन का भाग नहीं पाते। इन सब असमर्थों को उनके जीवन पर्यन्त यथाशक्ति भोजन वस्त्र देना चाहिए, न दे तो पातकी होता है। यदि उक्त असमर्थों को विवाह की इच्छा हो और उनकी स्त्री में क्षेत्रज पुत्र हो तो वह धन का भागी,हो सकेगा। पिता के मरणोपरान्त सब भाइयों के साथ घर में रहता हुआ ज्येष्ठ भ्राता यदि कुछ धन कमावे तो विद्याध्ययन करने वाले लघुभ्राताओं को ही उसका अंश पाने का अधिकार है, अन्य भाइयों को नहीं है ॥१९९-२०४॥

अविद्यानां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत् ।
समस्यत्र विभागः स्यादपित्र्य इति धारणा ॥२०५
विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धन भवेत्
मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च ॥२०६
भ्रातॄणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा ।
स निर्भाज्यः स्वकादंशात्किंचिद्दत्त्वोपजीवनम् ॥२०७
अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जितम् ।
स्वयमीहितलब्धं तन्नाकामो दातुमर्हति ॥२०८
पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात् ।
न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्धमकामः स्वयमर्जितम् ॥२०९
विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्पुनर्यदि ।
समस्तत्र विभागः स्याज्ज्यैष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥२१०

अपढ़ भाइयों द्वारा कृषि या वाणिज्य से धन उपार्जन किया जाय तो सब भाई उसमें समान अधिकारी होंगे किन्तु पितृधन में नहीं होंगे। विद्या, मैत्री, विवाह और मधुपर्क आदि में जिसे जो धन प्राप्त हो, वह उसी का होगा। भाइयो में जो धनोपार्जन में स्वय समथ होने के कारण पितृधन का भाग न लेना चाहें, उसे भी उसके अश का कुछ धन अवश्य देकर पृथक कर दे, जिससे कि आगे चल कर कोई विवाह उपस्थित न हो जाय। पिता के धन को अक्षुण्ण रखता हुआ अपने उद्याग द्वारा उपार्जित धन इच्छा न हो तो किसी भाई को न दे। अप्राप्त पैतृक धन का पिता अपने उद्योग से किसी प्रकार प्राप्त करले तो उसका वह स्वयं उपार्जित धन उसकी इच्छा के बिना कोई पुत्र बाँट कर नहीं ले सकता। पृथक होने के पश्चात सभी भाई एक साथ रहने लगे

और पुनः पृथक् होना चाहें तो सम्पूर्ण सम्पत्ति का समान रूप से पुनः बँटवारा कर लें, इसमें बड़ा भाई ज्येष्ठांश नहीं लेगा ।।२०५-२१०।।

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः ।
म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते ।।२११
सोदर्या विभजेरंस्तं समेत्य सहिताः समम् ।
भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः ।।२१२
योज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातृन्यवीयसः ।
सोऽज्येष्ठःस्यादभागश्चनियन्तव्यश्च राजभिः।।२१३
सर्व एव विकर्मस्था नार्हन्ति भ्रातरो धनम् ।
न चादत्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठःकुर्वीत्यौतकम् ।।२१४
भ्रातृणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह ।
न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथंचन ।।२१५
उर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम् ।
संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत् स तैः सहः ।।२१६

यदि ज्येष्ठ या कनिष्ठ भाई धन का विभाग होते समय कहीं चला जाय या मार जाय तो भी उसका भाग लुप्त नहीं हो सकता सब सहोदर भाई बहिन उस अंश को समान भाग में परस्पर बांट लें छोटे भाइयों को लोभवश ठगने वाला बड़ा भाई ज्येष्ठांश और सम्मान प्राप्त करने के योग्य नही है वरन् वह राजदण्ड का भागी है जुआ खेलने आदि कुकर्मों में आसक्त भाई धन का भागी नहीं होता बड़ा भाई छोटे भाइयों को धन भाग न देकर उसे स्वयं नहीं हड़प कर सकता । यदि सब भाई साझे में रहकर धन का संचय करें तो पिता उसमें से किसी एक को कम या

किसी को अधिक नहीं दे सकता। यदि पुत्रों को इच्छा से पिता अपना धन उनमें बाँट दे और फिर अन्य पुत्र उत्पन्न हो जाय तो पिता के मरने पर वह पिता का भाग ही प्राप्त करेगा, जो पुत्र बँट जाने के पश्चात् पुनः पिता के पास रहें वे पिता के मरने पर ईसी बाद में उत्पन्न पुत्र को साथ लेकर धन को समान अंशों में बांट लें ॥२१८-२१६॥

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात्।
मातर्यंहि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ॥२१७
ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि।
पश्चाद्दृश्येत यत्किंचित्तत्सर्वं समतां नयेत् ॥२१८
वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः।
योगक्षेमं वचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते ॥२१९
अयमुक्तो विभागो वःपुत्राणाँ च क्रियाविधिः।
क्रमश क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधतः ॥२२०
द्यूत समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत्।
राजान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥२२१
प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ।
तयोर्नित्यं प्रयोघाते नृपतियंत्नवान्भवेत ॥२२२

सन्तानहीन पुत्र का भाग उसको माता और माता के अभाव में दादी को मिलेगा। सब सम्पत्ति और ऋण विधिवत बँटने के पश्चात् पिता का धन या ऋण और दिखाई दे तो उसे भी समान रूप मे बाँट लें। वस्त्र, वाहन, आभूषण पकवान, जल, स्त्रियां, पुरोहित और आवागमन के मार्ग नहीं बांटे जा सकते यह क्षेत्रज आदि पुत्रों की क्रियाविधि और विभोजन का विषय कहा गया

अब जुए के विषय में कहेंगे ; राजा अपने राष्ट्र में द्यूत और समाह्वय पर रोक लगा दे क्योंकि यह दोनों ही राष्ट्र का अन्त कर देते है। यह दोनों ही कर्म प्रत्यक्ष रूप में चोरी जैसे ही है, इसलिए इन्हें रोकने में राजा सावधानी से कार्य ले ॥२१७-२२२॥

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ।
प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥२२३

द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत्त वा ।
तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥२२४

कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्पाषण्डस्थांश्चमानवान् ।
विकर्मस्थाञ्छौण्डिकांश्चक्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात् ॥२२५

एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः ।
विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥२२६

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ।
तस्माद्द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥२२७

प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः ।
तस्य दण्डविकल्पःस्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥२२८

पासे आदि जड़ वस्तु से खेले जाने वाले को जुआ कहते है ओर भेड़ तीतर, बटेर आदि पर बाजीं के द्वारा हार-जीत करना समाह्वय कहा गया है इन दो कर्मों को करने या कराने वाले को हाथ काटना आदि कठोर दण्ड दे तथा जो शूद्र ब्राह्मणों का चिन्ह धारण करे उसे भी शारीरिक कठोर दण्ड दिया जाय। जुआरी कुशीलव, क्रूर, पाषण्डी, कुकर्मी और मदिरा बनाने वाले को राजा अपने राज्य से निकलवा दे। यह गुप्तचोर राष्ट्र में रह कर नित्य लछ प्रपंच करते सज्जनों को दुःख देते है। द्यूत पूर्व

कल्प में अत्यन्त विरोध कार्य युक्त सिद्ध हो चुका है, इसलिए मनोरंजन के लिए भी कभी जुआ न खेले। जो प्रकट या छिपे रूप से जुआ खेले उसे राजा यथेष्ठ दण्ड दे ॥२२३-२२८॥

क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन् ।
आनृण्यं कर्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैः शनैः ॥२२९
स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् ।
शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् ॥२३०
ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् ।
धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः ॥२३१
कूटशासनकर्तृंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ।
स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्द्विट्सेविनस्तथा ॥२३२
तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन यद्भवेत् ।
कृतं तद्धर्मतो विद्यान्न तद्भूयो निवर्तयेत् ॥२३३
अमात्याःप्राड्विवाको वा यत्कुर्युःकार्यमन्यथा ।
तत्स्वयं नृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत् ॥२३४

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में से कोई दण्ड देने में समर्थ न हो तो दण्ड के बदले में राजा इनसे से उचित कार्य कराये और ब्राह्मण से कार्य न लेकर धीरे-धीरे दण्ड वसूल करे। स्त्री, बालक, उन्मत्त वृद्ध दरिद्र एवं रोगियों को बेंत, चाबुक या रस्सी से दण्डित करे घूस लेकर जो राजकर्मचारी कृत कार्यो को बिगाड़ें राजा उनका सर्वस्व छीन ले। छल पूर्वक मिथ्या शासन करने वाले प्रजाओं को दूषित करने वालों स्त्री, बालक और ब्राह्मण के हिंसकों तथा शत्रु की सेवा करने वालों का राजा वध करा दे। जिस ऋणादि व्यवहार में जो शास्त्रों सम्मत निर्णय दिया गया हो या

जो कुछ कार्यवाही की जा चुकी हो स्वीकार कर ने के पश्चात् उसमें परिवतन न करे। अमात्य या न्यायाधीश जिस कार्य को ठीक प्रकार से न करें उन पर एक सहस्र पण दण्ड देकर राजा स्वयं सम्पन्न करे ॥२२६-२३४॥

ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
एते सर्वे पृथग्ज्ञेया महापातकिनो नराः ॥२३५
चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्वताम् ।
शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥२३६
गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ।
स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥२३७
असंभोज्या ह्यसयाज्या असंपाठ्याविवाहिनः ।
चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृता ॥२३८
ज्ञातिसम्बन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः ।
निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥२३९
प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्ववर्णा यथोदितम् ।
नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ॥२४०

ब्रह्मघाती, सुरापी, चोर और गुरुतल्पगामी को महापापी समझें। यह चारों यदि प्रायश्चित न करें तो राजा उन्हें धर्म संगत आर्थिक और दैहिक दण्ड दे। गुरुतल्पगामी के ललाट पर तप्त लौह के भग का सुरा पीने वाले के मद्यपत्र का, चोर के श्वान के पजे का तथा ब्रह्मघाती के ललाट पर शिररहित पुरुष का चिन्ह वना दे। उन्हें भोजन न दे पुरोहित उनकी पुरोहित न करें, गुरु उन्हें न पढ़ावे, उनके साथ कन्यादान आदि का सम्बन्ध स्थापित न करे जिससे कि वे सब धर्मों से बहिष्कृत

होकर सम्पूर्ण विश्व में मारे-मारे विचरें। इन चिन्हित महापापियों को सभी बान्धवादि त्याग दें, इन पर दया प्रदर्शित न करें और न नमस्कार आदि ही करें। जो शास्त्र विहित प्रायश्चित कर चुका हो वह चाहे जिस वर्ण का हो उसके ललाट को न दागे वरन् उत्तम साहस दण्ड करे ॥२३९-२४०॥

आगः सु ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः।
विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥२४१
इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्यकामतः।
सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् ॥२४२
नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम्।
आददानस्तु तल्लाभात्तेन दोषण लिप्यते ॥२४३
अप्सु प्रवेश्य तं दण्डं वरुणायोपपादयेत्।
श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥२४४
ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः।
ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारग ॥२४५
यत्रु वर्जयते राजा पापकृभ्दयो धनागमम्।
तत्र कालेन जायन्ते मानव दीर्घजीजीविनः ॥२४६
निष्पद्यन्तेच सस्यानि यथोप्तानि विशां पृथक्।
बालाश्च न प्रमोयन्ते विकृतं न च जायते ॥२४७

उक्त अपराधों में ब्राह्मण को मध्यम साहस दण्ड करे या उसे उसकी सम्पत्ति के सहित देश से निकाल दे। ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य वण वाले व्यक्ति यदि अनिच्छा पूर्वक उक्त पाप करें तो उसका सर्वस्व हरण करले और स्वेच्छा से कर तो दश से निकाल दे। धार्मिक नरेश महापापियों के धन को ग्रहण न

करे: क्योंकि लोभवश धन लेता है वह पाप में लिप्त हो जाता हैं। दण्ड जल में फेंककर वरुण को या वेदविज्ञ विप्र को अर्पण कर दे। क्योंकि महापातकियों के धन का स्वामी वरुण राजाओं का भी स्वामी है और वेदविज्ञ ब्राह्मण सम्पूर्ण विश्व का अधिपति हैं। जहां का भूपाल महापापियों का धन ग्रहण नहीं करता, वहाँ मनुष्य यथा समय जन्म लेते दीर्घआयुष्य होते है। वैश्यों द्वारा बोये गये धान्य पूर्ण रूप से उपजते, बाल मृत्यु नहीं होती और कोई जीव अंगहीन नहीं होता ॥२४३-२४७॥

ब्राह्मणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम्।
हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः ॥२४८

यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे।
अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः ॥२४९

उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवदमानयोः।
अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥२५०

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः।
देशानलब्धाँल्लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत् ॥२५१

सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः।
कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥२५२

जो शूद्र जान बूझकर किसी ब्राह्मण को सतावे राजा प्राण-नाशक उपायों के द्वारा कठोर दण्ड दे। राजा के लिए न मारने योग्य को मारने में जो पाप लगता हैं वहीं मारने योग्य को छोड़ देने में लगता है, इसलिए अपराधियों को उचित दण्ड देने से ही उसके धर्म की रक्षा हो सकती हैं। यह परस्पर विवाद करने वालों के व्यवहार के अठारह विभागों को विस्तृत वर्णन किया गया। इस प्रकार धर्म संगत राजकार्य करने वाला राजा

न पाये हुए देशों के पाने की आकांक्षा और पाये हुए देश की ठीक प्रकार से रक्षा करें। अन्न जल से परिपूर्ण देश का शास्त्र विधि से पालन करने वाला राजा दुर्ग बनाकर चोर आदि कंटकों को हटाने का विशेष प्रयत्न करता रहे ॥२४०-२५२॥

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ।
नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ॥२५३
अशासंस्तस्करान्यस्तुबलिं गृह्णाति पार्थिवः ।
तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥२५४
निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ।
तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः ॥२५५
द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान् ।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ॥२५६
प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ।
प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ॥२५७

प्रजापालन में तत्पर राजा श्रेष्ठ आचरण वालों की रक्षा और दुष्टों का उचित निग्रह करने से स्वर्ग में जाते है। चोर-दस्युओं का निग्रह न करने और प्रजा से कर वसूल करने वाले राजा से सम्पूर्ण राष्ट्र द्रोह करता है और उस पाप से उसे स्वर्ग भी नही मिलता। जिस राजा के भुजबल का आश्रित राष्ट्र चोर आदि के उपद्रवों से भयभीत नहीं रहता उसका राष्ट्र जल से सिंचित वृक्ष के समान सदैव परिपूर्ण और वृद्धिशील रहता है। परधनहारी चोर प्रकट और गुप्त दो प्रकार के होते है गुप्तचर रूपी नेत्रों वाला राजा उन दोनों पर दृष्टि रखे। नकली वस्तु बेचकर ठगने वाले प्रत्यक्ष चोर और छिपकर लूटने वाले गुप्त चोर होते है ॥२५३-२५७॥

उत्कोचकाश्चोपधिका वञ्चकाः कितवास्तथा ।
मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्च क्षणिकैः सह ॥२५८
असम्यक्कारिश्चैव महामात्रारिश्चकित्सकाः ।
शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः ॥२५९
एवमावीन्विजानीयात्प्रकःशांल्लोककण्टकान् ।
निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यं लिङ्गिनः ॥२६०
तान्विदित्वा सुचारितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः ।
चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत् ॥२६१
तेषां द्वोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्वतः ।
कर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः ॥२६२

रिश्वती डर दिखाकर लूटने वाले, ठग, जुआरी, पराये मंगल की कामना से जीने वाले पाप छिपाकर साधुवेश में जने वाले, ज्योतिषादि का फल बनाकर जीविका करने वाले, हाथियों को शिक्षा देकर निर्वाह करने वाले चिकित्सक, चित्रकार, धूत वेश्याएँ तथा ऐसे ही अन्यान्य कंटकों को राजा प्रकट चोर समझे तथा विभिन्न छद्मवंशो में रहकर श्रेष्ठ पुरुष बनकर धन बटोरने वालों को भी चोर माने : ऐसे कर्म करने वालों का पता चरित्रवान गुप्तचरों के द्वारा लगावे और उन्हें हर प्रकार से अपने वश में करे । उन प्रकट और गुप्त चोरों में जिसका जैसा कर्म हो उसकी खुली घोषणा करके अपराध का यथार्थ विवेचन करता हुआ राजा उचित दण्ड दे ॥२५८-२६२॥

नहि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापबिनिग्रहः ।
स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥२६३
संभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ।
चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च ॥२६४

जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च ।
शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च ॥२६५
एवंविधान्नृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।
तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत् ॥२६६
तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः ।
विद्यादुत्सादयच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः २६७
भक्ष्यभोज्योपदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः ।
शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥२६८

क्योंकि दण्ड दिये बिना अपने रूप को छिपा कर भ्रमण करने वाले उन पापबुद्धि चोरों को बुरे आचरण से रोकना कठिन है। सभास्थल, प्याऊ मिष्ठान्न की दूकान, वेश्यागृह, मद्यविक्रय स्थान, अनाज विक्रय केन्द्र, चौराहा, व्यापारियों के आश्रय रूप छायादार वृक्ष, दस व्यक्तियों के बैठने का स्थान, जीर्ण उद्यान वनः चित्रशाला, निर्जन घर और वन उपवन आदि स्थानों का चोरों से सुरक्षित रखने के लिए घूमने वाले गुप्तचरों को नियुक्त करे। चोर के सहायक, अनुगामी चौर्यकाप में दक्ष और पूर्वकाल के चोर, इनकी सहायता से चोरों का पता लगा कर राजा उन्हें नष्ट करे। उन चोरों को गुप्तचर श्रेष्ठ पदार्थ खिलाने, पिलाने, ब्राह्मणों के दर्शन कराने या नकली कुश्ती आदि दिखाने के छल से राजपुरुषों के पास ले जाकर पकड़वा दे ॥२६३-२६८॥

ये तत्र न यसर्पेसूर्लप्रणिहिताश्च ये ।
तान्प्रसह्य नृपो हत्यात्समित्रज्ञातिबान्धवान् ॥२६९
न होढेन विना चौरं घातयेद्धार्मिको नृपः ।
सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् ॥२७०

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः ।

भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत् ॥२७१

राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव चोदितान् ।

अभ्याघातेषु मध्यस्थाञ्छिष्याच्चौरानिवद्रुतम् ॥२७२

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः ।

दण्डेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥२७३

ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिदर्शने ।

शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याःसपरिच्छदाः ॥२७४

जो चोर पकड़े जाने के भय से सो गुप्तचरी के साथ न आयें तथा उनसे सावधान हो गये हों उनकी सही पता गुप्तचरों से लेकर राजा उन्हें सहायकों कुटुम्बियों और बान्धवों के साथ बलपूर्वक पकड़वा कर कारगार में डाले दे या मरवा दे। धार्मिक राजा चोरी का माल और उपकरण आदि प्राप्त किये बिना केवल सन्देह में ही चोर को न मार दे, वरन् चोरी का प्रमाण मिलने पर ही उसके हाथ कटवा दे या शूली पर चढ़वा दे। ग्राम में जो व्यक्ति चोर को भोजन, बर्तन या स्थान दे, उन सब को भी बाँधकर ताड़न करे या अन्य उपयुक्त दण्ड दे। राज्य में रक्षा के लिए नियुक्त या सींमा की रक्षा के रक्षक राज पुरुष यदि चोरी कराने में सम्मिलित हों तो राजा उन्हें भी दण्डित करे। गांव में उपद्रव, वाध का टूटना मार्ग में चोर का दिखाई देना आदि के कारण जो लोग यथाशक्ति न दौड़ें तो राजा उन्हें सपरिच्छद देश से निर्वासित करे दे ।।२६९-२७४।।

राज्ञः कोषापहर्तॄंश्च प्रतिकुलेषु च स्थितान् ।

घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥२७५

संधिं छित्वालुये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः।
तेषां छित्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णेशूले निवेशयेत् ॥२७६
अंगुलीग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे।
द्वियीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥२७७
अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान्।
संनिधातृंश्च मोषस्य हन्याच्चोरमिवेश्वरः ॥२७८
तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा।
यद्वापि प्रतिसंस्कुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम् ॥२७९
कोष्ठागारायुधागारदेवतगारवेदकान्।
हस्त्यश्वरथहंतृंश्च हन्यादेवाविचारयम् ॥२८०

राजा का कोश हरण करने वाले, राजा के विरुद्ध आचरण करने वाले और शत्रुओ को भड़काने वाले को राजा अनेक प्रकार के दण्ड दे। जो रात्रि में सेंध लगाकर चोरी करे उनके हाथ काट कर तीक्ष्ण शूली पर चढ़वा दे। बस्त्र में बंधे स्वर्ण या द्रव्य को गाँठ खोलकर उड़ा लेने वाले चोर को प्रथम बार के अपराध में अँगुलियां कटवा ले तथा दूसरी बार के अपराध में हाथ पैर कटवाये किन्तु तीसरी बार अपराध करे तो मृत्यु दंड के योग्य होता हैं। चोर को अग्नि भोजन, शस्त्र और ठहरने का स्थान देने वाले या चोरी का माल रखने वाले को चोर के समान दण्ड दे। तड़ाग आदि को तोड़ने वाले को राजा जल में डुबाकर या अन्य प्रकार के कठोर दण्ड से मार डाले। यदि वह उसे पुनः ठीक कर दे तो उसे उत्तम साहस दण्ड दे। कोष्ठागार शास्त्रागार और देवागार को नष्ट करने वाले या हाथी, अश्व और रथ का हरण करने वाले को राजा वध का दंड दे ॥२७.-२८०॥

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् ।
आगमं वाप्यपां भिद्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम् ।।२८१
समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि ।
स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत् ।।२८२
आपद्गतोऽथवा वृद्धा गर्भिणी बाल एव वा ।
परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ।।२८३
चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्यां प्रचरतां दमः ।
अमानुषेषु प्रथमो मानेषेषु तु मध्यमः ।।२८४
संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानं च भेदकः ।
प्रतिकुर्याच्चि तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ।।२८५

प्रजाओं के हित के लिए खुदवाये हुए तडाग का जल दूषित करने वाले या तड़ाग में जल आने का मार्ग बन्द करने वाल को राजा प्रथम साहस दण्ड दे निरापद अवस्था में राजामार्ग में कोई अपवित्र वस्तु डालने पर दो कार्षापण दण्ड दे तथा अपवित्र वस्तु को मार्ग से हटवा दे। रोगी, आतुर, वृद्ध. गर्भिणी और बालक यदि मार्ग में मल-मूत्र विसर्जन करदे तो वे दण्ड भागी नहीं होते, उनकी भर्त्सना करते हुए मल को उनसे उठवा दे। चिकित्सक का मिथ्या वेष बनाकर जो गवादि पशुओं की ठीक चिकित्सा न करे तो प्रथम साहस और मनुष्यों की ठीक चिकित्सा न करे तो मध्यम साहस दण्ड दे। जल पर रखे हुए जिस तख्ते या पत्थर पर से लोगों का आवागमन हो ध्वज, पूज स्तम्भ और मूर्तियां इन्हें जो कोई तोड़े उसे पाँच सौ पण का दण्ड दे और उसी से टूटीं हुई ठीक करावे ।।२८१-२८५।।

अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा ।
मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ।।२८६

समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा ।
समाप्नुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यमेव वा ॥२८७
बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत् ।
दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पापकारिण ॥२८८
प्राकारास्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् ।
द्वाराणां चैव भङ्क्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥२८९

शुद्ध वस्तु को कुछ मिलाकर अशुद्ध करने न टूटने योग्य रत्नों को तोड़ने तथा मोती आदि में अयुक्त स्थान पर छेद करने पर प्रथम साहस तथा समान मूल्य की वस्तु किसी को कम किसी को अधिक दने या एक को श्रेष्ठ और दूसरे को निकृष्ट वस्तु देन पर मध्यम साहस दण्ड दे । कारवास आदि को राजा मार्ग के किनार पर बनवाये जिससे उनमें बन्द हुए बन्दियों को दुखःरूप दण्ड भोगने को सब लोग देख सकें । दुर्ग की दीवार तोड़न खाई भरन और फाटक नष्ट करने वाले को राजा शीघ्र ही–देश से निकाल दे ॥२८६-२८९॥

अभिचारेसु पर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दम, ।
मूलकर्मणि चानाप्तेः कृत्यासु विविधासु च ॥२९०
अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टं तथैव च ।
मर्यादाभिदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम् ॥२९१
सर्वकण्टकपाष्टिं हेमकारं तु पार्थिवः ।
प्रवर्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैं ॥२९१
सीताद्रव्यापहरणे शास्त्राणामोषधस्य च ।
कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥२९३

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा ।
सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥२९४

. अभिचार कर्म या टोने आदि करने पर इच्छित सिद्धि न मिले तो राजा उस कर्म के करने वाले पर सौ पण दंड करे। जो अबीज को श्रेष्ठ बीज कहकर बेचे या ग्राम अथवा नगर की सीमा को तोड़े उसे राजा अंगभंग द्वारा विकृत कर दे। सब प्रकार के कटकों में पापिष्ठ कंटक स्वर्णकार यदि अन्याय में प्रवृत्त हो तो राजा उसके सम्पूर्ण अंगो को छुरे से छिन्न-भिन्न कर डाले। हलादि कृषि उपकरण, शस्त्र और औषधि चुराने के अपराध में समयोचित दंड देना चाहिए। राजा, अमात्य, नगर देश, कोश सेना और मित्र यह सातों ही राज्य के अंग होते हैं इसीलिए राज्य सप्तांग कहा गया हैं॥२९०-२९४॥

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्थासां यथाक्रमम् ।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्व्यसनं महत् ॥२९५
सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्त त्रिदण्डवत् ।
अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किंचिदतिरिच्यते ॥२९६
तेषु तेषु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यते ।
यन तत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिञ्छ्रेष्ठमुच्यते ॥२९७
चारेणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्मणाम् ।
स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः ॥२९८
पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च ।
आरभेत ततः कार्यं संचिन्त्य गुरुलाघवम् ॥२९९
आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्त पुनः पुनः ।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥३००

इन सातों में जो प्रथम है वह आपत्काल में अपने बाद के अङ्ग से अधिक विपत्ति का कारण हो सकता है। जैसे यती के तीनों दण्ड परस्पर मिले होते हैं, वैसे यह सातों अङ्ग परस्पर में उपकारी होने के कारण समान हैं इनमें छोटा या बड़ा कोई नहीं है। जिस अङ्ग का जो कार्य है, उसी में उस अङ्ग की विशेषता हो सकती है, क्योंकि जो अंग अपने काय को सिद्ध करले, वह उस कार्य में उत्कृष्ट होता है। छद्मवेशी गुप्तचरों के द्वारा, सैन्योत्साह और करने योग कर्मों के अनुष्ठान से राजा स्वशक्ति और शत्रु की शक्ति का पता लगता रहे। अपने और शत्रु के राष्ट्र से काम-क्रोधजन्य उत्पीडन और दुःखी के गौरव या लाघव पर विचार करके ही राजा सन्धिविग्रह का प्रारम्भ करे। थकित होने पर भी वार-बार कार्यारम्भ करे, क्योंकि जो कार्यारम्भ करने वाला है, उसका सेवन लक्ष्मीजी स्वयं करती हैं ॥२९५-३००॥

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च ।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥३०१
कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रत्द्वापरं युगम् ।
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥३०२
इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च ।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ॥३०३
वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ।
तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥३०४
अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ।
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥३०५

प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥३०६

कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग राजा के ही विशिष्ट कर्म होने से राजा ही 'युग' कहा जाता है राजा के सोते रहने पर कलि, जागते रहने पर द्वापर, कर्म करने में उद्यत होने पर त्रेता और कर्म कर रहा हो तब सत्युग होता है। इन्द्र सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्र, अग्नि और पृथिवी के तेज अनुरूप ही राजा बर्ताव करे। जैसे इन्द्र वर्षा ऋतु के चार महीनों में जल वर्षा कर कृषकों कोसुख देता है वैसे ही राजा इन्द्रवत प्रजाओं को इच्छित अर्थ वर्षण द्वारा सन्तुष्ट करे। जैसे सूर्य आठ मास पर्यन्त अपनी रश्मियों से जल ग्रहण करता है, वैसेही राजा सूर्यव्रत के अनुकरण से राष्ट्र से कर वसूल करे। जैसे वायु सब जीवों के भीतर विचरण करता है, वैसे ही राजा वायुव्रत के अनुरूप अपने चरों के द्वारा सम्पूण राष्ट्र में भ्रमण करता रहे ॥३०४-३०८॥

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥३०७

वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते ।
तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥३०८

परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः ।
तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चान्द्रव्रतिको नृपः ॥३०९

प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु ।
दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥३१०

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥३११

एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः ।
स्तेनान्राजा निगृह्णीयात्स्वराट् पर एव च ॥३१२

जैसे यम समय प्राप्त होने पर किसी को भी न छोड़ता हुआ यथोचित् कर्मफल देता है, वैसे ही राजा नियमानुकूल व्यवहार करता हुआ प्रजापालन में तत्पर रहे, यही उसका यमव्रत है। जैसे वरुण जिसे बाँधना चाहते हैं, उसे निःशंकभाव से अपने पाश में बाँध लेते हैं, वैसे ही राजा पापियों को निःशंक होकर बाँधें, यह उसका वरुणव्रत है। जैसे परिपूर्ण चन्द्र के दर्शन करके मनुष्य प्रसन्न होते हैं, वैसे ही राजा के दर्शन करके प्रजा प्रसन्न हो तो राजा का यही चान्द्रव्रत है। जैसे अग्नि सदा तेजस्वी एवं उग्ररूप धारण किये रहता है, वैसे ही राजा सदा उग्ररूप धारण करके दुष्ट मन्त्रियों को तप्त करे, यह उसका आग्नेयव्रत है। जैसे पृथिवी सब जीवों को समान भाव से धारण करती है, वैसे ही राजा सब जीवों के पोषण का भार धारण करे तो यह पार्थिवव्रत होगा। उपर्युक्त या अन्य उपायों से युक्त हुआ राजा नित्य निरालस्य होकर अपने और पराये राष्ट्र के चोरों का निग्रह करे ॥३०७-३१२॥

परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत् ।
ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥३१३

यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ।
क्षयी चाप्यायितःसोमःकोननश्येत्प्रकोप्यतान् ॥३१४

लोकानन्यान्सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः ।
देवान्कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वस्तान्समृध्नुयात् ॥३१५

याानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा ।
ब्रह्मचैव धनं येषा को हिंस्यात्ताञ्जिजीषुः ॥३१६

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥३१७

श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ।
हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते ॥३१८

राजा घोर विपत्ति में पड़कर भी ब्राह्मणों को कुपित न करे क्योंकि कुपित हुए ब्राह्मण सेना और वाहनादि के सहित राजा को शीघ्र नष्ट कर देते हैं। जिन्होंने अपने शाप से अग्नि को सर्वभक्षी, समुद्र को अपेय और क्षीण होने वाले चन्द्रमा को पूर्ण कर दिया, उन ब्राह्मणों को क्रुद्ध करके कौन नष्ट नहो जायगा? जो क्रुद्ध होकर अन्य स्वर्गादि लोक या लोकपालों को रच सकते तथा देवताओं को मनुष्य योनि में डाल सकते हैं, उन्हें सन्तप्त करके कौन समृद्ध हो सकेगा? जिन ब्राह्मणों के आश्रय में लोक और देवता स्थित रहते हैं और जिनके जीवन धन एकमात्र ब्रह्म ही हैं, उन्हें जीवन की इच्छा वाला कौन पुरुष सता सकता है? वेद विधि से प्रतिष्ठित हो या न हो, जसे अग्नि महान् देव हैं, वैसे ही ब्राह्मण चाहे मूर्ख या विद्वान्, महान् देवता ही है। तेजस्वी अग्नि श्मशान में भी दूषित नहीं होते और यज्ञ में तो आहुतियों को प्राप्त करके और भी बढ़ जाते हैं ॥३१३-३१८॥

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥३१९

क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः ।
ब्रह्मैव संनियन्तृ स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥३२०

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥३२१

नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्धते ।
ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चामुत्र वर्धते ॥३२२

दत्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम् ।
पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं रणे ॥३२३

एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः ।
हितेषु चैव लोकस्य सर्वान्भृत्यान्नियोजयेत् ॥३२४

इस प्रकार ब्राह्मण यदि बुरे कार्य भी करें तो भी पूजनीय है, क्योंकि यह भूमंडल के परम देवता है । ब्राह्मणों को पीड़ित करने वाले क्षत्रियो पर ब्राह्मण ही शासन कर सकता है, क्योंकि क्षत्रिय की उत्पत्ति ब्राह्मण सेही हुई हैं। जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पाषण से लौह उत्पन्न हुआ है, उनका प्रभाव सर्वत्र अशान्त हो तो भी अपने उत्पत्ति स्थान पर शान्त ही रहता है । ब्राह्मण के बिना क्षत्रिय और क्षत्रिय के बिना ब्राह्मण बढ़ नहीं सका, यदि यह दोनों ही मिले रहें तो लोक-परलोक दोनों में प्रवृद्ध रहते हैं । सब प्रकार के दण्डों से वसूल हुआ द्रव्य ब्राह्मण को देकर तथा पुत्र को राज्य देनेके पश्चात् राजा अपने शरीर को युद्ध में छोड़े। इस प्रकार राजधम में सदा प्रयत्नवान राजा प्रजा के हित-साधन में सभी कर्मचारियों को लगावें ॥३१९-३२४॥

एषोऽखिलः कर्मविधिरुक्तो राज्ञः सनातनः ।
इमं कर्मविधिं विद्यात्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः ॥३२५

वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम् ।
वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे ॥३२६

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ।
ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः ॥३२७

न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति ।
वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथंचन ३२८

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च ।
गन्धानां च रसानां च विद्यार्घबलाबलम् ॥३२९

बीजानामुप्तिविच्चस्यात्क्षेत्रदोषगुणस्यस्यवंशः ।
मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च च ॥३३०

राजा से सम्बन्धित यह सब कर्मविधि कही गई अब. वैश्य और शूद्र की कर्मविधि को क्रम से समझिये। यज्ञोपनीत के पश्चात् विवाह करके वैश्य कृषि, व्यापार और पशु-रक्षण में सदैव लगा रहे ब्रह्माजी ने पशुओं की रचना करके वैश्यों को उनके पालन भार कासौंपा तथा प्रजाओंकी रचना करके ब्राह्मण और क्षत्रिय को उनकी रक्षा का कार्य दिया। वैश्य यह इच्छा कभी न करे कि मैं पशु की रक्षा न करूँ और जब तक वैश्य पशओं की रक्षा करे तब तक राजा यह कार्य किसी अन्य से न करावे। वैश्य मणि, मुक्ता, प्रवाल, लोहा. वस्त्र, कपूर और दूध आदि पदार्थों का मूल्य की कमी-वेशी को देश काल के अनुसार जानता रहे। कौन-सा बीज किस खेत में बोना चाहिए इस विषय में वीज और खेत के गुणावगुण तथा सब वस्तुओं के माप-तौल की रीति भी वैश्य जान ले ।।३२५-३३०।।

सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान् ।
लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्धनम् ॥३३१

भृत्यानांचभृतिंविद्याद्भाषाश्च विविधानृणाम् ।
द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥३३२

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ।
दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः ॥३३३

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम् ।
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैश्रेयसः परः ॥३३४
शुचिरुत्कृष्टशुश्रुर्मृदुवागनहंकृतः ।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥३३५
एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः शुभः ।
आपद्यपि हि यस्तेषां क्रमशस्तन्निबोधत ॥३३६

श्रेष्ठ-निकृष्ट वस्तु की पहचान, सस्ती-महँगी वस्तु का ज्ञान लाभ-हानि, पशु वृद्धि, वेतन, विविध भाषा, कौन वस्तु कहाँ रखने से सुरक्षित रहेगी और कहाँ किस वस्तु की अधिक खपत है, इसका ज्ञान वैश्य को रखना चाहिए। वह धन की वृद्धि धर्म-पूर्वक करता हुआ सब जीवों को अन्न दे । वेदविज्ञ, गृहस्थ और यशवी ब्राह्मण की सेवा शूद्र के लिए स्वर्ग देने वाला श्रेष्ठ धर्म है । देह मन को पवित्र रखने वाला, अपने से उच्च जाति की सेवा करने वाला मिष्टभाषी, निरहकार तथा ब्राह्मण का आश्रित रहने वाला शूद्र उत्कृष्ट जाति को प्राप्त होता है । यह चारों वर्णों का निरापद कालीन श्रेष्ठ कर्म कहा गया, अब आपत्कालीन धर्म को भी क्रमशः सुनो ॥३३१-३३६॥

॥ नवाँ अध्याय समाप्त ॥

दसवाँ अध्याय

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ।
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥१

सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान्यथाविधि ।
प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् ॥२

वंशेष्यात्प्रकृतिश्रेष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ।
संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ॥३

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥४

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ।
आनेलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥५

अपने-अपने कर्म में स्थित रहते हुए तीनों वर्ण वेदाध्ययन करें, ब्राह्मण ही सबको वेद बढ़ावे यही निश्चय है। सब वर्णों को जीवनोपाय जानता हुआ ब्राह्मण सबको उसका उपदेश करे और स्वयं भी अपने नियमों में स्थिति रहे। जाति की श्रेष्ठता, उत्पत्ति की श्रेष्ठता, वेद पढ़ने पढ़ाने एव संस्कार आदि की विशेषता से ब्राह्मण सभी वर्णों का स्वामी होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों द्विजाति और चौथा वर्ण शूद्र है, पाँचवाँ वर्ण कोई नहीं हैं। चारों वर्णों में सवर्णा अक्षययोनि विवाहिता में अनुलोम से उत्पन्न होने वाली सन्तान उसी वर्ण की होगी ॥१-५॥

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान् ।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥६

अनन्तरासु जातानां विधिरेष सनातनः ।
द्व्येकान्तरासुजातानांधर्म्यंविद्यादिमंविधिम् ॥७

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायायामम्बष्ठो नाम जायते ।
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥८

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ।
क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रो नाम प्रजायते ॥९

विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः ।
वैश्यस्त वर्णे चैकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः ॥१०

अपने निकटस्थ निम्न वर्ण की स्त्री में द्विजाति द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होते हैं. वे पिता के समान होते हुए भी माता की निकृष्टता के कारण निंदित एवं निकृष्ट होते हैं। निम्न वर्ण का स्त्रियों में जन्म लेने वाले पुत्रोंका यह सनातन नियम बताया,अब अधिक वर्ण के अन्तर वाली स्त्रियों से उत्पन्न पुत्र के विषय में कहेंगे। ब्राह्मण की विवाहिता वैश्यपुत्री में उत्पन्न पुत्र अम्बष्ठ और शद्र पुत्रो में उत्पन्न पुत्र निषाद अर्थात् पारशव होता है। क्षत्रिय की विवाहिता शूद्र कन्या में उत्पन्न सूत क्रूरकर्मा तथा क्षत्रिय-शूद्र के मिश्रित स्वभाव का होता हैं, जोकि उग्र कहा गया है। ब्राह्मण का तीनों द्विजाति वर्ण की स्त्रियों में, क्षत्रिय का वैश्य शूद्र दो वर्ण को स्त्रियों में तथा वैश्य का शूद्रा में उत्पन्न पुत्र को अपसद कहते हैं ॥६-१०॥

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ।
वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ ॥११

शूद्रादायोगवः क्षत्ता चण्डालश्चाधमो नृणाम् ।
वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥१२

एकान्तरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ ।
क्षत्तृवैदेहकौ तद्वत्प्रातिलोम्येऽपि जन्मनि ॥१३

पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम् ।
ताननन्तरनाम्नस्तु, मातृदोषात्प्रचक्षते ॥१४

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायये ।
आभीरोऽम्बष्ठकन्यायामायागव्यां तु धिग्वणः ॥१५

आयोगवश्च क्षत्ताचचण्डालश्चाधमो नृणाम् ।
प्रातिलौम्ये न जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रयः ॥१६

क्षत्रिय से ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न पुत्र सूत, वैश्य से क्षत्रिय कन्या में उत्पन्न मागध तथा वैश्य से ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न सुत वैदेह कहा जाता है। शूद्र से वैश्या, क्षत्रिया और ब्राह्मणी में उत्पन्न पुत्र क्रमशः आयोगव, क्षत्ता, और अधर्म चाण्डाल वर्ण-संकरत्व युक्त होते हैं। अनुलोम के क्रम से एक से अन्तर वाले वर्ण से उत्पन्न अम्बष्ठ और उग्र स्पर्श आदि के योग्य होते हैं, वैसे ही प्रतिलोम क्रम से उत्पन्न क्षत्ता और वैदेह भी स्पर्श आदि के योग्य हैं। द्विजातियों के क्रमशः अनन्तर स्त्रियों में उत्पन्न पुत्र माता की जाति नाम से पुकारे जाते और उसीके अनुसार उनके संस्कार किये जाते हैं। ब्राह्मण से उग्रकन्या में उत्पन्न को आवृत अम्बष्ठकन्या में उत्पन्न को आभीर और आयोगवी में उत्पन्न धिग्वण कहा जाता है। प्रतिलोभ क्रम से जन्मे हुए आयोगव, क्षत्ता, चाण्डाल यह तीनों शूद्र सेभी नीचे माने जाते हैं।११-१६।

वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु ।
प्रतीपमेते जायन्ते परेऽप्यपसदास्त्रयः ॥१७

जातो निषादाच्छूद्रायां जात्याभवति पुक्कसः।
शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकःस्मृतः ॥१८

क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते ।
वैदेहकेन त्वम्बष्ठ्यांमुत्पन्नो वेण उच्यते ॥१९

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान् ।
तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान्व्रात्यानिति विनिर्दिशेत् ॥२०

व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः ।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधःशैख एव च ॥२१

झल्लोमल्लश्चराजन्याद्व्रात्यन्निच्छिविरेवच ।
नटश्च करश्चैव खसो द्रविड एव च ॥२२

वैश्य से क्षत्रिय में उत्पन्न मागध और ब्राह्मणी में उत्पन्न सैदेह तथा क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न सुत, यह तीनों प्रकार के पुत्र कार्य से भ्रष्ट माने जाते हैं। निषाद से शूद्राका पुत्र पुक्कस और शूद्र से निषादी का पुत्र कुक्कुट होता है। क्षत्ता-उग्रा के संयोग का पुत्र श्वपाक और वैदेह अम्बष्ठ के योग का पुत्र वेण कहा जाता है। द्विजाति के सवर्णाओं में उत्पन्न पुत्र यदि यज्ञोपवीत-रहित हों तो व्रात्य कहे जाते हैं। व्रात्य ब्राह्मण से पापिष्ठ भूर्जकण्टक संज्ञक पुत्र होता है, देश-भेद से यही आवन्त्य वाटधान, पुष्पध और शैख कहलाते हैं। व्रात्य क्षत्रिय से सवर्णा में उत्पन्न पुत्र झल्ल, मल्ल, निच्छिवि, नट, करण खस और द्रविड़ कहे जाते हैं ।१७-२२॥

वैश्यात्तु जन्यते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च ।
कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च ॥२३

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च ।
स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥२४

संकीर्णयोनियो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः ।
अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥२५

सूतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्च नराधमः ।
मागधः क्षत्तुजातिश्च तथाऽऽयोगव एव च ॥२६

एते षट् सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति स्वयोनिषु ।
मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरासु च योनिषु ॥२७

यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्मास्य जायते ।
आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तथा बाह्येष्वपिक्रमात् ॥२८

व्रात्य वैश्य से सजातीया में उत्पन्न पुत्र क्रमशः सुधवाचार्य कारुष, विजन्मा, मंत्र और सात्वत नाम वाले होते हैं। ब्राह्मणादि वर्णों में परस्पर स्त्री-संयोगसे सगोत्र में विवाह करने तथा निज-कर्म को त्याग देने से वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं। अब प्रतिलोम-अनुलोम से उत्पन्न संकीर्ण जाति तथा पारस्परिक व्यभिचार से उत्पन्न वर्णसंकर के विषय में बताते हैं । सूत वैदेहक, चाण्डाल, मागध, क्षत्ता और आयोगव वर्णसंकर माने गये हैं। यह छओं स्वजाति, मातृजाति अथवा श्रेष्ठ जाति की कन्या में अपने समान संतान उत्पन्न करते हैं । जैसे क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में अनुलोम क्रम से विवाहिता क्षत्रिया में ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न पुत्र वैश्य और क्षत्रिय के अनुलोमज से उत्कृष्टता होता है, वैसे ही वैश्य का क्षत्रिया में और क्षत्रिय का ब्राह्मणी में उत्पन्न पुत्र शूद्र के प्रति-लोम से उत्कृष्ट होता है ॥२३-२८॥

ते चापि बाह्यान्सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान् ।
परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥२९

यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तु प्रसूयते ।
तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥३०

प्रतिकूलं वर्तमाना बाह्या बाह्यतरान्पुनः ।
हीना हीनान्प्रसूयन्ते वर्णान्पञ्चदशैव तु ॥३१

प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम् ।
सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ॥३२

मैत्रेयकं तु वैदेहो माधूकं संप्रसूयते ।
नृन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये ॥३३

निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम् ।
कैवर्तमिति यं प्राहुरार्यावर्तनिवासिनः ॥३४

वे वर्णसंकर अनुलोम और प्रतिलोम के क्रम से परस्पर की स्त्रियों में अपने से भी गर्हित सन्तान को जन्म देते हैं। जैसे शूद्र ब्राह्मणी में चाण्डाल को जन्म दे,वैसे ही चाण्डाल, मागध क्षत्ता और आयोगव में चण्डाल से निकृष्ट सन्तान पैदा करता है। प्रतिलोम उत्पन्न यह तीन बाह्यहीन पुत्र चतुर्वर्ण स्त्रियों तथा स्वजाति की स्त्रियों में पन्द्रह-पन्द्रह प्रकार की वाह्येतर हीन जातियाँ पैदा करते हैं। दस्यु से आयोगव में उत्पन्न पुत्र सैरिन्ध्र कहा जाता है, वह केशरचना में दक्ष तथा उच्छिष्ट न खाकर दासवृत्ति और व्यधवृत्ति से निर्वाह करता है। वैदेहक से आयोगव में उत्पन्न पुत्र मैत्रेय संज्ञक मधुरभाषी तथा प्रातःकाल घंटा बजाकर वृत्ति के निमित्त मनुष्यों की स्तुति कराने वाला होता है। निषाद से आयोगवा में उत्पन्न मार्गव या दास कहा जाता है, यह नाविक का कार्य करता हैं,जिस आर्यावर्त के निवासी लोग कैवर्त कहते हैं ॥२९-३४॥

मृतवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हितान्नाशनासु च ।
भवन्त्यायोगवीष्वेते जातिहीनाः पृथक् त्रयः ॥३५

कारावरो निषादात्तु कर्मकारः सूयते ।
वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ॥३६

चाण्डालात्पाडुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान् ।
आहिण्डिको निषादेन वैदेह्यामेव जायते ॥३७

चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान् ।
पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः ॥३८

निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम् ।
श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपि गर्हितम् ॥३९

सैरिन्ध्र, मैत्रेय और मार्गव यह तीनों जातियां मृतक का वस्त्र पहनती, सबका उच्छिष्ट खाने वाली आयोगवी नारियों में पिता के भेद से पृथक्-पृथक् होती हैं। निषाद से वैदेह की में कारावर नामक चमार पैदा होता है, वैदेह से कारोवर और निषादियों में उत्पन्न पुत्रों को क्रम से अन्ध्र और मेद कहते हैं, यह दोनों ही ग्राम से बाहर रहते हैं। चण्डाल से वैदेहिकी में उत्पन्न पाडुसोपाक संज्ञक पुत्र बाँस की टोकरी आदि बुन कर निर्वाह करता है। निषाद से वैदेहिकी में आहिण्डक जन्म लेता हैं। चाडाल से पुक्कसी में सोपाक की उत्पत्ति होती है, यह वधिक वृत्तिसे जीविका करने वाली जाति अत्यन्त पापात्मा और निन्द्य होती है। चंडाल से निषादी में अन्त्यावसायी संज्ञक निकृष्ट जाति होती है, यह श्मशान में मुर्दों को जलाते हैं ॥३५-३९॥

संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः ।
प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः॥४०

सजातिजानन्तरजा षट् सुता द्विजधर्मिणः ।
शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ॥४१

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे ।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥४२

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥४३

पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाःकाम्बोजायावनाःशकाः ।
पारदाः पह्लवाश्चीनाःकिराता दरदाःखशाः ॥४४

मुखबाहूरूपज्जानां या लोके जातयो बहिः ।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वते दस्यवः स्मृता ॥४५

वर्णसङ्कर में माता पिता द्वारा इतनी जातियाँ प्रदर्शित की गई है, अन्य अनेक प्रकट.प्रकट जातियाँ भी है, जिन्हें उनके कर्म से जान ले। द्विजाति के सजातीयाओं से तीन और ब्राह्मण के अनुलोस क्रम से दो, क्षत्रिय का वंश्या से एक, इस प्रकार छः पुत्र द्विजकर्म को कर सकते हैं तथा प्रतिलोम क्रम से उत्पन्न सूतादि शूद्र के समान धर्म वाले तथा उपनयन से रहित होते हैं। वे सजातीय तथा अनुलोमज पुत्र तप और बीज के प्रभाव से जन्मानुसार जति की उच्चता और निम्नता को पाते हैं। वे क्षत्रिय, वैश्य उपनयनादि कर्मों के लुप्त होने से तथा यजन-अध्यापनादि के लिए ब्राह्मण के दर्शन का अभाव होने से शनैः शनैः शरत्व को प्राप्त हो गए। पौण्ड्रक, औड्र, द्रविड, कम्बोज, यवन शक, पारद, पह्लव चीन, किरात दरद और खश यह सब शूद्रत्व को पागये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की क्रिया के लोप से बाहर हुई जातियाँ चाहें म्लेच्छ भाषा बोलें या आर्य-भाषा, दस्यु ही कही जाती हैं ॥४०-४५॥

ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृता ।
ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः ।।४६

सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम् ।
वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः ।।४७

मत्स्यघातो निषादानां त्वष्टिस्त्वायोगवस्य च ।
मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गुनामारण्यपशुहिंसनम् ।।४८

क्षत्त्रग्रपुक्कसानां तु बिलौकोवधबन्धनम् ।
धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम् ।।४९

चैत्येद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च ।
वसेयुरेते विज्ञाना वर्तयन्तः स्वकर्मभिः ।।५०

द्विजोत्पन्न प्रतिलोमज अपसद जातियाँ द्विजों के उपकार के लिए आगे कहे जाने वाले निन्दित कार्यों से आजीविका करें। सूत घोड़ों को शिक्षित कर उन्हें रथ में जातें और हाँकें। अम्बष्ठ चिकित्सा करें, वैदेहक अन्तःपुर की सेवा तथा मागध स्थ मार्ग में व्यापार करें। निषाद मछली मारें, आयोगव काष्ठ चीरें तथा मेद, अन्ध्र, चुंचु और मुद्गु वन्य पशुओं को मापने का कार्य करें। क्षत्ता, उग्र और पुक्कस बिल में रहने वाले जीवों को बांधें और मारें धिग्वण चर्मकार्य करें वेण काँसे की ताली और झाँझ आदि बजावें। ये ग्राम या नगर के निकट किसी प्रसिद्ध वृक्ष के नीचे या श्मशान, पर्वत अथवा उपवन के समीप बस कर कार्य करते हुए निर्वाह करें ।।४६:५०।।

चण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ।
अपपात्राश्च कर्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ।।५१

वासांसि मृतचेलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ।
कार्ष्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥५२

न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ।
व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥५३

अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने ।
रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥५४

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्नता राजशासनैः ।
अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥५५

वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया ।
वध्यवासांसि गृह्णीयुःशय्याश्चाभरणानि च ॥५६

चण्डाल और श्वपच (मेहतर ग्राम से बाहर रहे, यह धातु के पात्र न रखकर मिट्टी के बर्तन रखें, कुत्ते और गधे इनके धन रहें, शव से उतारे हुए वस्त्र पहिनें, मिट्टी के जीर्ण पात्रों में भोजन करें, लोहे के आभूषण पहिनें तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर नित्य भ्रमण करते रहें। धर्मकार्य के समय मनुष्य इनसे दर्शन सभाषण आदि का व्यवहार न करे, इनका लेन-देन व्यवहार तथा विवाहादि भी समान जाति में ही होना चाहिए, इन्हें अन्य के हाथ से मिट्टी के टूटे हुए पात्र में अन्न दिलाया जाय और यह लोग रात्रि के समय ग्राम या नगर में न घूमें। दिन में राजाज्ञा का चिन्ह धारण कर अपने कार्य से घूमें तथा बन्धु-बांधवहीन मृतकों को श्मशान में ले जाया करें, यही नियम है। शास्त्रानुसार राजाज्ञा से अपराधी वध्य पुरुषों का वध करें तथा उनके वस्त्र शय्या और आभूषणादि लेलें ॥५१-५६॥

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ।
आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥५७

अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता ।
पुरुषं व्यञ्जयन्तोहं लोके कलुषयोनिजम् ॥५८

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेन वा ।
न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥५९

कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्यस्याद्योनिसङ्करः ।
संश्रयत्येव तच्छील नरौऽल्पमपि वा बहु ॥६०

यत्र त्वेते परिध्वंसाज्जायन्ते वर्णदूषकाः ।
राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्तमेव विनश्यति ॥६१

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः ।
स्त्रीबालाभ्युपपत्तौच वाह्यानांसिद्धिकारणम् ॥६२

वर्ण से बहिष्कृत, अज्ञात, वर्णसंकर से उत्पन्न आर्य रूप में अनार्य व्यक्ति की पहिचान कर्म के द्वारा करे। अनार्यता, निष्ठुरता, क्रूरता और निष्क्रियता यह लक्षण दुष्ठ योनि में जन्म लेने वाले के हैं। वर्णसंकर मनुष्य पिता के या माता के अथवा पिता-माता दोनों के ही स्वभाव का सेवन करता तथा दुष्ट कुल में जन्म लेने के कारण अपनी असलियत नहीं छिपा सकता। श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न वर्णसंकर भी अपने जन्म देने वाले के स्वभाव को नही त्याग सकता, उसमें स्वल्प या अधिक गुण पिता का आ ही जाता है। जिस देश में वर्णों को दूषित करने वाले वर्णसंकर जन्म लेते हैं वह देश शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है। ब्राह्मण, गौ, स्त्री और बालक में से किसी की भी रक्षा के लिए प्रतिलोमज जाति यदि प्राण दे तो वह स्वयं के लिए स्वर्ण प्राप्ति का कारण बनती है ॥५७-६२॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीत्मनुः ॥६३

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जाता श्रेयसा चेत्प्रजायते ।
अश्रेयात् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥६४

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवं ते विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥६५

अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया ।
ब्राह्मण्यामप्यनार्यात्तु श्रेयस्त्वं क्वेति चेद्भवेत् ॥६६

जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः ।
जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः ॥६७

तावुभाप्यसंस्कार्याविति धर्मो व्यवस्थितः ।
वैगुण्याज्जन्मनः पूर्वउत्तरः प्रतिलोमतः ॥६८

किसी जीव को दुःख न देना, सत्य बोलना, अन्याय पूर्वक पराया धन ग्रहण न करना, पवित्र रहता और इन्द्रियनिग्रह-मनु ने यह चारों वर्णों का संक्षेप में धर्म कहा है। ब्राह्मण से शूद्रा में जन्मी हुई कन्या ब्राह्मण से विवाहित ही तथा अगली सात पीढ़ियों तक ऐसा ही होता रहे तो वह अपनी निकृष्ट योनि से मुक्त होकर सातवीं पीढ़ी में पूर्ण ब्राह्मण ही हो जाता है जैसे शूद्र ब्राह्मणत्व को और ब्राह्मण शूद्रत्व को पाता है, वैसे ही क्षत्रित या वैश्य से उत्पन्न शूद्र भी क्षत्रिय या वैश्य हो जाते हैं। ब्राह्मण अविवाहिता शूद्रा में या शूद्र से ब्राह्मणी में पुत्र हो तो इन दोनों की श्रेष्ठता में संशय होने पर स्पष्ट करते हैं कि शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पन्न पुत्र-पाकयज्ञादि गुणों से सम्पन्न होने के कारण विशिष्ट होता है, जबकि ब्राह्मणी में शूद्र से उत्पन्न पुत्र प्रसिलोमज होने से शूद्र जाति में भी ग्रहण करने योग्य नहीं होता। पारशव और चण्डाल उपनयन के अधिकारी नहीं होते, क्योंकि पारशव जाति-वैकुण्य से तथा चण्डाल प्रतिलोमज होने के कारण उपनयन के अयोग्य होता है ॥६३-६८॥

सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा ।
यथार्याज्जात आर्यायां सर्वं संस्कारमर्हति ॥६९

बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः ।
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थिति ॥७०

अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति ।
अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत् ॥७१

यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋष्योऽभवन् ।
पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते ॥७२

अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम् ।
संप्रधार्याप्रवीद्धाता न समौ नासमाविति ॥७३

ब्राह्मणाब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्मण्यवस्थितः ।
ते सम्यगुपजीवेयुः षट्कर्माणि यथाक्रमम् ॥७४

जैसे श्रेष्ठ बीज ठीक प्रकार से उपजाता है वैसे ही आर्य पुरुष-स्त्री से उत्पन्न पुत्र सब संस्कारों के योग्य होता है । कोई बीज को श्रेष्ठ कहता है, कोई खेत को और कोई दोनों को ही श्रेष्ठ बताता है, इस विषय व्यवस्था में बताते हैं। ऊसर में बोया गया बीज फल देने से ही पहिले मारा जाता है और जिस खेत में बीज ही न डाला जाय, वह स्थाण्डिल के समान रह जाता है । बीज के प्रभाव से ही तिर्यक योनि में जन्म लेकर भी ऋषि पूजित और प्रशंसित हुए इसलिए बीज ही विशिष्ट होता है । द्विज के कर्मकर्त्ता शूद्र और शूद्र के कर्मकर्त्ता द्विज का विचार करके ब्रह्मा ने कहाकि यह दोनों न तो समान हैं और न असमान ही हैं । स्वकर्म में लगे ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण आगे कहे जाने वाले छः कर्मों का यथाक्रम अनुष्ठान करे ॥६९-७०॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्माण्यग्रजन्मनः ॥७५

षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका ।
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥७६

त्रयो धर्मा निवर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति ।
अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ॥७७

वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्तेरन्निति स्थितिः ।
न तौ प्रति हि तान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ॥७८

शस्त्रास्त्रभृत्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः ।
आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ॥७९

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् ।
वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥८०

अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान एवं प्रतिग्रह यह छः कर्म ब्राह्मण के हैं। इनमें से तीन अर्थात् याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह उसकी जीविका के हैं। इसलिए, यह तीनों कर्म क्षत्रिय धर्म से निवृत्त हैं। वैश्य भी इन तीन कर्मों को नहीं कर सकता, क्योंकि प्रजापति मनु ने क्षात्रय और वैश्य दोनों के लिए इन्हें वर्जित किया है। क्षत्रिय अपनी जीविका के लिए शास्त्रास्त्र धारण करे और वैश्य वाणिज्य, पशुपालन और कृषिकर्म करे. दान देना, अध्ययन और यज्ञ करना इनके धर्म हैं। ब्राह्मण का विशिष्ट कर्म वेदाध्ययन, क्षत्रिय का प्रजारक्षण तथा वैश्य का कर्म वाणिज्य विशेष रूप से है ॥७५-८१॥

अजीवस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ।
जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥८१

उभाभ्यमप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥८२

वैश्यवृत्यापिजीवंस्तुब्राह्मणःक्षत्रियोऽपि वा ।
हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥८३

कृषिं साध्विति मन्यते सा वृत्तिः सद्भिर्गर्हिता ।
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ॥८४

इडं तु वृत्तिवैकल्यात्यजतो धर्मनैपुणम् ।
विटपण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम् ॥८५

सर्वान्रसानपोहेत कृतान्नं च तिलैः सहः ।
धश्मनौ लवणं चैव पशवो ये च मानुषाः ॥८६

ब्राह्मण अपने निश्चित कर्म से जीवन निर्वाह न कर पाये तो क्षत्रिय के धर्म से वृत्ति करे, क्योंकि क्षात्रधर्म ही उसके पश्चात् का समीपी धर्म है। यदि ब्राह्मण का निर्वाह अपने धर्म या क्षात्र कर्म से भी न हो तो उसे कृषि और गोरक्षा के सहित वैश्य वृत्ति का आश्रय अधिक हिंसामयी एवं पराधीनता युक्त कृति का त्याग करे। कोई-कोई कृषि कर्म का श्रेष्ठ कहते हैं, किन्तु सज्जनों ने उसकी निन्दा ही की है, क्योंकि हल, कुदाल का लोहा लगा हुआ काष्ठ धरती चीरता और सोते हुए जीवों को नष्ठ कर देता है। अपनी वृत्ति से निवाह असम्भव हो तो अपना धर्म त्याग कर वैश्यों की क्रय विक्रय वाली वस्तुओं का व्यापार करे। किन्तु रसयुक्त पदार्थ. पक्वान्न, तिल, पाषाण, नमक, पशु और मनुष्य का विक्रय न करें ॥८१-८६॥

सर्वं च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च ।
अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ॥८७

अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धांश्च सर्वशः ।
क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥८८

आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च ।
मद्यं नीलिं च लाक्षां च सर्वांश्चैकशफांस्तथा ॥८९

काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः ।
विक्रीणीत तिलाञ्छूद्रान्धर्मार्थमचिरस्थितान् ॥९०

भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ।
कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ॥९१

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥९२

सब प्रकार के बुने हुए वस्त्र, रङ्ग नीसो और ऊन के बने वस्त्र, फल, मूल औषधि, जल, शस्त्र, विष, माँस, सोमरस, सुगन्धित द्रव्य, दूध, दही, घृत, तैन, मोम, मधु, गुड, कुश वन्य पशु, दाढ़वाले पशु पक्षी, मदिरा, नील, लाक्षा तथा जिनका खुर जुटा हो, उन्हें न बेचें। कृषक स्वयं अपनी खेती में अन्य अन्न के साथ तिल उपजा कर धर्मार्थ शीघ्र विक्रय करें। यदि तिलों से भोजन उबटन और दान के अतिरिक्त अन्य कार्य करे तो कृमि होकर पितरों सहित श्वान की विष्ठा में निवास करेगा। मांस, लाख और नमक के विकय से ब्राह्मण शीघ्र पतित तथा दूध बेचने से तीन दिन में शूद्र हो जाता है ॥८७-९१॥

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः ।
ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति ॥९३

रसा रसैर्निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः ।
कृतान्नं चाकृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः ॥९४

जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः ।
न त्वेव ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्येत कर्हिचित् ॥९५

यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः ।
तं राजा निर्धनं कृत्दा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥९६

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः ।
परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः ॥९७

वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्यापि वर्तयेत् ।
अनाचरन्नकार्याणि निवर्तेत च शक्तिमान् ॥९८

यदि ब्राह्मण वर्जित वस्तूओं को सात दिन पर्यन्त स्वेच्छापूर्वक बेचे तो वैश्यत्व को प्राप्त हो। रसों को स्नेहों से बदल सकते हैं, किन्तु लवण से नहीं बदल सकते, पक्वान्न कच्चे अन्न से और तिल धान से बदल सकते हैं, जो कि तौल में बराबर होने चाहिए। संकटग्रस्त क्षत्रिय इस वृत्ति से तो निर्वाह कर सकता है. किन्तु ब्राह्मण वृत्ति से नहीं कर सकता। जो नीच जाति का पुरुष लोभवश श्रेष्ठ जाति की वृत्ति करे तो राजा उसका सर्वस्व छीनकर देश मे निकाल दे। स्वधर्म तूच्छ भी हो तो श्रेष्ठ है. किन्तु परधर्म पूर्णतयायुक्त हो तो भी श्रेष्ठ नहीं होता, क्योंकि परधर्म के आचरण वाला मनूष्य अपनी जाति से शीघ्र ही पतित हो जाता है। वैश्य अपने कर्म से निर्वाह न कर सके तो शूद्र वृत्ति से जीविका करे और जब समर्थ होजाय तब शूद्र को छोड़ दे ॥९३।९८॥

अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम् ।
पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः ॥९९

यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्वन्ते द्विजातयः ।
तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च ॥१००

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठान्ब्राह्मणः स्वे पथि स्थितः ।
अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत ॥१०१

सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयं गतः ।
पवित्रदुष्यतीत्येतद्धर्मतोः नोपपद्यते ॥१०२

नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात् ।
दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमा हि ते ॥१०३

जीवितात्ययमापत्वो योऽन्नमत्ति यतस्ततः ।
आकाशमिव पंकेन न स पापेन लिप्यते ॥१०४

द्विजाति की सेवा करने में असमर्थ शूद्र के स्त्री पुत्रादि अन्न-वस्त्र के अभाव में कष्ट पा रहे हों तो शिल्पकर्म से परिवार का निर्वाह करे। जिव कार्यों से द्विजाति की सेवा हो सकती हैं ऐसे शिल्प एवं कारकर्म के अनेक कार्य हो सकते हैं। अपने कर्ममार्ग में स्थित ब्राह्मण जीविका के अभाव में पीड़ित होकर भी वैश्य-वृत्ति का अवलम्बन न करना चाहे तो आगे वर्णित धर्मवृत्ति का आश्रय ले। आपत्काल में ब्राह्मण सभी से दान ले सकता है, पवित्र वस्तु का दूषित होना शास्त्र सम्मत नहीं है। आपत्काल में अपात्र को पढ़ाने, योजन करने और दान लेने में ब्राह्मणों के लिए अधर्म नहीं हो सकता, क्योंकि वे अग्नि और जल के समान पवित्र हैं। प्राण पर आ बने तो चाहे जहाँ का अन्न खा ले तो भी पाप से लिप्त नहीं होता, जैसे आकाश कीचड़ से लिप्त नहीं होता ॥९९-१०४॥

अजीगर्तः सुत हन्तुपासर्पद्बुभुक्षितः ।
न चालिप्यतः पातेन क्षुत्प्रतीकारमारन् ॥१०५

श्वमांसमिच्छन्नार्तोऽत्तु धर्माधर्मविचक्षणः ।
प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥१०६

भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने ।
वह्णीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः । १०७

क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम् ।
चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ।।१०८

प्रतिग्राहाद्याचनाद्वा तथैवाध्यापनादपि ।
प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ।।१०९

याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनाम् ।
प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः ।।११०

अजीगर्त ऋषि जब भूख से व्याकुल हुए तब उन्होंने अपने पुत्र को बेच दिया और यज्ञ में उसकी बलि देने को तत्पर हो गये, किन्तु भूख शान्त करने के लिए उनका ऐसा आचरण भी पाप का कारण नहीं हुआ । पुत्र के लिए महातप भरद्वाज नेभूख से पीड़ित होकर वृधु नाम के बढ़ई से अनेक गौएँ प्राप्त करलीं । धर्म-अधर्म के सम्पर्क रूप से जानने वाले विश्वामित्र भूख से पीड़ित होगए तब वे चण्डाल के हाथ से श्वान की जाँघका माँस खाने को तैयार हो गये । दाल लेने, यज्ञ कराने और वेद पढ़ाने में जो पतिग्रह लिया जाता है, वह ब्राह्मण के लिए गर्हित एवं नरक प्राप्त कराने वाला है । सभी समयों में यज्ञ और अध्यापन जिनका उपनयन होता है, उन्हीं द्विजों के लिए हैं किन्तु प्रतिग्रह शूद्र एवं अन्त्यज से भी ग्रहण किया जा सकता है ।।१०५-११०।।

जपहोमरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् ।
प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव च ।।१११

शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः ।
प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छःप्रशस्यते ।।११२

सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धने वा पृथिवीपतिः ।
याच्यः स्यात्स्नातकैर्विप्रैरदित्संस्त्यागमर्हति ॥११३

अकृष्टं च कृतात्क्षेत्राद्गौरजाविकमेव च ।
हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वं पूर्वमदोषवत् ॥११४

सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः ।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥११५

दूषित याजन और अध्यापन से होने वाला पाप जप और होम से नष्ट हो जाता है, किन्तु प्रतिग्रह का पाप, ली हुई वस्तु के त्याग और तपस्या से दूर हो सकता है। जिस किसी से प्रतिग्रह न लेकर ब्राह्मण शिलोञ्छवृति ले ले, प्रतिग्रह से शिल (खेत का बाल बनाना) श्रेष्ठ है और शिल से उच्छ (खेत में गिरो दाने बीनना) श्रेष्ठ है। स्नातक विप्र दरिद्रता से दुःखी होकर धन चाहे तो राजा से याचना करे, यदि वह धन न दे तो उसका त्याग करे। जाती हुई भूमि की अपेक्षा न जीती भूमि प्रतिग्रह के लिए विशिष्ट होती है, ऐसे ही गौ, बकरी, भेड़, स्वर्ण, धान और चावल में पूर्व की अपेक्षा पर निर्दोष है। धन के साथ आगम धर्मोचित माने जाते हैं—दाय, लाभ, क्रय, जय, प्रयोग (ब्याज), कर्मयोग (कृषि-वाणिज्य) और सत्प्रतिग्रह ॥१११-११५॥

विद्या शिल्पं भृतिःसेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः ।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः ॥११६

ब्राह्मणः क्षत्रियो दापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत् ।
कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम् ॥११७

चतुर्थं माददानोऽपि क्षत्रिया भागमापदि ।
प्रजा रक्षन्परं शक्त्या किल्बिषात्प्रतिमुच्यते ॥११८

स्वधर्मो विजयस्तस्य नाहवे स्यात्पराङ्मुखः ।
शस्त्रेण वैश्यान्रक्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम् ॥११९

धान्येऽष्टमं विंशं शुल्कं विंशं कार्षापणावरम् ।
कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा ॥१२०

विद्या शिल्प, वैतनिक कार्य, सेवा गोरक्षा, वाणिज्य, कृषि, धृति, भिक्षा और ब्याज पर ऋण देना यह दस वृत्तियाँ आपत्कालीन हैं। किन्तु ब्राह्मण-क्षत्रिय आपत्काल में भी कभी किसी से ब्याज न लें, किन्तु धर्मकार्य के लिए पापी भी यदि ब्याज पर रुपया लेने को इच्छुक हो तो उससे ब्याज कम लेना चाहिए। आपत्काल में राजा अन्न का चतुर्थांश लेकर भी प्रजा की रक्षा करे तो अधिक कर लेने के पाप से बच सकता है। राजा धर्म शत्रुओं को जीतना है इसलिए रणक्षेत्र में पीठ न दिखावे, शस्त्र द्वारा वैश्यों की रक्षा करता हुआ धर्मसंगत बलि ले। वैश्यों से अन्न का आठवाँ भाग और कार्षापणांत द्रव्य का वीसवाँ भाग ले, शूद्र, कारीगर, शिल्पी आदि से कार्य कराले ॥११९-१२०॥

शूद्रस्तु वृत्तिमाकाङ्क्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि ।
धनिनं वाप्युपाराध्यंवैश्यं शूद्रो जिजीविषेत् ॥१२१

स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रनाराधयेत्तु सः ।
जातब्राह्मणशब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥१२२

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ।
यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम् ॥१२३

प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः ।
शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम् ॥१२४

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च ।
पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदः ॥१२५

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति ।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ।।१२६

शूद्र की आजीविका ब्राह्मण से न चले तो उसे क्षत्रिय की सेवा करनी चाहिए, वह भी न हो सके तो धनी वैश्य की सेवा से जीविका करे। स्वर्ग अथवा स्वार्थ परमार्थ के लिए शूद्र को ब्राह्मण सेवा ही करनी चाहिए, अमुक शूद्र ब्राह्मण का आश्रित है ऐसा कहलाना ही उसके लिए कृत्यत्वता होगी। ब्राह्मण-सेवा शूद्र का विशिष्ट धर्म है, इसके अतिरिक्त अन्य कर्म निष्फल होता है। शूद्र की परिचर्या सामर्थ्य कार्यकुशलता और उसके कुटुम्ब का व्यय देख कर अपने यहाँ से उसका जीविका निश्चित करें। उस सेवक शूद्र को जूठा अन्न, जीर्ण वस्त्र, असार धान्य तथा जीर्ण ओढ़ने-बिछाने का वस्त्र प्रदान करे। अखाद्य भक्षण में शूद्र को कोई पाप नहीं लगता और न उसके लिए कोई संस्कार ही है, धर्म में उसका न तो अधिकार है और न कर्मकार्य का उसके लिए निषेध ही है ।।१२१-१२६।।

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ।
मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ।।१२७

यथयथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः ।
तथातथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ।।१२८

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः ।
शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ।।१२९

एते चतुर्णां वर्णानामापद्धर्माः प्रकीर्तिताः ।
यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो व्रजन्ति परमां गतिम् ।।१३०

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ।।१३१

धर्मप्राप्ति के इच्छुक, धर्मज्ञ, सदाचारी शूद्र मन्त्ररहित पंच-यज्ञादि रूपधर्म का आचरण करें तो उन्हें कोई दोष नहीं लगता वरन् उससे वे प्रशंसित ही होते हैं। जैसे-जैसे किसी की निन्दा न करता हुआ सद्वृत्ति के अनुष्ठान में लगता है, वैसे-वैसे ही लोक में प्रशंसित होता जाता तथा मरने पर स्वर्ग पाता है। धन पाने में समर्थ शूद्र भी धन का संचय कदापि न करे, क्योंकि धन प्राप्त करके वह ब्राह्मणों का सताने वाला होता हैं। यह चारों वर्णों को परमगति मिलती है। चारों वर्णों की यह सम्पूर्ण धर्म-विधि कह दी गई, अब प्रायश्चित की श्रेष्ठ विधि कहता हूँ ॥१२७-१३१॥

॥ दसवाँ अध्याय समाप्त ॥



ग्यारहवां अध्याय

सांतानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ।
गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनः ॥१
नवैतान्स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभिक्षुकान् ।
निः स्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्या विशेषतः ॥२
एतेभ्यो हि द्विजाग्र्यभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम् ।
इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते ॥३
सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत् ।
ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम् ॥४
कृतदारोऽपरान्दारान्भिक्षित्वा योऽधिगच्छति ।
रति मात्रं फलं तस्य द्रव्यदातुस्तु संततिः ॥५
धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥६

सन्तान का इच्छुक, यज्ञानुष्ठान का इच्छुक, पथिक, सर्वस्व दान करके विश्वजित् यज्ञ का कर्ता, विद्यागुरु के भोजन-वस्त्र की व्यवस्था करने वाला, माता-पिता के लिए अर्थ का इच्छुक, वेदाध्यायी और रोगी, यह नौ प्रकार के धर्मभिक्षुक ब्राह्मण स्नातक होते हैं, इन धनहीनों को उनकी योग्यता और विद्या के अनुसार दान दे। इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को वेदी के भीतर सदक्षिणा अन्न प्रदान करे और इनसे भिन्न ब्राह्मणों को वेदी के बाहर सिद्ध अन्न दे। राजा वेदविज्ञ ब्राह्मणों को यज्ञ करने के

लिए यथायोग्य रत्न एवं दक्षिणा के लिए धन देकर प्रसन्न करे जो एक विवाह करके पुनः भिक्षा माँग कर दूसरा विवाह करे उसे रति मात्र ही फल मिलता है, क्योंकि उससे जो सन्तान होती है वह धन दाता की होती है। जो आसक्तिहीन पुरुष वैदिक विप्रों का यथा शक्ति धन प्रदान करता है, वह मरने पर स्वर्ग पाता है ॥१-६॥

तस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ।
अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥७

अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यःसोमं पिबति द्विजः ।
स पीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥८

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ।
मध्वापातो विषास्वादः सधर्मप्रतिरूपकः ॥९

भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥१०

[वृद्धौ च मातपितरौ साध्वी भार्या शिशुः सुतः ।
अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् ॥]

यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ॥११

या वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ।
कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेत्तत्सिद्धये ॥१२

जिसके पास तीन वर्ष या इससे अधिक काल के लिए पोष्य वर्ग को पालने योग्य अन्न हो वह सोमयोग करने में समर्थ है। जो द्विज इससे अल्प द्रव्य में सोमयाग करता है, वह पहिले किये हुए सोमयोग का फल भी नहीं पाता। जो दानी धनवान स्वजनों

को दुःखित देखता हुआ भी यशप्राप्ति के लिए दूसरों को दान देते है उनका वह दान यथार्थ धर्म न होकर धर्म का कृत्रिम रूप ही है, वह पहले मधुर दिखाई देता हैं, किन्तु परिणाम में विष के समान हो जाता हैं । जो भरण पोषण योग्य परिवारी जनों को कष्ट देकर परलोक बनाने के उद्देश्य से दानपुण्य करता है, उसका वह दान पुण्य लोक-परलोक में कहीं भी सुख देने वाला नही होता । (जिसके माता-पिता वृद्ध स्त्री परिव्रता और पुत्र शिशु हो उसे न करने योग्य सैकड़ों कार्य करके भी उनका भरण पोषण करे, यह मनु का कथन है । धर्मज्ञ राजा के होते हुए यज्ञकर्त्ताओं में ब्राह्मण का यज्ञ एक अंग से अपूर्ण रहे तो वह यज्ञ की पूर्ति के लिए उस वैश्य से धन प्राप्त करे, जिसके यहाँ पशुओं की अधिकता हो और जो पाकयज्ञादि से हीन तथा सोम-या न कर सका हो ॥७-१२॥

आहरेत्त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः ।
न हि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चिदस्ति परिग्रहः ॥१३

योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।
तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ॥१४

आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः ।
तथा यशोऽस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्धते ॥१५

तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता ।
अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥१६

खलात्क्षेत्रादगारागा यतो वाप्युपलभ्यते ।
आख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥१७

ब्राह्मणः न हर्तव्यं क्षत्रियेण कदाचन ।
दस्युनिष्क्रिययोस्तु स्वमजीवन्हर्तुमर्हति ॥१८

यदि यज्ञ के दो या तीन अंग अपूर्ण रह जांय तो उनकी सिद्धि के लिए धनिक शूद्र का धन बलपूर्वक अथवा चोरी से ले आवे, क्योंकि शुद्र यज्ञ से असम्बन्धित रहता है। सौ गौएं रख कर जो अग्निहोत्र न करे तथा एक सहस्र गौएं रख कर जो यज्ञ न करे उन दोनों के घर से यज्ञ के अंगो की पूर्ति के लिए बिना विचारे ही धन का हरण कर ले। यज्ञांग की पूर्ति के लिए ब्राह्मणों द्वारा माँगे जाने पर भी धन न दे उस कृपण का धन जैसे भी पो ले ले इससे लेने वाले के यश को यशा धर्म की वृद्धि होती है। जिससे भोजन किये हुए छः संध्या व्यतीत होगई हों, वह चौथे दिन सातवाँ उपवास तोड़ने के लिए एक संध्या के भोजन योग्य कोई वस्तु अपकर्म करने वाले के घर से चुरा वाले तो इसके लिए दोषी नहीं माना जायगा। खलिहान, खेत, घर अथवा किसी अन्य स्थान से अन्न हरण करके ले आवे और अन्न का स्वामी उस विषय में पूछताछ करे तो उसे स्पष्ट बता दे। क्षत्रिय ब्राह्मण का धन कभी न ले किन्तु जो ब्राह्मण या क्षत्रिय अपने धर्म-कर्म से हीन और निषिद्ध कर्म वाले हों उनका धन आपत्काल से ले सकता है ॥१३-१८॥

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति ।
स कृत्वा प्लबमात्मानं संतारयति तावुभौ ॥१९

यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः ।
अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते ॥२०

न तस्मिन्धायेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः ।
क्षत्रियस्य हि बालिश्याद्ब्राह्मणःसीदतिक्षुधा ॥२१

तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटुम्बान्महीपतिः ।
श्रुतशील च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ॥२२

कल्पयित्वास्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः ।
राज्ञिधर्मषड्भागं तस्मात्प्नोति रक्षितात् ।।२३
न तज्ञार्थं धनं शूद्राद्विपो भिक्षेत कर्हिचित् ।
यजमानो हि भिक्षित्वा चण्डालःप्रेत्य जायते ।।२४

असाधुओं से धन लेकर साधुओं को देने वाला अपने लिए नौका बनाकर उन दोनो को हो, दुःख से पार लगा देता है। विज्ञजन यज्ञ करने वाले के धन को देवधन और यज्ञ न करने वाले के धन को असुरधन कहते है। इसलिए धार्मिक राजा ऐसे कार्यो में दण्ड न करे. क्योंकि राजा के अज्ञान से ब्राह्मण भूख से पीड़ित होता है। उस ब्राह्मण के परिवार में कितने व्यक्ति है तथा उसकी विज्ञा और आचरण कैसा हैं यह जानकर राजा उसी के अनुसार वृत्ति निश्चित करे लो राजा उसकी जीविका निश्चित करके सब प्रकार उसकी रक्षा करे ऐसा करने से राजा उसके धर्म का पष्ठ भाग प्राप्त करता है। ब्राह्मण शूद्र से धन की याचना कभो न करे, क्योंकि उससे यज्ञकेर्त्ता अगले जन्म में चण्डाल बनता ।।१९-२४।।

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति ।
स याति भासतां वि काकतां वा शमं समाः ।।२१

देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः ।
स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ।।२६
इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये ।
कलृप्तानां पशुसोमानां विष्कृत्यर्थमसंभवे ।।२७
आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्विजः ।
न नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम् ।।२८

विश्वैश्चदेवैःसाध्यैश्च ब्राह्मणैश्चमहर्षिभिः ।
आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः ॥२९
प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते ।
न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥३०

यदि यज्ञ के लिए धन माँग कर ब्राह्मण उसे सम्पूर्ण रूप से यज्ञ में लगा देगा तो सौ वर्ष तक मांसभक्षी काक होता है। जो देव के निमित्त वाले उपलब्ध धन या ब्राह्मण के धन का लोभवश अपरहण करे वह पापी अगले जन्म में गृध्र का उच्छिष्ट खाकर जीवित रहता है। यदि एक वर्ष के पश्चात दूसरे वर्ष में भी पशुसोमयज्ञ न कर पावे तो उसकी दोष शान्ति के लिए शूद्र से धन लेकर वैश्वानर यज्ञ अवश्य करना चाहिए जो द्विज निरापद अवस्था में आपत्काल के समान धर्मानुष्ठान करे वह उसका फल परलोक में प्राप्त नहीं करता यह विचार पर्वक निश्चित हैं। विश्वेदेव, साध्यगण तथा मृत्यु से डरे हुये महर्षियों और ब्राह्मणों ने इस वैश्यानर यज्ञ को आपत्काल में योमयज्ञ का प्रतिनिधि माना है। जो मुख्य कर्म में समर्थ होकर भी आपत्काल वाला विधि से कर्म करता है, वह दुर्बुद्धि उस कर्म के फल को प्राप्त नहीं होता ॥२५-३०॥

न ब्राह्मणोऽवेदयेत किंचिद्राजनि धर्मवित् ।
स्ववीर्येणैव ताञ्छिष्यान्मानवानपकारिणः ॥३१
स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम् ।
तस्मात्स्वेनैव वीर्येण निगृह्णीयादरीन्द्विजः ॥३२
श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन् ।
वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन्द्विजः ॥३३

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेद पदमात्मनः ।
धनेन वैश्यशूद्रो तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥३४

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।
तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥३५

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः ।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा ॥३६

धर्मज्ञ ब्राह्मण राजा से किसी का अपकार कथन न करे, वरन् अपकार करने वालों को निज सामर्थ्य से स्वयं ही दण्ड दे अपनी और राजा की सामर्थ्य दोनों में अपनी सामर्थ्य ही विशिष्ट बलवती होती है, इसलिए अपनी सामर्थ्य से ही दमन कार्य करे । अथर्ववेद में अंगिरा द्वारा कहीं हुई श्रुति के अनुसार बिना विचारे ही करे. ब्राह्मण की वाणी ही शस्त्र है उससे शत्रु को नष्ट करे । क्षत्रिय अपने भुजबल से विपत्ति से पार हो जाय, वैश्य और शूद्र धन के द्वारा तथा ब्राह्मण अभिचारादि कर्मों के द्वारा विपत्ति को दूर करे । विधाता शासनकर्त्ता, उपदेशकर्त्ता और मैत्री कर्त्ता ब्राह्मण कहा जाता है उससे कोई विरुद्ध या रूक्ष बात न कहे । कन्या, युवती नारीं, अल्प विद्या का मूर्ख पीड़ित और अनुपनीत यह अग्निहोत्र नहीं कर सकते ॥३१-३६॥

नरके हि पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्य तत ।
तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः ॥३७

प्राजापत्यमदत्वाश्वमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम् ।
अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति ॥३८

पुण्यान्यन्य नि कुर्वीत श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
न त्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजेते ह कथंचन ॥३९

इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्ति प्रजाः पशून् ।
हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तमान्नाल्पधनो यजेत् ॥४०
(अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः ।
दीक्षितं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः)
अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन्ब्राह्मणः कामकारतः ।
चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत् ॥४१
ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते :
ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ४२

यह हवन करे तो नरक में पड़ेंगे और जिसके लिए करें वह नरक में गिरेंगे इसलिए वैदिक कर्म में दक्ष और सर्ववेदविद ही होता होना चाहिए । कोई ब्राह्मण धनवान होकर भी अग्निहोत्र की दक्षिणा में प्रजापति देव विषयक अश्व न देकर अग्न्याधान करे तो करना न करना समान ही है । श्रद्धापूर्वक जितेन्द्रिय होकर यात्रा आदि अन्य पुण्य कार्य करे किन्तु अल्प दक्षिणा देकर यज्ञ कदापि न करे । अल्प दक्षिणायुक्त यज्ञ इन्द्रियां, यश, स्वर्ग, आयु कीर्ति प्रजा और पशु को नष्ट कर देता है अतः अल्प दक्षिणा वाला यज्ञ न करे । (अन्नरहित यज्ञ देश को मन्त्र-रहित ऋत्विज् को और दक्षिणारहित यजमान को नष्ट करता है अतएव यज्ञ के समान शत्रु अन्य नहीं होता ।) अग्निहोत्री विप्र स्वेच्छा से प्रातःकालीन और सायंकालीन यज्ञ न कर पावे तो उसे एक मास तक चान्द्रायण व्रत रखना चाहिए क्योंकि अग्निहोत्र का त्याग पुत्र हत्या के समान माना जाता है । शूद्र का धन लेकर अग्निहोत्र करने वाले ब्राह्मण शूद्रों के ही ऋत्विज् हो सकते है क्योंकि वे वेदविज्ञों में निन्दनीय होते है ॥३८-४२॥

तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम् ।
पदा मस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि सन्तरेत् ॥४३

अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥४४
अकामतः कृते पापे प्रायश्चितं विदुर्बुधाः ।
कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥४५
अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति ।
कामतस्तु कृतंमोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥४६
प्रायश्चित्तीतयां प्राप्य दैवात्पूर्वंकृतेन वा ।
न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥४७
(प्रायो नाम तप प्रोक्तं चित्त निश्चय उच्यते ।
तपोनिश्चत संयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥)
इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा ।
प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूहविपर्ययम् ॥४८

शुद्र के धन से कर्म करने वाले उन मूर्खों ब्राह्मणों के सिर पर पाँव रखकर वह शूद्र संकटों मे पार हो जाता है । शास्त्रसम्मत कर्म को न करने तथा निन्द्य कर्म करने वाला विषयी मनुष्य प्रायश्चित्ती होता है । पडितजन अनिच्छा से किये हुए पाप का प्रायश्चित्त होना मानते हैं और अन्य विज्ञों के मत में श्रुति के अनुसार इच्छा से किये हुए पाप का ही प्रायश्चित किया जाता हैं । अनिच्छा से हुआ पाप वेदपाठ से शुद्ध होता है तथा मोहवश इच्छा से हुआ पाप का शोधन विभिन्न प्रायश्चितों से हो सकता है । प्रायश्चित की अवस्था को पाकर इस जन्म के अथवा पर्व जन्म के पापों का प्रायश्चित न करने वाले द्विज को सज्जनों मे संसर्ग नहीं करना चाहिए । प्रातः तप को चित्त निश्चय को तथा तप और निश्चय के मिश्रण को प्रायश्चित कहते हैं । कोई

पापी इस जन्म के अनाचरण से और कोई पूर्व जन्म के दुष्कर्म से विकृत रूप को प्राप्त करते है ॥४२-४८॥

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुराप श्यावदन्तताम् ।
ब्रह्महा क्षयरोगित्वं दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥४९
पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्त्रताम् ।
धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरेक्यं तु मिश्रकः ॥५०
अन्नहर्तामयावित्वं मौक्यं वागपहारकः ।
वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं पङ्गुतामश्वहारकः ॥५१
दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।
(हिंसया व्याधिभूयस्त्वमरोगित्वमहिंसया ॥)
एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्विगर्हिताः ।
जडमूकान्धबधिरा विकृताकृतयस्तथा ॥५२
चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
निन्द्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥५३

सुवर्ण चोर खराब नख वाला, मद्यपी काले दांत वाला, ब्रह्मघाती क्षय रोगी गुरुतल्पगामी त्वचारहित उपस्थ वाला चुगलखोर दुर्गन्धित नासिका और परनिन्दक दुर्गन्धित मुख वाला धान्यचोर अंगहीन तथा अनाजादि में मिलावटकर्त्ता अधिकाँगी, भोजनचोर मन्दाग्नि ग्रस्त, विद्याचोर गूँगा, वस्त्रचोर श्वेतकुष्ठी तथा अश्वचोर लंगड़ा होता है। (दीपकचोर अन्धा, दीपक बुझाने वाला बधिर हिंसक रोगी और अहिंसक स्वस्थ होता है। इस प्रकार कर्म की विशिष्ठता से मनुष्य जड़ मूक, अन्धा बहिरा, विरूप और सज्जनों में निन्द्य होते है ॥४९-५३॥

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ।।५४
अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ।
गुरोश्चालोकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ।।५५
ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ।
गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः सुरापान समानि षट् ।।५६
निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च ।
भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ।।५७
रेतः सेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ।।५८

ब्रह्महत्या सुरापान चोरी, गुरुतल्प-गमन यह चारो महापाप कहे है इनसो संसर्ग भी न करे। अपनी बड़ाई के लिए मिथ्या भाषण राजा से चुगली गुरु की निन्दा यह सब ब्रह्महत्या के समान है। पढ़े हुए वेद का अभ्यास न करके भूल जाना, वेद-निन्दा मिथ्या साक्ष्य, की मित्र की हिंसा निन्द्य एवं अखाद्य भक्षण ये सब मदिरापान के समान है। किसी की धरोहर मारना या मनुष्य, अश्व, चांदी, पृथिवी, हीरा, मणि आदि का हरण सोने की चोरी के समान है। सगी बहन, कुमारी कन्या चाण्डालिन मित्र की पत्नी और पुत्रवधू में रेत सिंचन गुरुतल्पगमन जैसा ही समझे ।।५४-५८।।

गोवधोऽयाज्यसंज्यपारदार्यात्मविक्रयाः ।
गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योःसुतस्य च ।।५९
परिवित्तितानुजेऽनूढे परिवेदनमेव च ।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ।।६०

कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम् ।
तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः ॥६१

व्रात्यता बान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च ।
भृत्या चाध्ययनादानमपण्यानां च विक्रयः ॥६२

सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम् ।
हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च ॥६३

इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम् ।
आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा ॥६४

अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनपक्रिया ।
असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया ॥६५

धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ।
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ॥६६

गोवध, दूषितों को यज्ञ कराना परस्त्री गमन स्वयं को बेचना गुरु-पिता-माता को छोड़ देना सन्तान का भरण-पोषण न करना परिवित्ति या परिवेत्ता को कन्या देना अथवा यज्ञ कराना कन्या को दूषित करना, ब्याज पर रुपया देना ब्रह्मचर्य भंग तडाग, बाग स्त्री या सन्तान का विक्रय, व्रात्यत्व भाई का त्याग, वेतन लेकर शास्त्र पढ़ाना वेतन देकर पढ़ना अविक्रय योग्य का विक्रय खानों में अधिकारी बनाना सेतु निर्माण में बड़ी कलें बनाना, औषधि खोदना पत्नी के व्यभिचार से जीविकोपार्जन, मारण उच्चाटनादि कर्म करना निरपराध की हिंसा, हरे पेड़ काटना अपने लिये ही रसोई पकाना निन्दित अन्न-भक्षण , अग्निहोत्र न करना, चोरी करना, ऋण का धन न लौटाना, वेदविरुद्ध शास्त्रों का अध्ययन करना अभिनय करना,

धान्य, तांबा और पशुओं की चोरी करना मदिरा पाने वाली स्त्री से संसर्ग करना, स्त्री, शूद्र, वैश्य एवं क्षत्रिय को मारना तथा नास्तिकता—यह सब उपपातक माने गए हैं ॥५८-६६।

ब्राह्मणस्य रुजः कृत्या घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः ।
जैह्म्यं मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥६७
खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा ।
संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिसहिषस्य च ॥६८
निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ।
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् ॥६९
कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम् ।
फलैधः कुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥७०
एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक्पृथक् ।
यैर्यैर्व्रतैरपोह्यन्ते तानि सम्यङ् निबोधत ॥७१
ब्रह्महा द्वादश समाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् ।
भैक्षाश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥७२

ब्राह्मण को तोड़न करना लशुन या मद्यादि को सूँघना, कुटिलता करना तथा पुरुष के साथ मैथुन करना जातिभ्रंशकर पाप कहे हैं। गधा, अश्व, ऊँट, मृग, हाथी, बकरा, भेड़, मछली सर्प और भैंस का वध करना संकरीकरण पातक है। निन्दितों से धन लेना वाणिज्य या शूद्र की सेवा करना तथा मिथ्या भाषण अपात्रीकरण पातक है। कृमि, कीट और पक्षी की हत्या मदिरा के साथ लायी हुई वस्तुओं का भोजन, फल, काष्ठ और पुष्प की चोरी तथा अधैर्य यह मलावह पातक है। उक्त पृथक्-पृथक् पाप जिन प्रायश्चित्तों से नष्ट हो सकते हैं उन्हें भले प्रकार सुनो

ब्रह्मघाती बन में कुटिया बना कर बारह वर्ष रहे और हाथ में नरमुण्ड लेकर भिक्षा मांगे तथा जो मिले उसी को खाकर निर्वाह करे ।।६७-७२।।

लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः ।
प्राप्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिराः ।।७३

तजेत वाश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा ।
अभिजिद्विश्वजिभ्दयांवा त्रिवृताग्निष्टुनापिवा ।।७४

जपन्वान्यतमं वदं योजनानां शतं व्रजेत् ।
ब्रह्महत्यापनोदाय मितभङ् नियतेन्द्रियः ।।७५

सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ।।७६

हविष्यभुग्वाऽनुसरेत्प्रतिस्त्रोतः सरस्वतीम् ।
जपेद्वा नियताहारस्त्रिर्वै वेदस्य संहिताम् ।।७७

कृतवापनो निवसेद्ग्रामान्ते गोव्रजेपि वा ।
आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः ।।७८

अथवा स्वेच्छा से स्वयं को जानकर शस्त्रधारियों का लक्ष्य बन जाय या जलती हुई अग्नि में नीचा सिर करके स्वयं को तीन बार झोंकने का प्रयत्न करे। अथवा अश्वमेध स्वर्जित्, गोसव, अभिजित, विश्वजित अथवा तीन बार अग्निष्टाम यज्ञ करे अथवा किसी एक वेद का जप करता हुआ अल्पाहार करे और जितेन्द्रिय होकर एक सौ योजन पर्यन्त गमन करे। अथवा वेदविज्ञ ब्राह्मण को सर्वस्व दे दे या उसके जीवन के लिए आवश्यक धन गृह परिच्छद सहित प्रदान करे। अथवा हविष्य खाकर सरस्वती की धारा जहां तक गई हो वहां तक गमन करे

या नियत आहार करता हुआ सम्पूर्ण वेद संहिता का तीन बार जप करे। अथवा केश मुँड़वा कर गौ ब्रह्मण का हित करता हुआ ग्राम के वाहर गोशाला कुटी या वृक्ष के नीचे रहे ॥७३-७८॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यःप्राणान्परित्यजेत् ।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च ॥७९
त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा ।
विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥८०
एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ।
समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥८१
शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे ।
स्वमेनोऽवभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते ॥८२
धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते ।
तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुद्ध्यति ॥८३
ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि दैवतम्
प्रमाणं चैव लोकस्य ब्रह्मात्रैव हि कारणम् ॥८४

अथवा गौ-ब्राह्मण की रक्षा में अपने-प्राण का परित्याग कर क्योंकि गौब्राह्मण का रक्षक ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होता है। दस्युओं से ब्रह्मण के धन को तीन बार बचाने या उसके सर्वस्व को चोरों से छीनकर उसे दे देने वाला ,या ब्राह्मण के हितार्थ प्राण देने वाला ब्रह्महत्या से मुक्त होता है। इस प्रकार दृढ़ व्रत तथा संयम चित्त से ब्रह्मचर्य धारण किये हुए बारह वर्ष तक नियम पालन करे वह ब्रह्महत्या से छूटजाता है। अथवा अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मण ऋत्विज् और यज्ञ करने वाला राजा के सम्मुख

अपने ब्रह्मघात वाले पाप की विज्ञप्ति करके स्नान करे तो पाप मुक्त हो जाता है। ब्राह्मण धर्म का मूल तथा क्षत्रिय उसका अग्रभाग होने से उनके द्वारा अनुष्ठित यज्ञ में उनके सामने पाप को प्रकट कर देने से पाप का शोधन होता है ब्राह्मण उत्पन्न होते ही देवों का भी देव एवं प्रमाण होता हैं और इसमें वेद ही कारण हैं ।।७६-८४।।

तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनः सुनिष्कृतिम् ।
सा तेषां पदिनायं स्यात्पवित्रा विदुषो हि वाक् ।।८५

अह्नोऽन्यतममास्थाय बिधिं विप्रः समाहितः ।
ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहन्यात्मवत्तया ।।८६

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ।
राजन्यवैश्यौ चेजानावात्रेयीमेव च स्त्रियम् ।।८७

उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुद्धय गुरुं तथा ।
अपहृत्य च निःक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ।।८८

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् ।
कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते ।।८९

सुरां पीत्वाद्विजो मोहादग्निवर्णा सुरां पिवेत् ।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः ।।९०

ऐसे ब्राह्मणों में तीन वेद के जानने वाले जो उपाय पाप से मुक्त होने का बतावें उससे भी पाप का शोधन हो सकता हैं, क्योकि विज्ञजनों की वाणीं स्वयं ही पवित्र होती हैं । इसलिए संयत चित्त हुआ वह ब्राह्मण किसी भी प्रायश्चित्त विधि के द्वारा आत्मनिष्ठा पूर्वक ब्रह्महत्या के पाप से छूट सकता हैं । अज्ञात गर्भ यज्ञ का अनुष्ठान करता हुआ क्षत्रिय, वैश्य एवं रजस्वला

स्त्री की हत्या का प्रायश्चित्त भी ब्रह्महत्या के समान ही है, मिथ्या साक्ष्य, गुरुनिन्दा धरोहर का हरण तथा स्त्री और मित्र का वध इनका प्रायश्चित्त भी ब्रह्महत्या के ही समान करे। अनिच्छापूर्वक की गई ब्रह्महत्या की यह विधि हुई, किन्तु इच्छा पूर्वक ब्रह्मघात करे तो उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। यदि ब्राह्मण मोहवश मदिरा पान करले तो उसे पाप से छूटने के लिए अग्नि के रंग की गर्म मदिरा पीवे जिससे कि उसका शरीर जल जाय ॥८८-९०॥

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिवेदुदकमेव वा ।
पयो घृतं वामरणाद्गोशकृद्रसमेव वा ॥९१
कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ।
सुरापानापनुत्यर्थं वालवासा जटा ध्वजी ॥९२
सुरां वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिवेत् ॥९३
गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधासुरा ।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥९४
यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं माँसं सुरासवम् ।
तद्ब्राह्मणेन नात्तव्य देवानामश्नता हविः ॥९५
अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकां वाप्युदाहरेत् ।
अकार्यंत्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः ॥९६

अथवा गोमूत्र जल गाय का दूध दही और गोबर में से किसी एक को अग्नि के समान वर्ण का करके मरण पर्यन्त पीता रहे। अथवा मदिरा पीने का दोष नष्ट करने के लिए ऊनी वस्त्र जटा और सुरापान का चिन्ह धारण करे तथा निरन्तर एक वर्ष

पर्यन्त किसी अन्न मिट्टी अथवा तिल की खली खाकर ही जीवन यापन करे। मदिरा अन्नों का मल होता है। मल का अर्थ पाप है अतः ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य मदिरा का सेवन न करें। मदिरा के तीन भेद हैं गौडी पेष्टी और माध्वी अर्थात् गुड़ की मिठाई के बक्खर की और महुए को यह तीनो समान हैं इसलिए इनमें से किसी का भी सेवन कोई द्विजोत्तम न करे। मद्य, माँस, मदिरा और आवस यह सब यक्षों और राक्षसों के लिए सवनीय हैं, इसलिए देवताओं के हव्य का भक्षण करने वाले ब्राह्मण इनका सेवन न करें। मदोन्मत हुआ ब्राह्मण अपवित्र स्थान में जा गिरे या वैदिक वाक्यों को बड़बड़ाता रहे अथवा किसी अकार्य को ही कर बैठे मदिरापान के इन परिणामो के कारण मदिरा का स्पर्श भी न करे ॥९१-९३॥

यस्त कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ।
तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ॥९७
एषा विचित्राभिहिता सुरापानस्य निष्कृतिः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ॥९८
सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु ।
स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥९९
गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् ।
वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥१००
तपसापनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥१०१
एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ।
गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥१०२

ब्राह्मण के शरीर में स्थित जो आत्मा मदिरा से एक बार भी सिंच जाय तो उसका ब्राह्मणत्व नहीं रहता और शूद्रत्व की प्राप्ति हो जाती है। सुरापन का यह अद्भुत प्रायश्चित्त हुआ अब स्वर्णचोरी का प्रायश्चित कहेंगे। स्वर्ण चुराने वाला ब्राह्मण राजा के समक्ष पहुँचकर अपने कर्म को बताता हुआ कहेकि मुझे दण्ड दीजिये। तब मूशल ग्रहण करके राजा उस पर स्वयं ही एक बार प्रहार करे, भिन्न वर्णका स्वर्णचोर वध से और ब्राह्मण तप से शुद्ध होता है, स्वर्ण चुराने वाला ब्राह्मण अपने पाप से मुक्त होने की इच्छा से जीर्ण वस्त्र धारण कर वन में जाय और प्रायश्चित करे। पहिले कहे प्रायश्चितों को करता हुआ द्विज ब्रह्महत्या के पापोंका नाश करे तथा आगे कहे जाने वाले उपायों से गुरुतल्प गमन के पापों को नष्ट करे ॥९७-१०२॥

गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये।
सूर्मीं ज्वलन्तीं स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुद्ध्यति ॥१०३

स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ।
नैरृतीं दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः ॥१०४

खट्वाङ्गी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः ॥१०५

चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः।
हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये ॥१०६

एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनो मलम्।
उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्नानाविधैर्व्रतैः ॥१०७

उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत्।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥१०८

गुरुतल्पगामी अपने पाप का बखान करता हुआ लोहे की तप्त शय्या पर शयन करे अथवा लोहेकी नारीमूर्ति बनाकर अग्निवर्ण का तप्त करके उसका आलिंगन करे, इस प्रकार मरने पर पापसे छूटता है। अथवा अपने उपस्थ और वृषण को स्वयं काटकर अजलि में ले ले और नैऋत दिशा में तब तक दौड़ता रहे, जब तक कि मृत्यु न हो जाय। अथवा गुरुपत्नीगमन का पाप शोधन करने के लिए जितेन्द्रिय होकर तीन मास पर्यन्त हविष्यादि खाकर या यवागू पीकर चन्द्रायण व्रत को करे। पीछे कहे गये व्रतों से महापापी अपने पापों को नष्ट करें और आगे कहे जाने वाले व्रतों से उपपातकी अपने पापों को दूर करें। गोहत्या करने वाला उपपातकी एक मास तक यवागू पीवे और चोटी सहित सिर के बाल मुड़ाकर हत्या की हुई मृत गौ का चर्म ओढ़कर गोशाला में रहे ॥१०३-१०८॥

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवण मितम् ।
गौमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥१०९

दिवानुगच्छेद्गास्तास्सु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजःपिबेत् ।
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् ॥११०

तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ।
आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः ॥१११

आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः ।
पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥११२

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥११३

आत्मनो यदि वान्येषां गृहेक्षेत्रेऽथवा खले ।
भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥११४

दो मास पर्यन्त जितेन्द्रिय रहकर गोमूत्र से नित्य स्नान करे और तीन सन्ध्या उपवास करके चौथी संध्यामें क्षार-लवण रहित हविष्य का भोजन करे। दिनमें गौओं के पीछे-पीछे जाकर उनके खुरों सेउड़ती हुई धूल को फाँके, रात्रि में उनकी शुश्रूषा कर नमस्कार करे और वीरासन लगाकर उनके समीप बैठे। गौओं के खड़े होने पर स्वयं भी खड़ा हो जाय, यदि वे चले तो उनके पीछे-पीछे चले और वे बैठे तो बैठ जाय, और कभी क्रोध न करे, यह दिनचर्या तीन मास पर्यन्त नित्य नियमपूर्वक करे। व्याधिग्रस्त चोर व्याघ्रादि दुष्टों से भयभीत गिरी या कीचड़ में फँसी गौ को उद्धृत करने का यथा सम्भव उपाय करे। गर्मी, वर्षा और शीत काल या वेगपूर्वक बहती हुई वायु के समय जब तक यथा संभव गौ की रक्षा न करले तब तक अपकी रक्षा न करे। अपने या पराये घर में क्षेत्र में या खलिहान में अन्न भक्षण करती हुई गौ और दूध-पोते बछड़े को न तो स्वयं रोके और न किसी दूसरे से ही रोकने को कहें ॥१०९-११४॥

अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति ।
स गोहत्या कृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥११५

वृषभैकादशा गाश्च दत्त्वात्सुचरितव्रतः ।
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥११६

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः ।
अवकीर्णि वर्ज्यं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥११७

अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे ।
पाकयज्ञविधानेन जयेत् निर्ऋतिं निशि ॥११८

हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्ततश्च समेत्यृचा ।
वातेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाहुतीः ॥११९

कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः ।
अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ॥१२०

जो गौ हत्यारा गौ की इस प्रकार से सेवा करता है, उसको गोवध का पाप तीन मास में निःशेष हो जाता हैं । भले प्रकार से व्रत का आचरण करता हुआ पातकी वेदज्ञ विप्रों को एक बैल और दस गौएँ दे, यदि उतने गौ-वृषभ न हों तो उन्हें अपना सर्वस्व दान कर दे। भ्रष्टव्रती के अतिरिक्त उपपातकी द्विज पापशोधन के निमित्त उक्त व्रत अथवा चान्द्रायण व्रत करे। अवकीर्णी (भ्रष्टव्रती) चौराहे में काने गधे के द्वारा पाकयज्ञ के विधान से रात्रि के समय निर्ऋति देवता का यजन करे। अग्नि में विधिवत हवन करके 'समासिंचन्तु मारुतः इस ऋचा से वायु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि को घृताहुति दे। जो ब्रह्मचारी द्विज स्वेच्छा से वीर्य का सिंचन करे उसका व्रत-भंग हो जाता है, धर्मज्ञ ब्रह्मवादियों का ऐसा ही कथन है ॥११५-१२०॥

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च ।
चतुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः ॥१२१

एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम् ।
सप्तागाराश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥१२२

तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुद्ध्यति ॥१२३

जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया ।
चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥१२४

संकरापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम् ।
मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकैस्त्र्यहम् ॥१२५

तुरीयो ब्रह्महत्यायः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ।
वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥१२६

ब्रह्मचारी के भ्रष्टव्रत होने पर उसका ब्राह्मतेज वायु, इन्द्र, गुरु और अग्नि के पास जा पहुंचता है । भ्रष्टव्रत रूप पाप होने पर पहिले कहा हुआ गर्दभ यज्ञ करके गधे का चर्म पहन कर अपने पाप कर्म को कहता हुआ सात घरों से भिक्षा माँग कर यावे। उस भिक्षा से दिन-रात्रि में एक समय ही आहार और तीन बार स्नान करे तो अवकीर्णी अपने पाप से एक वर्षमें शुद्ध होता है । जातिभ्रंशकर पापों में स्वेच्छा से बुरा कर्म करने पर कृच्छ्र सान्तपन व्रत तथा अनिच्छा से आगे वर्णित प्राजापत्य व्रत करे । संकरीकरण और अपात्रीकरण दोनों में से किसी एक को स्वेच्छा से करे तो उस पाप की शुद्धि के लिए चांद्रायणव्रत करे तथा मलिनीकरण पापों की शान्ति के लिए तीन दिवस पर्यन्त तप्त लपसी का भक्षण करे । क्षत्रिय की हत्या में ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त का चतुर्थ भाग अपने कर्म में निष्ठावान वैश्य की हत्या में अष्टमांस और शूद्र की हत्या में षोडशाँस करे ॥१२०-१२६॥

अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तम ।
वृषभैकसहस्रा गा दद्यात्सुचरितव्रतः ॥१२७

त्र्यब्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम् ।
वसन्दूरतरे ग्रामाद्वृक्षमूलनिकेतनः ॥१२८

एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ।
प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम् ॥१२९

एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासाच्छूद्रहा चरेत् ।
वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः ॥१३०

मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च ।
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥१३१

पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाध्वनो व्रजेत् ।
उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा सूक्तं वाब्दवतं जपेत् ॥१३२

अनजाने में क्षत्रिय की हत्या करने वाला ब्राह्मण यथाविधि व्रत का अनुष्ठान करता हुआ एक बैल और एक सहस्र गौएँ ब्राह्मणों को दे। अथवा जटा धारण करके ग्राम से दूर किसी वृक्ष के नीचे तीन वर्ष पर्यन्त रहकर ब्रह्महत्या का प्रायश्चित करे। सच्चरित्र वैश्य के मरने पर भी इसी प्रायश्चित को एक वर्ष तक करे अथवा ब्राह्मण को एक सौ एक गौएँ दे। अनजाने में शूद्र की हत्या करने वाला पहिले कहे हुए व्रतों का छः मास तक अनुष्ठान करे। या ब्राह्मण को एक वृषभ और दस गौएँ सफेद रंग की दान करे। बिल्ली, न्यौला, नीलकण्ठ, मेंढ़क श्वान, गोह, उलूक और काकको मारने वाला शूद्रको मारने वाला प्रायश्चित करे। अथवा तीन रात्रि पर्यन्त केवल दुग्धपान करके रहे, या एक योजन पैदल चले, या नदी में स्नान करे अथवा 'आपोहिष्ठा' मंत्र का जप करे ।।१२६-१३०।

अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ।
पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैकमाषकम् ॥१३३

घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ ।
शुके द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम् ॥१३४

हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च ।
वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम् ॥१३५

वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नीलान्वृषान्गजम् ।
अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम् ॥१३६

क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ।
अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥१३७

जीनकार्मुकबस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये ।
चतुर्णामपि वर्णानां नारीहत्वाऽनवस्थिताः ॥१३८

ब्राह्मण से सर्प मर जाय तो लोहे का नोंकदार डंडा और षण्ढ की हत्या हो जाय तो एक भार पूआल और एक माशा सीसा का दान करे। शूकर मर जाय तो एक घृतकुम्भ, तीतर मरे तो द्रोणभर तिल, तोता मरे तो दो वर्ष का गोवत्स और कौंकपक्षी मरे तो तीन वर्ष के गोवत्स का दान करे। हंस, वकुल मयुर वानर बाज और भास पक्षी में से किसी को मारे तो गोदान करे। अश्ववध में वस्त्र, हस्थिवध, में पाँच नीलवृषभ, बकरा या भेड़ के वध में एक वृषभ तथा गधे के वध में एक वष का गोवत्स दान कर। कच्चा मांस भक्षण करने वाले व्याघ्रादि का वध होने पर दुधारु गौ' तृणभोजी वन्य पशुओं का वध होने पर युवती गौ और ऊँट का वध होने पर एक रत्ती स्वर्ण का दान करे। चारों वर्णों की व्यभिचारिणी स्त्रियों के मरने पर यथाक्रम चमपुट, धनुष बकरा और भेड़ दान करे॥ ३३-१३८॥

दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन् ।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ॥१३९

अस्थिमतां तु सत्वनां सहस्रस्य प्रमापणे ।
पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥१४०

किंचिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे ।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥१४१

फलदानां तु वृक्षानां छेदने जप्यमृक्शतम् ।
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम् ॥१४२

अन्नाद्यजानां सत्वानां रसजानां च सर्वशः ।
फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥१४३

कृष्ट जानामोसधीनां जतानां च स्वयं वने ।
वृथालम्भेऽनुगच्छेद्गां दिनमेकं पयोव्रतः ॥१४४

सर्पादि की हत्या पाप यदि दान के द्वारा दर करने में समर्थ न हो तो प्रत्येक पाप के शोधनार्थ एक कृच्छ्रप्राजापत्य करना चाहिए। अस्थियुक्त क्षुद्रजीवों की एक हजार हत्याओं या गाड़ी भरे अस्थिरहित प्राणियोंकी हत्याओं पर शूद्रवध वाले प्रायश्चित को करे। अस्थियुक्त क्षुद्र जीवों के मरने पर ब्राह्मणों को कुछ दान करे और अस्थिरहितों के मरने पर प्राणायाम करे तो शुद्धि हो जाती है। फलयुक्त वृक्ष, गुल्म, बेल-लता और पुष्पयुक्त पौधे के काटने पर सौ बार गायत्री मंत्र जपे। अनाज गुड़ आदि रस एवं पुष्प-फल में उत्पन्न जीवों की हिंसा का पाप शोधन घी के भक्षण से हो जाता है। जोते हुए खेत में उत्पन्न धान्यों और वन में उत्पन्न पौधों को व्यर्थ काटने पर एक दिन केवल दूध पीकर रहे और गौ के पीछे-पीछे चले ॥१३९-१४४॥

एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम् ।
ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतानाद्यभक्षणे ॥१४५

अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ।
मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥१४६

अपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्ड स्थतास्तथा ।
पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शंखपुष्पीश्रितं पयः ॥१४७

स्पृष्ट्वा दत्व च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च ।
शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशवारि पिबेत्त्र्यहम् ॥१४८

ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः ।
प्राणानप्सु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥१४९
अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥१५०

इस प्रकार जाने अनजाने में हुए हिंसाजनित सब पापों को पहिले कहे हुए व्रतों के अनुष्ठान से नष्ट करें अब अभक्ष्य पदार्थ खाने के प्रायश्चित श्रवण करो । द्विज अनजाने में मदिरा पीले तो संस्कार द्वारा पुनःशुद्ध होता है, किन्तु जानकर पीवे तो कोई प्रायश्चित हो सकता है षष्ठी या अन्य मदिरा के पात्र में रखा हुआ जल पीवे तो शंखपुष्पों के साथ गर्म दूध का पांच रात्रि तक पान करे । मदिरा को छूकर स्वस्तिवाचन करता हुआ उसे ग्रहण करे या उच्छिष्ट जल पी ले तो कुश मिश्रित औंटे हुए जल को तीन दिन पर्यन्त पीवे । सोमयज्ञ का अनुष्ठाता ब्रह्मण यदि किसी मदिरा पीने वाले के मुख की गंध सूंघ लेतो जल के भीतर तीन बार प्राणायाम करके घी खायतो शुद्ध होजाता है। यदि अनजाने में मल, मूत्र या मदिरा सेयुक्त कोई रस पीले तो द्विजाति के तीनों वर्ण पुनः संस्कार से शुद्ध होंगे ॥ ४५-१५० ।

वपनं मेखला दण्डो भैक्षचर्या व्रतानि च ।
निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥१५१
अभोज्यानां तु भुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेवच ।
जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥१५२
शुक्तानिचकषायांश्च पीत्वा मेध्यान्यपि द्विजः ।
तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः ॥१५३

विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः।
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रयणं चरेत् ॥१५४

शुष्क णिभुक्त्वामांसानि भौमानिकवकानि च।
अज्ञातं चैव सूलास्थमेतदेव व्रतं चरेत् ॥११५५

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे।
नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥१५६

द्विजाति के पुनः संस्कार में मुण्डन, मेखला दण्ड, भिक्षा और ब्रह्मचर्य व्रत का निधान नहीं है। जिनका अन्न खाना निषिद्ध है, उनका अन्न, स्त्री और शूद्रों का उच्छिष्ट तथा अभक्ष्य मांस का भक्षण कर सात रात्रि पर्यन्त यवागू अथवा जौ युक्त जौ का सत्तू घोलकर पीवे। सिरका और अर्कशुद्ध होने पर भी उसे पीकर द्विज तब तक शुद्ध नहीं होता जब तक कि वह देह में भले प्रकार नहीं पच जाता। ग्राम्य शूकर, गधा, ऊँट शृगाल वन्दर ओर कौआ, यदि इनका मल मूत्र द्विज खाले तो चन्द्रायण व्रन करें। शुष्क मांस, अन्य वस्तु के रूप में प्रतीत होने वाला मांस, वधिक के यहां का माँस तथा गोबरछत्ता खा ले तो वही उपरोक्त व्रत करे। कच्चा मांस भक्षण करने वाले पशु, शूकर, ऊँट कुक्कुट, मनुष्य, कौआ और गधा में से किसी का मांस जानवूझ कर खा ले तो पाप के शोधनार्थ तप्तकृच्छ्र व्रत करे ॥१६३-१५६॥

मासिकान्नं तु योऽश्नीयादसमावर्तको द्विजः।
स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ॥१५७

ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं कथकन।
स कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥१५८

बिडालकाकाखूच्छिष्टंजग्ध्वा श्वानकुलस्य च।
केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्रह्मसुवर्चलाम् ॥१५९

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता ।
अज्ञानभुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाप्याशु शोधनैः ।१६०

एषोऽनाद्यदनस्योक्तो व्रतानां विविधो विधिः ।
स्तेयदोषापहर्तृणां व्रतानां श्रूयतां विधिः ।।१६१

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः ।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्राब्देन विशुद्धयति ।।१६२

मासिक श्राद्ध का अन्न खाकर ब्राह्मण तीन दिन उपवास करे और एक दिन केवल जल पीवे । यदि ब्रह्मचारी मधु-मांस का भक्षण करले, वह प्राजापत्यव्रत को सम्पन्न करके ब्रह्मचर्य व्रत को तोड दे । बिल्ली, काक, मूषक, अश्व और न्यौला का उच्छिष्ट और केश या कीट युक्त अन्न खाकर ब्रह्मसुदर्चला क्वाथ का पान करे । जो अपनी शुद्धि की इच्छा रखता हो, वह अशुद्ध अन्न कदापि न खाय, यदि अनजाने में खा भी ले तो वमन के द्वारा निकाल दे अथवा प्रायश्चित करके पवित्र हो जाय । यह अभक्ष्य-भक्षण का विधान कहा गया, अब चोरी के दोष नष्ट करने वाले व्रतों का विधान सुनिये । जो ब्राह्मण अपने सजातीय के गृह से अनाज, पका अन्न या द्रव्यादि जान बूझकर चुरावे, उसकी पाप से शुद्धि एक वर्ष पर्यन्त प्राजापत्य व्रत करने से होगी ।।१५७।१६२।।

मनुष्याणां तु हरेण स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ।
कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ।।१६३

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मतः ।
चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ।।१६४

भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ।
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ।।१६५

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च ।
चेलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥१६६

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजस्य च ।
अयः कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नता ॥१६७

कार्पासकीटजीर्णासां द्विशफकशफस्य च ।
पक्षिगन्धौनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥१६८

मनुष्य, स्त्री, क्षेत्र, गृह कूप, और वापी का जल चुराने पर चान्द्रायण व्रत करे। किसी के घर से सामान्य वस्तु चुराने वाला अपनी शुद्धि के लिए उस वस्तु को वापिस दे दे और कृच्छ्रपन्तिपन वृत करें। भक्ष्य, भोज्य, यान, शय्या, आसन, पुष्प, फल और मूल की चोरी करने पर पचगव्य का पान करे। तृण, काष्ट, वृक्ष, शुष्क अन्न, गुड़, वस्त्र, चर्म और माँस में से कोई वस्तु चुरावे तो तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करे। मणि मुक्ता, प्रवाल, ताम्बा, चाँदी, लोहा, काँसा और पाषाण में से किसी वस्तु का हरण करे तो तीन दिन पर्यन्त केवल दूध पीवे। सूती, रेशमी एवं ऊनी वस्त्र, अश्ववृषभादि पशु, पक्षियाँ, कपूर, चन्दन औषधि और रस्सी में से किसी वस्तु का हरण करने तीन दिन तक केवल दूध पीवें ॥१६३-१६८॥

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ।
अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥१६९

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु ।
सख्युपुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥१७०

पतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्त्रीयाँ मातुरेव च ।
मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१७१

एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान् ।
ज्ञातित्वेनानुपेयास्ताः पतति ह्युपयन्नधः ॥१७२

अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु ।
रेतःसिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥१७३

मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः ।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ॥१७४

उक्त प्रकार से द्विजाति की चोरीका पाप नष्ट करना चाहिए अब अगम्या से गमन के पाप में किये जाने वाले व्रतों को कहेंगे। सगी भगिनी, मित्र की भार्या, पुत्र की बहू, कुमारी और अन्यजा के साथ संसर्ग करने वाला गुरुतल्पगामी के समान प्रायश्चित करे। फुफेरी, मौसरी या ममेरी बहिन से संगर्ग करने वाला चान्द्रायण व्रत में अनुष्ठित हो। बुद्धिमान पुरुष को उक्त तीनों के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित नहीं करने चाहिए, क्योंकि बहिन के सम्बन्ध से यह व्याह के अयोग्य तथा नरक प्राप्त करने वाली है जो पुरुष अमानुषी (पशुयोनि) रजस्वला अथवा योनि से भिन्न अंग में या जल में वीर्य सिंचन करे उसे कृच्छ्रसान्तपर व्रत करना चाहिए। बैलगाड़ी में, जल में, अथवा दिन में किसी पुरुष या स्त्री से मैथुन करे तो सचैल स्नान करे ॥१६९-१७२॥

चण्डालान्त्यस्त्रियोगत्वाभुक्त्वाच प्रतिगृह्यच ।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥१७५

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि ।
यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥१७६

सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता ।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याःपावनं स्मृतम् ॥१७७

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः ।
तद्भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥१७८

एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः ।
पतितैः संप्रयुक्तानामिमाः शृणुत निष्कृतीः ॥१७९

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।
याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात् ॥१८०

यदि ब्राह्मण अनजान में किसी चण्डाल या म्लेच्छ की स्त्री से संसर्ग करे या उनका अन्न खाय या उनसे दान ले तो पतित हो जाता है, यदि जान बूझकर वैसा करे तो उन्हीं के समान हो जाता है। स्वेच्छा से व्यभिचार-रत स्त्री को उसका पति एक घर में बन्द रखकर परनारी गमन में पुरुष वाले प्रायश्चित्त का ही उससे करावे। ऐसा करने पर भी यदि वह स्त्री पुनः किसी सजातीय पुरुष से संसर्ग करे तो उससे कृच्छ्रचान्द्रायण व्रत कराना चाहिए। जो द्विज चाण्डाली के साथ एक रात्रि गमन करके जो पाप-अर्जन करता हुआ तीन वर्ष में नष्ट कर पाता है। यह चार प्रकार के पाप करने वालों का प्रायश्चित कहा गया, अब पपिता से संसर्ग करने के दोष से छूटने की विधि सुनिये। पतित के साथ भोजन करने तथा एक आसन या सवारी पर बैठने से एक वर्ष में पतित होता है, किन्तु उसे यज्ञ कराने पढ़ाने या उससे विवाहादि सम्बन्ध स्थापित करने से तुरन्त ही पतित हो जाता है ॥१७५-१८०॥

यो तस्यैव पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ।
स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥१८१

पपितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः ।
निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसंनिधौ ॥१८२

दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा ।
अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह ॥१८३

निवर्तेरंश्च तस्मात्तु संभाषणसहासने ।
दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा चैव हि लौकिकी ॥१८४

ज्येष्ठता च निवर्तेत ज्येष्ठावाप्यं च यद्धनम् ।
ज्येष्ठांश प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः ॥१८५

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् ।
तेनैव सार्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥१८६

जो मनुष्य जिस प्रकार के पतित से संसर्ग करता है वह पवित्र होने के लिए उसी प्रकार से प्रायश्चित करे । पतित के जीवन रहते हुए भी उसे मरा हुआ मान कर उसके सपिण्ड बान्धव ग्राम से बाहर पहुंचकर जाति के पुरोहित और गुरु के समक्ष किसी निन्दित तिथि में सायंकाल उसे जलांजलि दे। सपिण्डों की प्रेरणा से दक्षिण की ओर मुख करके खड़ी हुई दासी जल से परिपूर्ण घट को प्रेम के निमित्त लुड़काने के समान ही लुड़का दे और फिर व सपिण्ड एक अहोरात्र का सूतक मानें। फिर उस महापापी पतित के साथ संभाषण,आसन या स्थानादि पर बैठना, भोजन करना या लेन देन का व्यहारादि सब कुछ छोड़ दे। पतित होने पर बड़े भाई का ज्येष्ठांश नही रहता, उसका प्राप्य धन या ज्येष्ठांश वह छोटा भाई प्राप्त करेगा जो अन्य भाई की अपेक्षा गुण में अधिक हो . यदि पतित प्रायश्चित करले तो सपिण्ड बांधवादि उसके साथ पुनीत जलाशय में स्नान करें और जल से परिपूर्ण नवीन घट जल में फेंक दें। १८१-१८६।

स त्वप्सु तं घटं प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वकम् ।
सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥१८७

एतदेव विधिं कुर्याद्योपित्सु पतितास्वपि ।
वस्त्रान्नपानं देयं तु वसेयेश्च गृहान्तिके ॥१८८

एनस्विभिरनिर्णिक्तर्नार्थं किंचित्सहाचरेत् ।
कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥१८९

बालघ्नांश्च कतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मत् ।
शरणागत हन्तृंश्च स्त्रीर्हन्तृंश्च न संवसेत् ॥१९०

येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधिः ।
तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् ॥१९१

प्रायश्चितं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः ।
ब्राह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥१९२

उस घाट को जल में फैंककर वह अपने घाट में घुसे और बाधवादि के साथ पूर्ववत व्यवहार करें । जाति वान्धव पतित स्त्रियों के साथ भी यही व्यवहार करें, किन्तु उन्हें अन्न, जल और वस्त्र अवस्त दिया जाय, वे स्त्रियाँ घर के निकट पृथक् कुटी बनाकर रहें । प्रायश्चित न करने वाले पापियों से किसी प्रकार का व्यवहार न करें और जिन्होंने प्रायश्चित कर सिया हो उनकी निन्दा कदापि न करें । बालघ्न, कृतघ्न और शरणागत या स्त्री का वध करने वाले व्यक्ति यदि प्रायश्चित करके शुद्ध हो जाँय तो भी उनका संसर्ग न करो। जिन द्विजों का यथाविधि उपनयन संस्कार न हुआ हो, उनसे तीन ताजपत्य व्रत कराने के पश्चात् विधिवत यज्ञोपवीत कर दे। वेदविद्याविहीन एवं निषिद्ध-कर्मा द्विज यदि प्रायश्चित करने के इच्छुक हों यो उनको भी यही उपदेश देना चाहिए ।।१८७-१९२।।

यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् ।
तस्यौत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥१९३

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याःसहस्राणि समाहितः ।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ।।१९४
उपवासकृशं तं तु गोव्रजात्पुनरागतम् ।
प्रणतं प्रति पृच्छेयुःसाम्यं सौम्येच्छसीति किम् ।।१९५
सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसं गवाम् ।
गोभिः प्रवर्तिते तार्थे कुर्यस्तस्य परिग्रहम् ।।१९६
व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च ।
अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ।।१९७
शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः ।
संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति ।।१९८

निन्दित कर्म से धनोपार्जन करने वाले ब्राह्मण यदि उस अर्जित धन का दान कर जप-तप करें तो पाप मुक्त हो जांय। उपवास से दुर्बल होकर गोशाला से लौटे हुए उस विनम्र व्यक्ति से ब्राह्मण इस प्रकार प्रश्न करें कि क्या तुम हममें मिलना चाहते हो अब तो निन्दित कर्म न करोगे! वह उत्तम में कहे कि मैं सत्य कहता हूँ फिर कभी एसा दान नहीं लूँगा फिर वह गौ के समक्ष घास रखे और गौ उस घास को खा ले तो ब्राह्मण उसे अपने साथ मिला लें व्रात्यों का याजन असम्बन्धियों के दाहादि संस्कार अभिचार और अहीन यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण तीन कृच्छ्रव्रत करके पवित्र होता है। शरणागत की रक्षा न करना या अनधिकारी को वेद पढ़ाना इस दोष से मुक्ति एक वर्ष पर्यन्त जौ का भोजन करने से होती है ।।१९३-१९८।।

श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च ।
निराश्चौष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति ।।१९९

षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव वा ।
होमाश्च सकला नित्यमपाङ्क्त्यानांविशोधनम् ॥२००
उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः ।
स्नात्वा तु विप्रोदिग्वासाःप्राणायामेनशुद्ध्यति॥२०१
विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं संनिवेश्य च ।
सचैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुद्ध्यति ॥२०२
वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ।
स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥२०३
हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ।
स्नात्वानश्नन्नहः शेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥२०४

श्वान, शृगाल, गधा कच्चा मांस भक्षण करने वाले विलाव आदि मनुष्य,अश्व ऊँट, और शूकर जिसे काट ले वह प्राणायाम करके शुद्ध होता है । अपांक्तेय पतित मनुष्य एक महीने भर तीसरे दिन सायंकाल भोजन और वेद संहिता का जप अथवा होमादि करें इससे शुद्धि होती है । ऊँट या गधे की स्वेच्छापूर्वक सवारी नंगा होकर स्नान करने वाला ब्राह्मण प्राणायाम से पवित्र होता है । यदि अधिक वेग के कारण शुष्क स्थान में अथवा जल में मलमूत्र त्याग कर दे तो इस दोष से छूटने के लिए ग्राम के बाहर किसी नदी या जलाशय में सचैल स्नान करके गौ का स्पर्श करे यदि वेदोक्त नित्यकर्मों का उल्लंघन और स्नातकव्रतों का लोप हो जाय तो एक दिन उपवास रखना ही उस दोष का प्रतीकार है । यदि ब्राह्मण को हुंकार और अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति को त्वंकार अर्थात् 'तू' कह बैठे तो उसी समय से दिन के अन्त तक स्नान करके किन्तु बिना भोजन किये ही उसके चरण पकड़ कर प्रसन्न करे ॥१९९-२०४॥

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वाबध्य वाससा ।
विवादे वा विनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥२०५
अवगूर्य त्वब्दशतं सहस्रमभिहत्य च ।
जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकं प्रतिपद्यते ॥२०६
शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीत्तले ।
तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत् ॥२०७
अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥२०८
अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामपनुत्तये ।
शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चितं प्रकल्पयेत् ॥२०९
यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति ।
तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् ॥२१०

ब्राह्मण का तृण से भी ताड़न करने, उसके कंठ में वस्त्र डालने अथवा विवाद में उसे जीत लेने पर भी प्रणाम द्वारा प्रसन्न करना चाहिए। ब्राह्मण को वध की धमकी देने पर सौ वर्ष पर्यन्त तथा दण्ड प्रहार से हजार वर्ष पर्यन्त नरक में रहना होता है। धरती पर गिरा हुआ ब्राह्मण का रक्त धूलि के जितने कणों को लिप्त करता है, उतने हजार वर्ष तक वह रक्त गिराने वाला नरक में वास करता है ब्राह्मण को मारने के लिए लकड़ी उठाने पर कृच्छ्रव्रत लकड़ी से मारने पर अतिकृच्छ्रव्रत तथा शोणित बहाने पर दोनों ही व्रतों को करे। जिन पापों का प्रायश्चित्त नहीं बताया गया उन्हें दूर करने के लिए पाप करने वाले की दैहिक और आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार प्रायश्चित्त का विधान करे। जिन उपायों से मनुष्य पाप को नष्ट कर सकता है,

वे देवता ऋषि और पितरो द्वारा किये गये उपाय कहे जाते है ।।२०५-२१०।।

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः ।।२११
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पि कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ।।२१२
एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः ।।२१३
तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ।
प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ।।२१४
यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ।।२१५
एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं व्रतम् ।।२१६

प्राजापत्य के आचरण वाला द्विज तीन दिन प्रात; तीन दिन सायंकाल और तीन दिन किसी से याचना किये बिना जो मिल जाय उसी को खाकर रहे और फिर तीन दिनों तक कुछ भी न खाय। गो मूत्र, गोबर, गोदुग्ध, दही, घृत और कुश का जल, इन सवका मिश्रत कर पीवे और दूसरे दिन उपवास करे, यह कृच्छसान्तपनव्रत कहा गया है। जो अतिकृच्छ करे, उसे तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल और तीन दिन बिना माँगे मिल जाय वह अन्न एक-एक ग्राम खाना चाहिए और शेष तीन दिन उपवास करें। तप्तकृच्छ करने वाला विप्र नित्य एक बार स्नान करके तीन दिन उष्ण जल, तीन दिन उष्ण घृत

और तीन दिन उष्ण वायु का पान करे। मन इन्द्रियों को रोक कर बारह दिन निराहार रहे यह सर्व पाप नाशकपरा व्रत है। त्रिकाल स्नान करता हुआ कृष्णपक्ष में एक-एक ग्रास नित्य कम तथा शुक्लपक्ष में तिथि के अनुक्रम से एक-एक बढ़ाकर भोजन करे तो यह चान्द्रायण व्रत कहा जाता है ॥२११-२१८॥

एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे।
शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम् ॥२१७
अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यंदिने स्थिते।
नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥२१८
चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ॥२१९
यथाकथंचित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः।
मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥२२०
एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्चाचरन्व्रतम्।
सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः ॥२२१
महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहम्।
अहिंसासत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत् ॥२२२

शुक्लपक्ष के प्रारम्भ से पहिले कही हुई विधि के अनुसार व्रत का आचरण करे तो वह यवमध्यम चान्द्रायण कहा जायगा। यतिचान्द्रायण का कर्त्ता शुक्लपक्ष अथवा कृष्णपक्ष से आरम्भ करके एक मास पर्यन्त जितेन्द्रिय होकर नित्य मध्याह्न काल में आठ ग्रास हविष्य का आहार करे। नित्य चार ग्रास प्रातःकाल और चार ग्रास सूर्यास्त के उपरान्त एक महीने तक भोजन करे मुनिजन इसे शिशुचान्द्रायण कहते है। मन इन्द्रियों को वश में

करके जो अनिश्चित रूप से एक मास में दो सौ चालीस ग्रास खाय, वह चन्द्रलोक को गमन करता है। रुद्र, सूर्य वसु, मरुत्, देवता और महर्षियों ने भी सब पापों से छूटने के लिए इस चान्द्रायणव्रत को पूर्वकाल में किया था। महाव्याहृतिहोम नित्य प्रति घृत से स्वयं करे, उस समय हिंसा, क्रोध, कुटिलता और मिथ्या भाषण न करें।।२१७-२२२।।

त्रिरह्नस्त्रिर्निशायां च सवासा जलमाविशेत् ।
स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित्।।२२३

स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽधः शयीत वा ।
ब्रह्मचारी व्रती च स्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः ।।२२४

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ।
सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमादृतः ।।२२५

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः ।
अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ।।२२६

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च ।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथादानेन चापदि ।।२२७

यथा यथा नरोऽधर्मं कृत्वानुभाषते ।
तथा यथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते ।।२२८

तीन बार दिन में और तीन बार रात्रि में सचैल स्नान करे और जब तक व्रत का आचरण करे तब तक स्त्री, शूद्र और पति के साथ कभी वार्तालाप भी न करे। अपनी कुटिया के निकट इधर-उधर भ्रमण करे या अपने आसन पर ही बैठा रहे, यदि जाग न सके तो धरती पर शयन करे मौञ्जी, मेखला और दण्ड के धारण पूर्वक ब्रह्मचर्य से रहता हुआ गुरु देवता ब्राह्मण को

पूजे। सावित्री का जप नित्य करे पुण्य सूक्तों को भी यथेच्छ रूप में करे ऐसा करना सभी प्रकार के व्रतों में श्रेष्ठतम है। द्विज प्रकट पाप के शमनार्थ चान्द्रायणादि और गुप्त पाप के शमनार्थ मंत्रों के जप के साथ होम करे। पापकर्त्ता अपने पाप को लोगों में कहने पछताने तप करने और अध्ययन करने से पाप से छूटता है, यदि तप आदि न कर सके तो दान करना चाहिए। मनुष्य जैसे जैसे अपने अपकर्म का लोगों के समक्ष ज्यों का त्यों बखान करता है, वैसे-वैसे वह केंचुली से सर्प के मुक्त होने के समान अधर्म से मुक्त होता जाता है ॥२२३-२२८॥

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति।
तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥२२९
कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥२३०
एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयम्।
मनोवाङ्मूर्तिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥२३१
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम्।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन्द्वितीयं न समाचरेत् ॥२३२
यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम्।
तस्मिंस्तावत्तपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥२३३
तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम्।
तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥२३४

उसका मन जैसे-जैसे अपने पापकर्म की निन्दा करता है, जैसे वैसे ही उसका देह पाप रहित होता जाता है। पाप करके पश्चात्ताप करने पर भी पाप मुक्त हो सकता है या फिर कभी ऐसा

नहीं करूँगा यह संकल्प करके भी शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार परलोक में शुभाशुभ कर्मों का श्रेष्ठ और निकृष्ट फल मिलने के विषय में विचार करता हुआ मन वचन एवं देह से शुभ कर्म ही करे। अनजाने में या जानकर निषिद्ध कर्मों को करके जो उनके दोष से मुक्त होने की इच्छा करे उसे पुनः वह बुरा कर्म नहीं करना चाहिए। पापी चित्त को श्रेष्ठ कर्मानुष्ठान से संतोष न हो पावे तो वह जब तक सन्तोष न हो तब तक उस कर्म को करता रहे। देवता और मनुष्य के सभीं सुख तपोमूलक हैं उनके सुख का मध्य और अन्त भी तप ही है यह वेददर्शियों का कथन है ॥२२९-२३४॥

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ।
वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥२३५
ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥२३६
औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः ।
तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥२३७
यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् ।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥२३८
महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः ।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः ॥२३९
कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयांसि च ।
स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात् ॥२४०

ब्राह्मण का तप ज्ञान क्षत्रिय का तप रक्षण वैश्य का तप वार्ता और शूद्र का तप सेवा है। फल, मूल तथा वायु का ही आहार करने वाले संयतेन्द्रिय ऋषिगण तप के द्वारा सचराचर

त्रैलौक्य को देखते है । औषधि आरोग्य विद्या और विविध लोकों की स्थिति तप से ही प्राप्त होती है और तप ही उनका साधन हैं। जिसे पार करना दुस्तर और प्राप्त करना कठिन है जहां पहुँचना कठिन और जिसे करना भी कठिन है वह सब तप से साध्य है, क्योंकि तप का दुरातक्रम कोई नहीं कर सकता। महापाप और अध्याय कर्म के करने वाले तप को भले प्रकार तपा कर उसके द्वारा पाप से छूट जाते हैं। कीट, सर्प पतंग, पशु, पक्षी और वृक्षादि स्थावर प्राणी भी तप के बल से ही स्वर्ग में गमन करते है ॥२३५-२४०॥

यत्किञ्चिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः ।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥२४१
तपसव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्त दिवौकसः ।
इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान्संवर्धयन्ति च ॥२४२
प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः ।
तथैव वेदानृषस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥२४३
इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यं प्रवक्षते ।
सर्वस्यास्य प्रपश्यन्नस्तपसः पुण्यमुत्तमम् ॥२४४
वेदाभ्यासोऽन्वहंशक्त्या महायज्ञक्रियपा क्षमा ।
नाशयन्त्याशुपापानि महापातकजान्यपि ॥२४५
यथैधस्तेससा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सार्वं दहति वेदवित् ॥२४६

मनुष्य मन, वाणी और देह से जो पाप कर बैठते हैं उन्हें तपस्वी पुरुष शीघ्र ही भस्म कर देते हैं। तप से पवित्र हुए ब्राह्मण द्वारा यज्ञ में दिये हुए हव्य को देवगण ग्रहण करते और

उसके इच्छितों को पूर्ण करते है। तप से समर्थ होकर ही ब्राह्मजी ने शास्त्रों की रचना की और तपसे ही ऋषियों ने वेदों कौ प्राप्त किया करे। के श्रेष्ठ पुण्य का अवलोकन करते हुए देवगण जगत् के सम्पूर्ण सौभाग्य की सिद्धि तप से ही बताने है। नित्य प्रति सामर्थ्यानुसार वेदाध्ययन, पंचमहायज्ञ और क्षमा यह तीनों महापापियों के पाप को भी शीघ्र नष्ट कर देते हैं। जैसे अग्नि अपने तेज से क्षणभर में काष्ठ को भस्म कर देतो है वैसे ही वेदविदू ब्राह्मण ज्ञानाग्नि से सभी पापों का भस्म कर देता है ॥२४१-२४६॥

इत्येदनसामुक्तं प्रायश्चित्तं यथाविधि।
अत ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्त निबोधत ॥२४७
सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश।
अपि भ्रूणहणं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥२४८
कौत्सं जप्त्वाप इत्येतद्वासिष्ठं च प्रतीत्यृचम्।
माहित्रं शुद्धवत्यश्च सुरापोऽपि विशुध्यति॥२४९
सकृज्जप्त्वास्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च।
अपहृत्य सुवर्णं तु क्षणाभ्दवति निर्मलः ॥२५०
हविष्यान्तीयमभ्यस्य नममंह इतीत च।
जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥२५१
एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम।
अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किंचेदमितीति वा ॥२५२

प्रकट पापों के प्रायश्चित्त की यह विधि कही गई अब गुप्त पापों का प्रायश्चित्त बतावेंगे। नित्य व्याहृति और प्रणव युक्त गायत्री एवं सोलह प्राणायाम करने से भ्रणहत्या करने वाला

भी एक मास में पवित्र हो जाता है। कौत्स का 'अप नः शोशु-चदघम्' और वसिष्ठ का 'प्रतिस्तोनेभिरुषस' तथा 'माहित्रीणाम्-वोस्तु' और 'एतोन्विन्द्रं स्तवाम्' इन ऋचाओं का नियम पूर्वक नित्य जप करने से मद्य पीने वाला एक मास में शुद्ध हो जाता है। सोने की चोरी करके ब्राह्मण 'अस्य वामस्य पलितस्य' और शिवसंकल्प के 'यज्जाग्रतो दूरम्' मन्त्र का एक मास तक नित्य एक बार जप करें तो शीघ्र ही उस पाप से छूट जाता है। 'हविष्यान्तमजरं स्वर्विदि'इन इक्कीस और 'नतमहो न दुरितम् इन आठ ऋचाओं तथा 'इति वा इति मे मनः, एवं सहस्र शीर्षापुरुषः इस पुरुष सूक्त को नित्य एक महीने तक जपने से गुरुतल्पगामी पाप छूट से जाता है महापाप और उपपाप आदि से मुक्त होने की आकांक्षा से 'अव ते हेडो वरुण नमोभिः, एवं 'यत्किंचद वरुण दैव्ये जने इन ऋचाओं तथा 'इति वा इति मे मनः इस सूक्त को नित्य एक वर्ष तक जपे ॥२४८-२५२॥

प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं पुक्त्वाचान्नं विगर्हितम् ।
जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात् ॥२५३

सोमारौद्रं तु वह्वेना मासमभ्यस्य शुध्यति ।
स्रवन्त्यामाचरन्स्नानमर्यम्णामिति च तृचम् ॥२५४

अब्दार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सप्तकं जपेत् ।
अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मासमासीत भैक्षभुक् ॥२५५

मन्त्रैः शाकलहोमीयैब्दं हुत्वा घृतं द्विजः ।
सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम् ॥२५६

महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाः समाहितः ।
अभ्यस्याब्द पावमानीर्भैक्षाहारो विशुद्ध्यति ॥२५७

अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य यतो वेदसंहिताम् ।
मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैःशोधितस्त्रिभिः ॥२५८
त्र्यहं तूपवसेद्युक्तस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः ।
मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाघमर्षणम् ॥२५९

ब्राह्मण अयोग्य दान लेकर और दूषित अन्न खाकर' तरत्स-मन्दी धावति' इन चार ऋचाओं को तीन दिन जप करने से पवित्र हो जाता है। 'सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यम् इन चार तथा 'अयमर्णं वरुणं मित्रं" इन तीन ऋचाओं को नित्य स्नान के पश्चात एक मास तक जपे तो अधिक पाप से भी मुक्त हो जाता है। 'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निश्च' इन सात ऋचाओं का छः मास पर्यन्त जप करे अथवा एक मास तक भिक्षान्न खावे तो जल में मूत्रमल त्यागने वाला पवित्र हो जाता है। 'देवकृतस्य आदि शाकल होम मन्त्रों से एक वर्ष पर्यन्त नित्य आज्याहुति देता हुआ 'नम इन्द्रश्च' ऋचा अथवा इति वा इतिने मनः मन्त्र को जप करने वाला द्विज अतिपाप से भी छूट जाता है। जो स्वयं की तीन पराक व्रतों से शुद्ध कर चुका हो वह निर्जन वन में पवित्र मन से तीन बार वेद सहिता को पढ़ता सब पापों से छूट जाय जितेन्द्रिय होकर तीन दिन उपवास तथा दिन में तीन बार स्नान करते समय जल में गोता लगाकर ऋतु च सत्य च' इस अघमर्षण सूक्त का तीन बार जप करे तो पापों से मुक्त होता हैं ॥२५३-२५९॥

यथाश्वमेधः ऋतुराट् सर्वपापापनोदनः ।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम् ॥२६०
हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्ततः ।
ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नैन प्राप्नोति किञ्चन ॥२६१

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः ।
साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२६२
यथा महाह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति ।
तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति ॥२६३
ऋचोयजूंषि चान्यानि सामानिविविधानि च ।
एष ज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित् ॥२६४
आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता ।
स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ॥२६५

जैसे यज्ञश्रेष्ठ अश्वमेधयज्ञ सर्वपाप-नाशक है वैसे ही मंत्रश्रेष्ठ अघमर्षण सब पापों को नष्ट कर देता है त्रैलोक्य की हत्या करके या किसी पापी का अन्न खाकर भी ऋग्वेद का धारण करने वाला विज्ञपाप का भागी किंचित् भी नहीं होता जो ऋग्वेद या यजुर्वेद अथवा रहस्य सहित सामवेद का तीन बार अध्ययन करता हैं वह सब पापो से छूट जाता है। जैसे मिट्टी का ढेला सरोवर में फेंकने पर गल जाता है वैसे ही ऋगादि रूप से त्रिवृत्त हुए वेद में सभी पाप गल जाटे है। ऋग्वेद,यजुर्वेद और सामवेद के विविध मंत्र तथा उनके पृथक्-पृथक् ब्राह्मण ही त्रिवृत् वेद जाने क्योंकि इसे जानने वाला ही वेदविज्ञ होता है। सब वेदों का मल जिसमें तीनों वेद तथा आकार. उकार और मकार अवस्थित है उस प्रणव संज्ञक द्वितीय गुह्य त्रिबृत् वेद का जानने वाला ही वेदवित् है।२६०-२६५॥

॥ ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥

बारहवां अध्याय

चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयानघ ।
कर्मणां फलनिर्वृत्तिं शंस नस्तत्त्वतः पराम् ॥१

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ।
अस्य सर्वस्य शृणुतु कर्मयोगस्य निर्णयम् ॥२

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ।
कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमाः ॥३

तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः ।
दशलक्षणयुक्तस्य मनो विद्यात्प्रवर्तकम् ॥४

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥५

हे निष्पाप ! आपने चारों वर्णो का कहा अब शुभाशुभ कर्मों के जन्मान्तर में मिलने वाले फल को कहिये । तब मनु के पुत्र धर्मात्मा भृगु ने उन महर्षियों से कहा कि इस सम्पूर्ण कर्म से सम्बन्धित फल का निर्णय सुनो । शुभाशुभ फल के देने वाले के कर्म का उत्पत्ति स्थान मन, वाणी और शरीर है, मनुष्यों की उत्तम, मध्यम और इति का कारण भी कर्म ही है । उस शरीर सम्बन्धी उत्तम, मध्यम अधम रूप त्रिविध और दस लक्षणों से युक्त मन, वाणी और शरीर रूप तीनों अधिष्ठानों के आश्रिय कर्मो का प्रवर्त्तक मन समझो ! अन्यायपूर्वक पराया धन लेने का विचार किसी को अनिष्ट चिन्तन और मन में अभिनिवेश अर्थात् देह में आत्मभाव और परलोक की अमान्यता, यह तीन प्रकार के अशुभ फलदाता मानस अर्थात् मन के कर्म हैं ॥१-५॥

पारुष्यमनृतं चैव पशून्यं चापि सर्वशः ।
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चातुर्विधम् ॥६
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च शरीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥७
मानसं मनसैवायमुपङ्क्ते शुभाशुभम् ।
वाचा वाचा कृतँ कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥८
शरीरजैः कर्मदोषर्याति स्थावरताँ नरः ।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥९
वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च ।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥१०
त्रिदण्डमेतान्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानव ।
कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥११

कठोर या मिथ्या भाषण परदोष कथन और निरर्थक वार्ता, यह चार अशुभ फलदाता कर्म वाचिक अर्थात् वाणी क कर्म है। परायी वस्तु को बलपूर्वक ले लेना, अवैध हिंस और परनारा गमन यह अशुभ फल वाले तीन प्रकार के दैहिक कर्म हैं मानस कर्म का शुभाशुभ फल मन से वाचिक कर्म का वाणी से और दैहिक कर्म का फल देह से भोगना होता है। जिसकी बुद्धि में वाग्दण्ड, मनोदण्ड और देहदण्ड विद्यमान है अर्थात् जो इन तीनों से निषिद्ध कर्मों को रोकने में समर्थ वह त्रिदण्डी कहा जाता है। जो काम क्रोध को रोक कर सब प्राणियों के प्रति इस त्रिदण्ड का उचित व्यवहार करे उसे सिद्धि प्राप्त होती है ॥६-११॥

योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते ।
यःकरोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः ॥१२
जीवसंज्ञोऽन्तरात्मान्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ।
येन वेदयते सर्वं सुःख दुःखं च जन्मसु ॥१३
तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव च।
उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥१४
असंख्या मूर्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः ।
उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयन्ति याः ॥१५
पञ्चभ्य एव मात्राभ्यःप्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम् ।
शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥१६

पंडितजन इस शरीर से कर्म कराने वाले को क्षेत्रज और कर्म करने वाले को भूतात्मा कहते हैं। जीव संज्ञक अन्तरात्मा इससे भिन्न है, जो कि सब प्राणियों में सहज आत्मा है तथा जिससे जन्म के सब सुख-दुःख जाने जाते है। वे महान् एवं क्षेत्रज्ञ दोनों ही पंचभूतों से संयुक्त होकर क्षुद्र और महान् सब प्राणियों में अवस्थित उस ब्रह्म का आश्रय करके रहते है। उस ईश्वर के देह असंख्य मूर्तियां निर्गत होती हैं जो कि सब क्षुद्र और महान् जीवों को सदैव कर्मो प्रवृत्त कराती रहती है पापियों का पंचभौतिक देह से ही एक सूक्ष्म देह परलोक में दुःख भोगने के लिए ही उत्पन्न होता है ॥१२-१६॥

तेनानुभूयता यामीः शरीरेणेह यातनाः ।
तास्वेव नूनमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः ॥१७
सोऽनुभूयासुखोदर्कान्दोषान्विषयसङ्गजान् ।
व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ ॥१८

तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ।
याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम् ॥१९

यद्याचरति धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः ।
तरेव चावृतो तैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते ॥२०

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ।
तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीःप्राप्नोति यातनाः ॥२१

यामीस्ता यातनाः प्राप्य स जीवो वीतकल्मषः ।
तान्येव पञ्चभूतानि पुनरप्येति भागशः ॥२२

दुष्ट जीव उस देह से यमयातना का अनुभव करके उन्हीं पंच भूतों को मात्राओं में य ा विभाग लीन होजाते हैं। वह जीवात्मा विषयों से उत्पन्न, नारकीय दुःखो को भोगने के पश्चात् पाप रहित होकर महान् तेजस्वी महत्तत्व और परमात्मा इन दोनों का आश्रित होजाता है। वे महत्तत्व और परमात्मा दोनों ही अत्यन्त सावधानी से उस जीव के धर्माधर्म को देखते हैं, जिसके कारण जीव को इहलोक-परलोक में सुख-दुःख भोगने होते हैं। वह जीव धर्म अधिक और अधर्म कम करे तो उस पंचभूतों से स्थूल देह के रूप में उत्पन्न होकर स्वर्ग का सुख प्राप्त करता है। यदि अधर्म अधिक और धर्म कम करे तो वह उन पंचभूतों से त्यागा जाकर नरक की यातनाएँ भोगता है। यमयातना भोगने के बाद वह जीव पापरहित होकर पंचभूतों का यथाभाग आश्रय लेता है ॥१९-२२॥

एता दृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा ।
धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः ॥२३

सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान् ।
यैर्व्याप्येमान्स्थितो भावान्महान्सर्वानशेषतः ॥२४

यो यदैषां गुणा देहे साकल्येनातिरिच्यते ।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम् ॥२५

सत्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम् ।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥२६

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत् ।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्वं तदुपधारयेत् ॥२७

यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।
तद्रजो प्रतिपं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥२८

धर्माधर्म से जीव की होने वाली गति को देखकर अपना मन सदव धर्म में लगाना चाहिए । सत्व, रज, तम यह तीनों ही आत्मा के गुण हैं जिनके कारण यह महानात्मा सर्वसृष्टि में पूर्ण रूप से व्याप्त हुआ रहता है । जिसके देह में जब जिस गुण की सम्पूर्ण रूप से अधिकता होती है, तब वह उसको आत्मा को उसी गुण का बना देता है । ज्ञान सत्व का, अज्ञान तम का और रागद्वेष रजोगुण का लक्षण है, इन गुणों का आगे वर्णन किया जाने वाला स्वरूप सब भूतों के शरीर में व्याप्त रहता है । उस आत्मा में प्रीतियुक्त, प्रशान्त एव स्वच्छ प्रकाशरूप में भासित जो है, उसे ही सत्वगुण समझो । दुःख से युक्त, आत्मा के लिए अप्रीतिकर और सदैव विषयेच्छा उत्पन्न करने वाले को सत्व-विरोधी रजोगुण समझो ॥२३-२८॥

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं ततस्तदुपधारयेत् ॥२९

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः ।
अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥३०

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥३१
आरम्भरुचिताऽधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः ।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥३२
लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥३३
त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठताम् ।
इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम् ॥३४

जो सत् असत् के विवेक से रहित, अप्रकट, विषयात्मक अतर्क्य और अविज्ञेय है, उसे तमोगुण जानो। अब इन तीनों गुणों के उत्तम, मध्यम और अधम फलोदय को विस्तार सहित कहते हैं। वेदाभ्यास, व्रतोंका अनुष्ठान, शास्त्रार्थ का ज्ञान, शुचिता इन्द्रियनिग्रह, धर्मकार्य और आत्मचिन्तन, यह लक्षण सत्वगुण के हैं। फल की आकांक्षा से कर्म करना अधैर्य, निन्द्य आचरण और विषय का भोग, यह लक्षण रजोगुण के हैं। अधिकाधिक धन की आकांक्षा, निद्रा, असन्तोष, क्रूरता, नास्तिकता, अनाचरण, याचना की प्रवृत्ति और धर्माचरण में प्रमाद, यह लक्षण तमोगुण के हैं। त्रिकाल में विद्यमान इन तीनों गुणों के लक्षणों को क्रमशः संक्षिप्त रूप से जाने ॥२९-३४॥

यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति ।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥३५
येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम् ।
न च शोचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥३६

यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ।
येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्वगुणलक्षणम् ॥३७

तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्वस्य लक्षणं धर्मः श्रेष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥३८

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते ।
तान्समासेन वक्ष्यामि सर्वस्यास्य यथाक्रमम् ॥३९

देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्व च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥४०

जिस कम को करके अथवा करता हुआ या भविष्य में करता है, इससे मनुष्य लज्जित हो जाता है, उस कम को विज्ञजन तमोगुण का लक्षण समझे। जिस कर्म से इस लोक में ख्याति की अधिक इच्छा करे और असम्पत्ति में जिस कर्म को न सोचे, उस कर्म को रजोगुण का लक्षण जाने। जिस कर्म से कर्त्ता की इच्छा हो कि यह सब को ज्ञात हो और जिसके करने में लज्जित न होना पड़े तथा जिससे आत्मा को सन्तोष प्राप्त होता हो वह कर्म सत्वगुण का लक्षण है। काम तमोगुण का अर्थ रजोगुण का, और धर्म सतोगुण का लक्षण है, इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है। इन सत्वादि गुणों में जीव जिस गुण से जिस गति को पाता है, उन लौकिक गतियों को संक्षेप रूप से कहते हैं। सात्विक मनुष्य देवत्व को, राजस मनुष्यत्व को और तामस तिर्यक योनित्व को पाता है, यह तीन प्रकार की गति है ॥३५-४०॥

त्रिविधा त्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः ।
अधमा मध्यमाग्र्या च कर्मविद्या विशेषतः ॥४१

स्थावराःकृमिकीटाश्च मत्स्याःसर्पाःसकच्छपाः ।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ॥४२

हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्राम्लेच्छाश्च गर्हिताः ।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमातामसी गतिः ॥४३

चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥४४

झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः ।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥४५

राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः ।
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥४६

गुणभेद से निर्मित यह त्रिविध गति कही गई है. वह कर्म और ज्ञान की विशेषता से उत्तम, मध्यम और अधम इस प्रकार तीन प्रकार की हो जाती है। स्थावर कृमि, कीट मत्स्य सर्प, कछुआ, पशु-मृग आदि तामसी अथवा अधम गति वाले हैं। हस्ति अश्व, शूद्र म्लेच्छ आदि गर्हित जाति, सिंह व्याघ्र और शूकर तामसी मध्यमा गति के हैं। चारण, गरुड़ दम्भी पुरुष. राक्षस और पिशाच तामसी उत्तम गति के हैं। झल्ल, मल्ल नट, शस्त्राजीवी, जुआरी और शराबी रजोगुणी अधम गति के हैं। राजा क्षत्रिय, राजपुरोहित और विवाद, युद्ध की प्रधानता वाले मनुष्य राजसी मध्यमा गति के होते हैं।४१-४६॥

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये ।
तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः ॥४७

तापसा यतयो विप्रा ये वैमानिका गणाः ।
नक्षत्राणिचदैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गतिः ॥४८

यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः ।
पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्त्विकीगतिः ॥४९

ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च ।
उत्तमां सात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥५०

एष सर्वः समुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः ।
त्रिविधस्त्रिविधः कृत्स्नःसंसारः सार्वभौतिकः ॥५१

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च ।
पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥५२

गन्धर्व गुह्यक यक्ष तथा देवताओं के विद्याधरादि विविध अनुचर और, अप्सरा राजसी उत्तमा गति के हैं। वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्राह्मण, विमान में चलने वाले नक्षत्र और दैत्य सात्विकी प्रथमा गति के हैं। यजमान, ऋषि, देवता, वेद (वेदाभिमानी देवता) ज्योति, वत्सर, पितृगण और साध्यगण सात्विका द्वितीया (मध्यमा) गति के हैं ब्रह्मा मरीचि आदि ऋषि, धर्म, महान् और अव्यक्त को मनीषीजन सात्विकी उत्तमा गति के मानते हैं। तीन प्रकार के कर्मों की सब जीवों से सम्बन्धित यह तीन-तीन प्रकार की गतियाँ कही गई हैं। इन्द्रियों में आसक्त रहने और धर्माचरण न करने के कारण अज्ञानी नराधर्म पापियोंनियों में गिरते हैं ॥४७।५२॥

यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा ।
क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत ॥५३

बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात् ।
संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् ॥५४

श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् ।
चण्डालपुक्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥५५

कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजां चैव पक्षिणाम् ।
हिंस्राणां चैव सत्यानां सुपारो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥५६

लूताहिसरटानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ।
हिंस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥५७

तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि ।
क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ॥५८

इस जगत में जिस-जिस कर्म से जिस-जिस योनि को यह जीव प्राप्त करता है, उसे क्रम से बताता हूँ। महापातकी मनुष्य हजारों वर्ष घोर नरकों में दुःख भोगकर पापनष्ट होने पर आगे वर्णन की जाने वाली योनियों को प्राप्त होते हैं। ब्रह्महत्यारा मरने पर क्रमशः श्वान, शूकर, गधा, ऊँट, गौ बकरा, भेड़, हरिण, पक्षी, चाण्डाल और पुक्कस होता है। मदिरापान करने वाला ब्राह्मण कृमि, कीट, पतंग, मलभोजी पक्षी और हिंस्रजीवों की योनि में जन्म लेता है। स्वर्णचोर ब्राह्मण मकड़ी, सर्प, गिरगिट पक्षी, जलचर और हिंस्र पिशाचों की योनि में सहस्रों बार जन्मता है। गुरुतल्पगामी पुरुष तृण, गुल्म, लता, कच्चामांस भक्षण करने वाले गृध्रादि पक्षी और सिंहादि पशु तथा क्रूर-कर्माओं की योनियों में सैकड़ों बार उत्पन्न होते हैं ॥५३-५८॥

हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः ।
परस्परादिनः स्तेना प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥५९

संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम् ।
अपहृत्य च विप्रस्व भवति ब्रह्मराक्षसः ॥६०

मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः ।
विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥६१

धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जल प्लवः ।
मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम् ॥६२

मांसं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः ।
चीरीवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिर्दधि ॥६३

कौशेयं तित्तिरिर्हत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः ।
कार्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोधा गां वाग्गुदो गुडम् ॥६४

हिंस्र स्वभाव के मनुष्य क्रव्याद और अभक्ष्य भक्षी मनुष्य कीट होते हैं, स्वर्णचोर परस्पर का मांस खाने वाले श्वान श्रृगालादि तथा चाण्डाली में गमन करने वाले प्रेतत्व को प्राप्त होते हैं। पतितों के संसर्ग से पतित, परस्त्रीगामी और ब्राह्मण के धन का हरण करने वाला ब्रह्मराक्षस बनता है। लोभवश मणि, मुक्ता, प्रवाल एवं अन्य अनेक प्रकार के रत्नों की चोरी करने वाला मनुष्य जन्मान्तर में स्वर्णकार होता है। धान चोर मूषक होता है, कांसाचोर हंस, जलचोर प्लव पक्षी, मधुचोर डांस-मच्छर दुग्धचोर. काक,रस चोर श्वान और घृतचोर जन्मान्तर में न्यौला होता है। मांस, चर्बी, तेल, नमक, और दही चुराने वाले मनुष्य क्रमशः गिद्ध, मद्गु, तेलपक, झिल्ली और बलाक पक्षी होता है। रेशमी वस्त्र को चोर तीतर, क्षौमवस्त्र का चोर मेंढक, सूती वस्त्र का चोर क्रौंचपक्षी, गौ का चोर गोह और गुड़ का चोर वाग्गुद पक्षी होता हैं ॥५९-६४॥

छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशाकं तु बर्हिणः ।
श्वावित्कृतान्नं विविधमकृतान्नं तु शल्यकः ॥६५

बको भवति हृत्वाग्निं गृहकारी ह्युपस्करम् ।
रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः ॥६६

वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलं तु मर्कटः ।
स्त्रीमृक्षःस्तोकको वारि यानान्युष्ट्रः पशूतजः ॥६७

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः ।
अवश्य याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चवाहुतं हविः ॥६८

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः ।
एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥६९

स्वेभ्यःस्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्युता वर्णा ह्यनापदि ।
पापान्संसृत्य संसारान्प्रेष्ययां यान्ति शत्रुषु ॥७०

केसर-कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तु चुराने वाला छछूँदर, पत्रशाक चुराने वाला मोर, पक्वान्न चुराने वाला श्वाविंत और कच्चा अन्न चुराने वा ा शस्यक होता है। अग्नि चुराने वाला बगुला, चलनी-सूप,मूसल आदि चुराने वाला दीमक, रंगीन वस्त्र चुराने वाला चकोर, मृग या हाथी चुराने वाला भेड़िया, अश्व चुराने वाला बाघ,फलमल चुराने वाला वानर, स्त्री का अपहरण करने वाले भालू, जल चुराने वाला पपीहा, गाड़ी आदि यान चुराने वाला ऊंट तथा अन्य सामान्य पशु चराने वाला वकरा होता है। दूसरे की सामान्य से सामान्य वस्तु चुराकर हवन के लिए रखे हुए घी आदि हव्य का भक्षण कर मनुष्य अवश्य ही तिर्यक् योनि में उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जान बूझकर किसी की वस्तु चराने वाली स्त्रियाँ पापभागिनी होती हैं, इस पाप से वे उक्त जन्तुओं की स्त्री बनती हैं। ब्राह्मणादि चारों वर्ण यदि निरापद अवस्था में अपने-अपने कर्मों को न करें तो उन्हें पाप-योनि तथा शत्रु की दासता प्राप्त हाती है ॥६ - ७०॥

वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ।
अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः ॥७१

मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् ।
चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युत ॥७२

यथा यथा निषेवन्त विषयान्विषयात्मकाः ।
तथा तथा कुशलता तेषां तेषूपजायते ।।७३

तेऽभ्यासत्कर्मणां तेषां पापानामल्पबुद्धयः ।
संप्राप्नुवन्ति दुःखानि तासु तास्विह योनिषु ।।७४

तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्तनम् ।
असिपत्रवनादीनि बन्धनच्छेदनानि च ।।७५

विविधाश्चैव संपीडाःकाकोलूकैश्च भक्षणम् ।
करम्भवालुकातापान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ।।७६

ब्राह्मण अपने कर्म से भ्रष्ट हो जाय तो वमनभक्षी उल्कामुख नामक प्रेत तथा क्षत्रिय अपने कर्म से गिर जाय तो मल और शव-भक्षी कटपूतन नामक प्रेत होता है। यदि वैश्य अपने कर्म से भ्रष्ट हो जाये तो वह पीवभक्षी मैत्राक्षज्योतिक नामक प्रेत तथा शूद्र अपने कर्म से हट जाय तो वह चैलाशक नामक प्रेत होता है। विषयासक्त मनुष्य जैसे-जैसे विषयों का भोग करते हैं, वैसे-वैसे ही उन विषयों उनकी दक्षता वृद्धि होती है। वे अल्प-बुद्धि मनुष्य उन पापकर्मों के अभ्यास से अगले जन्म में दुष्ट जन्तुओं की योनि में उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगते है। तदनन्तर उस पाप-दोष से वे जीव तामिस्रादि घोर नरकों में पडते तथा असिपत्र वन एवं बन्धनच्छेदन आदि नरकोंमें गिर कर नाना प्रकार के दुःख भोगते हैं। इसके बाद भी उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट भोगने होते हैं कौए और उल्लू उन्हें नोंच-नोंचकर खाते हैं। उन्हें तप्त वालुका पर चलना होता है तथा कुम्भीपाक नरक की घोर यातना भोगनी पड़ती है।।७१-७६।।

संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायासु नित्यशः ।
शीतातपाभिघातांश्च विविधानि भयानि च ।।७७

असकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च दारुणम् ।
बन्धनानि च काष्ठानि परप्रेष्यत्वमेव च ॥७८

बन्धुप्रियवियोगांश्च संवासं चैव दुर्जनैः ।
द्रव्यार्जनं च नाशं च मित्रामित्रस्य चार्जनम् ॥७९

जरां चैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनम् ।
क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्जयम् ॥८०

यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते ।
तादृशेन तु शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥८१

एष सर्वः समुद्दिष्टः कर्मणां वः फलोदयः ।
नैःश्रेयसकरं कर्म विप्रस्येदं निबोधत ॥८२

दुःख से परिपूर्ण तिर्यगादि योनियों में पड़कर शीत-ताप के कष्ट और नाना प्रकार के भय प्राप्त करते हैं। बार बार गर्भ-वास करते, जन्म के दारुण दुःख सहते, अनेक प्रकार के बन्धनों में पड़ते तथा दूसरों की दासता करते हैं। प्रिय बन्धुओं का वियोग, दुर्जनों के साथ निवास, द्रव्यार्जन और द्रव्यनाश तथा मित्र-अमित्र के विवाद आदि लगे रहते हैं। निरुपाय वृद्धावस्था, अनेक प्रकार के रोग तथा लौकिक क्लेशों को सहन करते हुए दुर्निवार मृत्यु को पाते हैं जीव जिस भाव से जो कर्म करता है उसी प्रकार का शरीर पाकर वह उस कर्म का फल भोगता है। मैंने यह सब कर्मों का फलोदय कहा है, अब ब्राह्मण के मोक्ष को करने वाले कर्म कहता हूँ ॥७८-८२॥

वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥८३

सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्मणाम् ।
किंचिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥८४

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥८५

षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य चेह च ।
श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥८६

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः ।
अन्तर्भवन्ति क्रमशस्तस्मिंस्तस्मिन्क्रियाविधौ ॥८७

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥८८

वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियों का निरोध अहिंसा और गुरुसेवा यह सब मोक्ष के श्रेष्ठ साधन हैं। क्या उक्त सब शुभकर्मों में कोई एक ही कर्म ऐसा है जो पुरुष के लिए अन्य कर्मों से अधिक कल्याणकारी कहा गया हो ? उक्त सब पूर्वोक्त कर्मों में आत्मज्ञान सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है, वही सब विद्याओं में उत्कृष्ट है तथा उसी से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। पहले कहे छः कल्याणकारी कर्मों में वैदिक कर्म को ही इहलोक-परलोक के लिए विशेष श्रेयस्कर जाने। वैदिक कर्मयोग में इन सब क्रियाओं का विधिवत अन्तर्भाव होता है। लौकिक एवं स्वर्गीय सुख का दाता एवं मोक्ष का साधनभूत, प्रवृत्त एवं निवृत्त के भेदसे वैदिक कर्म दो प्रकार का होता है ॥८३-८८॥

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते ।
निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते ॥८९

प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम् ।
निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै ॥९०

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥९१

यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः ।
आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥९२

एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा ॥९३

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥९४

लौकिक सुख स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्तिके उद्देश्य सेजो सकाम कर्म किया जाता है वह प्रवृत्त तथा ज्ञानपूर्वक जो निष्काम कर्म किया जाता है निवृत्त कहा जाता है । प्रवृत्त कर्म के ससेवन से देवताओं की समता प्राप्त होती हैं तथा निवृत्त कर्म के सेवन से पचभूतों से जीत होती है । सब जीवों में स्वयं को तथा स्वयं में सब जीवों को समान रूप से देखता हुआ । आत्मयाजी पुरुष स्वाराज्य अर्थात् ब्रह्मत्व को पाता है । शास्त्रोक्त अन्य कर्मों को छोड़ने परभी द्विजोत्तम आत्मज्ञान, इन्द्रिय-संयम और वेदाभ्यास में प्रयत्नशील रहे । विशेषरूप से ब्राह्मण के जन्म का साफल्य इसी में है क्योंकि द्विज इस मोक्ष को प्राप्त होकर ही कृतकृत्य होता है तसमें अन्यथा नहीं है । पितरों, देवताओं और मनुष्यों का सनातन नेतावेद ही है, वेद ही अपौरुषेय एवं अप्रमेय है यही इसकी स्थिति । ८९-९४॥

या वेदबाह्याःस्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्तानिष्फलाःप्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताःस्मृताः ॥९५

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानिकानिचित् ।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥९६

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमःपृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥९७

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः ।।९८

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ।।९९

सेनापत्तं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं चा वेदशास्त्रविदर्हति ।।१००

वेद से असम्बद्ध स्मृतियाँ तथा वेद से बाहर सभी कुतर्क परलोक में फलहीन ही हैं क्योंकि व तमोनिष्ठ कहे जाते हैं इस प्रकार के वेदविरुद्ध शास्त्र उत्पन्न होकर शीघ्र ही नष्ट होने वाले तथा अर्वाचीन होने के कारण फलहीन एव असत्य हैं। चारों वर्ण, तीनों लोक चारों आश्रम, भूत, भविष्य, वर्तमान इन सब की सिद्धि वेद से ही होती है शब्द स्पर्श, रूप, रस और पाँचवी गन्ध वेद से उत्पन्न गुण-कर्म से ही उत्पन्न होते हैं। सनातन वेदशास्त्र ही सब प्राणियों का भरण करता है, इसलिए यह कर्म में अधिकार रखने वाले पुरुष का श्रेष्ठ पुरुषार्थ साधन मानते हैं। सेनापत्य, राज्य, दण्डविधान, नेतृत्व एवं सब लोकों के अधिपत्य का अधिकारी वेदशास्त्र का ज्ञाता ही होना चाहिए ।।९५-१००।।

यथा जालबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् ।
तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मानः ।।१०१

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।१०२

अज्ञेभ्योग्रन्थिनः श्रेष्टाग्रन्थिभ्योधारिणोवराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनःश्रेष्ठाज्ञानिभ्योव्यवसायिनः ।।१०३

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेस्करं परम् ।
तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ।।१०४

प्रत्यक्ष चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥१०५

जैसे धधकती हुई अग्नि हरे वृक्षों को भी भस्म कर देती है, वैसे ही वेदविद् ब्राह्मण अपने कर्म से उत्पन्न पाप को भस्म कर देता है। वेदार्थ का ज्ञाता एवं तत्व शीं पुरुष किसी भी आश्रम में रहकर इस लोक में विद्यमान रहता हुआ भी ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है। अज्ञानियों से श्रेष्ठ ग्रन्थ पढ़ने वाले उनमे श्रेष्ठ ग्रन्थ-विषयों के धारण करने, उनसे श्रेष्ठ ज्ञानी और ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ निष्काम कर्म करने वाले हैं। ब्राह्मण के लिए तप और विद्या दोनों ही अत्यन्त श्रेयस्कर हैं, क्योंकि तप से पापों का नाश तथा विद्या से मोक्ष होता है। धर्मशुद्धि की इच्छा वाला पुरुष प्रत्यक्ष अनुमान और शास्त्र-प्रमाण को भले प्रकार समझले।१०१-१०५।

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥१०६

नैःश्रयसमिदं कर्म यथोदितमशेषतः ।
मानवस्यास्य क्षास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते ॥१०७

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्म-स्यादशङ्कितः ॥१०८

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिवृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥१०९

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥११०

जो आर्ष धर्मोपदेश का वेदशास्त्र-सम्मत तर्क से अणुसंधान करे, वही धर्म का जानने वाला है, अन्य नहीं। मोक्ष साधन का यह शास्त्रोक्त कर्म सम्पूर्ण रूप से कह दिया है, अब इस मानव

शास्त्र के रहस्य को कहेंगे। इनमें जिन धर्मों का नामोल्लेख नहीं हुआ उनका प्रसंग आजाय तो उस विषय में जो धर्म शिष्ट ब्राह्मण बतावें, उसे ही निःशंक भाव से ग्रहण किया जाय। धर्म का पालन करते हुए जिन्होंने सम्पूर्ण अंगों के सहित वेद को प्राप्त कर लिया हो, शिष्ट ब्राह्मण समझें, वे श्रुति को प्रत्यक्ष करने के हेतु हैं दश शिष्टों वाली दशावरा परिषद् धर्म की परिकल्पना करे यदि दश शिष्टों का अभाव हो तो न्यूनतम तीन सदाचारी ब्राह्मणों की त्र्यवरा परिषद् जिस धर्म का विध न करे वही धर्म निःशक रूप से स्वीकार करने योग्य हैं ॥१०६-११०॥

त्रैविद्यो हेतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठक।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥१११

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥११२

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥११३

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते ॥११४

यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥११५

तीन वेदों के ज्ञाता एक नैयायिक एक मीमांसक एक नरुक्तक, एक धर्मशास्त्र विद और तीन पूर्वाश्रमी (ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ यह दस पुरुष मिलकर दशावरा परिषद् बनती है। ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद इन-इनके विज्ञ मिलकर त्र्यवरा परिषद् बनती हैं, जो कि धर्म संशय का निर्णय करती है। एक भी वेदज्ञाता ब्राह्मण जिस धर्म को निश्चित करे, उसी

को परमधर्म समझे, यदि वेद के न जानने वाले दस हजार अज्ञानी मिलकर भी कुछ निर्णय दें तो यह धर्म नहीं माना जा सकता। ब्रह्मचर्यादि व्रतों से हीन, वेदाध्ययन रहित, जाति मात्र धारण करने वाले अर्थात् नाममात्र के ब्राह्मण यदि हजारों मिल कर भी सभा बनावें तो वह धर्म परिषद् नहीं मानी जा सकती। धर्मशास्त्र से अनजान और तमोगुण युक्त मुख जिसे धर्म बतावें उसका पाप सौगुना बढ़कर धर्म बताने वाले पर ही चढ़ जाता है ।११०-११५॥

एतद्वोऽभिहितं सर्वं निःश्रेयसकरं परम् ।
अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमां गतिम्॥११६

एवं स भगवान्देवो लोकानां हितकाम्यया ।
धर्मस्य परमं गुह्यं ममेदं सर्वमुक्तवान् ॥

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः ।
सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः ॥११८

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥११९

खं संनिवेशयेत्खेषु चेष्टनस्पर्शनेऽनिलम ।
पक्तिदृष्ट्योः परं तेजः स्नेहेऽपो गां च मूर्तिषु ॥१२०

यह सब निःश्रेयस्कर परमधर्म कहा गया, इससे च्युत न होने वाला ब्राह्मण परमगति को प्राप्त होता है। इस प्रकार उन भगवान् देव ने लोकहित की कामना से धर्म का यह सब परम गुह्य विषय मुझ से कहा था। सर्व सत्-असत् को स्थिर चित्त से स्वयं में ही देखे, क्योंकि अपने भीतर देखने वाला पुरुष अपने मन को अधर्म में नहीं लगता। सब देवता आत्मा ही हैं, सम्पूर्ण विश्व आत्मा में अवस्थित है, आत्मा ही इन देह धारियों के

कर्मयोग को बनाता है। बाह्याकाश को आकाश में लीन करे, चेष्टा और स्पर्श में वायु को उदर और नेत्र की अग्नि में परम तेज को, जल में जल को, पार्थिव भाग में पृथिवी को, मन में चन्द्रमा को, कान में दिशाओं को चरण में विष्णु को, बल में शिवजी को, वाणी में अग्नि को, मलद्वार में मित्र को और जननेन्द्रिय में प्रजापति को लीन करे ॥११६-१२०॥

मनसीन्दुं दिशःश्रोत्रे क्रान्ते विष्णुं बले हरम् ।
वाच्यग्निं मित्रमुत्सर्गं प्रजने च प्रबापतिम् ॥१२१

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्मामं स्वप्नद्योगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥१२२

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥१२३

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः ।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥१२४

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥१२५

इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन्द्विजः ।
भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टाँ प्राप्नुयाद्गतिम् ॥१२६

जो सबका शासक, अणु से भी अत्यन्त सूक्ष्म, स्वर्ण जैसी क्रान्ति से सम्पन्न तथा स्वप्नावस्था के समान बुद्धि से जानने योग्य है, उस परम पुरुष को जाने। इसी परमपुरुष को कोई अग्नि कोई प्रजापति मनु, कोई इन्द्र, कोई प्राण और कोई शाश्वत ब्रह्म कहते हैं। वह ब्रह्म सभी प्राणियों के पंचमहाभूतों से बने शरीरों में व्याप्त होकर जन्म, वृद्धि और क्षय के द्वारा

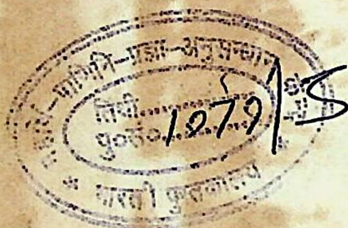
उन्हें नित्य रथचक्र के समान घुमाता रहता है। इस प्रकार से जो मनुष्य सब जीवों में आत्मरूप से स्वयं को देखता है, वह सभी में समान भाव को प्राप्त होता है। ऐसा यह मानवशास्त्र भृगुजी के द्वारा कहा गया है, इसे पढ़कर द्विज नित्य आचारयुक्त रह कर यथेष्ट गति को प्राप्त होता है ॥१२१-१२६॥

॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्म-ग्रन्थ

१—ऋग्वेद ४ खण्ड	....	३८)
२—अथर्व वेद २ खण्ड	....	१८)
३—यजुर्वेद	....	६)५०
४—सामवेद	....	८)५०
५—वेद महाविज्ञान	....	१२)
६—शतपथ ब्राह्मण	....	१३)
७—१०८ उपनिषद् ३ खण्ड	....	३१)५०
८—उपनिषद् रहस्य	....	६)५०
९—वृहदारण्यकोपनिषद्	....	४)५-
१०—छान्दोग्योपनिषद्	....	४)५०
११—वैशेषिक दर्शन	....	६)२५
१२—न्याय दर्शन	....	६)७५
१३—सांख्य दर्शन	....	६)२५
१४—योग दर्शन	....	६)२५
१५—वेदान्त दर्शन	....	६)२५
१६—मीमांसा दर्शन	....	७)५०
१७—२० स्मृतियाँ २ खण्ड	....	२२)
१८—मनुस्मृति	....	११)
१९—योग वासिष्ठ २ खण्ड	....	२५)
२०—गृह्य सूत्र संग्रह	....	११)
२१—पञ्चदशी	....	१२)
२२—विचार सागर	....	१२)
२३—विचार चन्द्रोदय	....	२)५०
२४—पञ्चीकरण	....	३)५०
२५—उपदेश साहस्री	....	६)२५
२६—वृत्ति प्रभाकर	....	८)
२७—सौन्दर्य लहरी	....	५)७५

प्रकाशक :— संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब वेदनगर,
बरेली २४३००३ (उ० प्र०)


तिथी
पु०सं० 1079

पुराणों का वृहद् प्रकाशन

सरल हिन्दी अनुवाद सहित

१—शिव पुराण	२ खण्ड	...	२१)
२—विष्णु पुराण	२ खण्ड	...	२०)
३—मार्कण्डेय पुराण	२ खण्ड	...	२१)
४—अग्नि पुराण	२ खण्ड	...	२१)
५—गरुड़ पुराण	२ खण्ड	...	२१)
६—हरिवंश पुराण	२ खण्ड	—	२१)
७—देवी भागवत पुराण	२ खण्ड	...	२१)
८—भविष्य पुराण	२ खण्ड	...	२१)
९—लिंग पुराण	२ खण्ड	...	२१)
१०—पद्म पुराण	२ खण्ड	...	२१)
११—वामन पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१२—कूर्म पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१३—ब्रह्मवैवर्त पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१४—मत्स्य पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१५—स्कन्द पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१६—ब्रह्म पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१७—नारद पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१८—कालिका पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१९—वाराह पुराण	२ खण्ड	...	२०)
२०—कल्कि पुराण		...	५)७५
२१—सूर्य पुराण		...	१०)
२२—महाभारत (भाषा)		...	८)
२३—श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा		...	१४)

प्रकाशक : संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर

बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)